गुरुदेव

श्री रत्नचन्द्र जी

महाराज की पुण्य शती पर

प्राप्त सन्देश

बाह्य ज्योति का राग त्याग कर,

जिसने अन्तर् ज्योति जगाई।

जीवन के कण-कण से कलि की,

कलुष कालिमा दूर हटाई॥

× × ×

घृणा वैर, हिंसा, कुवृत्ति की

धक-धक जलती आग बुझा दी।

शान्ति प्रेम करुणा की गंगा

जन-मन में सर्वत्र बहा दी॥

× × ×

हे ज्योति-पुञ्ज! मुनि रत्न 'रत्न गुरु'

चरणों में शत-शत वन्दन।

स्वर्गारोहण पुण्य सता – पर,

जग-जन करते अभिनन्दन॥

—उपाध्याय अमर मुनि

सन्त रत्न का सत्कार

• • •

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आगरा के नागरिकगण, पूज्य प्रवर श्रद्धेय श्री रत्न चन्द्र जी महाराज की स्वर्गारोहण शताब्दी मनाने जा रहे हैं। ऐसे महापुरुष के पवित्र जीवन से जितनी भी शिक्षा ग्रहण करें, उतनी ही थोड़ी है। मैं आपके इस भव्य आयोजन की सफलता की कामना करता हूँ।

—भवरसिंह भंडारी
नगर प्रमुख, इन्दौर

मुनिचन्द्र : मुनिरत्न

★ ★ ★

मुनि चन्द्र जैसे मुनि रत्न की स्मृति-योजना उचित ही है। इस अवसर पर मैं भी उन्हें सादर श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

—मैथिलीशरण गुप्त

★ महासंत ★

• •

—जैन-जगत के महासंत परम श्रद्धेय श्री रत्नचन्द्र जी महाराज की स्वर्गारोहण शताब्दी के अवसर पर मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

—नगेन्द्र

परम पूज्य गुरुदेव श्री रत्न चन्द्र जी महाराज जैन धर्म रूपी आकाश के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। उन्होंने समाज के उत्थान के लिए महान् योगदान दिया था। अन्ध विश्वास और रूढ़िवाद का विरोध किया था। उनकी पुण्य शताब्दी के शुभ अवसर पर उनके भक्तों का यह परम कर्तव्य है कि वे उनके महान् आदर्श पर चलने का पूरा प्रयत्न करें।

—शिखर चन्द्र कोचर
एडीशनल सेशन जज

O

पूज्य रत्न मुनि जी महाराज अपने युग के एक महान् पण्डित तपस्वी त्यागी और विचारक थे। आपने सदैव उच्च एवं आदर्श जीवन व्यतीत करने पर बल दिया और मानवता सदाचार, स्नेह एवं सहयोग को जीवन का अंग बनाने की प्रेरणा दी। जिस निष्ठा त्याग व तत्परता से उन्होंने मानव जीवन के उत्थान का कार्य किया है वह चिरस्मरणीय रहेगा। अगर हम उनके बताए हुए मार्ग का अनुसरण करें, तो वही सन्त के प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी। मैं ऐसी महान् आत्मा के स्मृति-समारोह के अवसर पर स्मृति-ग्रन्थ के प्रकाशन तथा सफलता की कामना करता हूँ।

—रिखब चन्द्र धारीवाल
भूतपूर्व मन्त्री राजस्थान

O

महासन्त श्री रत्नचन्द्र जी महाराज की स्वर्गारोहण शताब्दी के अवसर पर आप एक स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित करने का विचार कर रहे हैं। यह जान कर मुझे हर्ष हुआ।

महाराज श्री ने अपने जीवन-काल में जो आदर्श स्थापित किए हैं उन को यदि हम अपना मार्ग-दर्शक बना सकें तो यही उनकी सब से बड़ी स्मृति होगी। समारोह की सफलता के लिए मेरी शुभ कामनाएँ स्वीकार करें।

—चौधरी चरणसिंह
विधान भवन लखनऊ

O

I am very happy to know that the citizens of Agra will be celebrating the Mortification centenary of Param Yogi Gurudev Shri Ratan Chandraji Maharaj during the last week of may, 1964, in a befitting manner, and on this happy occasion a brochure containing the life sketch of the saint and the literature on Indian Philosophy and Culture will be published

I send my best wishes for the success of the celebration and I hope, the publication will be of great use and helpful to the people

Chittaranjan Chattergee
Mayor of Calcutta

o o

I am very glad to know about that public of Agra is going to celebrate the Mortification Centenary of a renowned saint Param Yogi Gurudev Shri Ratan Chandraji on 24th 25th and 26th May, 1964

Gurudev Ratan Chandraji was a famous Indian saint His work for the humanity will long be remembered, and the public of Agra deserves congratulations for commemorating the deeds of such a great saint

I wish the function a great success

D Inder Singh
Mayor of Kanpur

रत्न-ज्योति

रत्न-शताब्दी विशेषांक

सम्पादक
विजय मुनि शास्त्री साहित्यरत्न

प्रकाशक
श्री रत्न मुनि जैन इण्टर कालेज, श्री संघ, आगरा

यह जानकर परम प्रसन्नता हुई, कि २४, २५ व २६ मई १९६४ को आप परम श्रद्धेय रत्न मुनि जी महाराज की स्मृति को अक्षुण्ण रखने तथा उनके अमृत-वचनो के प्रसारण हेतु मुनि महाराज की स्वर्गारोहण-शताब्दी के अवसर पर एक वृहत् स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन कर रहे हैं।

श्री रत्न मुनि जी महाराज ने जो कठोर साधना अपने आदर्शो के पालन के लिए की, उससे मानव समाज के कल्याण के विचारो को बल मिला। हम सब का यह परम कर्तव्य है, कि ऐसे एक-निष्ठ, परित्यागी एव समाज-सेवी महात्मा के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करें और उनके परम विशुद्ध उद्बोधनो के प्रसार मे भरसक प्रयत्न-शील रहे।

मैं आपके प्रयास की हृदय से सफलता चाहती हूँ और आशा करती हूँ, कि स्मृति-ग्रन्थ मुनि श्रीरत्न जी के जीवन पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालेगा।

—विजयाराजे सिंधिया

जयविलास, गवालियर

किसी महापुरुष के दिव्य गुणों का स्मरण और कीर्तन करना किसी महान् भाग्यशाली को ही प्राप्त होता है। वास्तव में महापुरुष के गुणों का चिंतन जीवन के विकास और उत्थान का साधन होता है। दिव्य पुरुषों के ध्यान से और चिंतन से ध्याता का जीवन भी दिव्य बन जाता है। दिव्य-पुरुषों के स्वरूप के ध्यान से, नाम के जप से, और आचरण के अनुसरण से महान् लाभ प्राप्त होता है।

गुरुदेव श्रद्धेय श्री रत्नचन्द्र जी महाराज अपने युग के सुप्रसिद्ध विद्वान मधुर प्रवक्ता परम तपस्वी और प्रखर योगी थे। उनकी योग साधना के चमत्कार जन-चेतना की स्मृति पर आज भी सौ साल के बाद भी अंकित है और उनकी विद्वता का प्रभाव उस युग की जन चेतना पर इतना गहरा और व्यापक पड़ा था, युगों के युग बीत जाने पर भी लोग उन्हें भूले नहीं हैं और भविष्य में भी नहीं भूलेंगे उनका त्याग उनका संयम उनका वैराग्य और उनकी आराधना-साधना महान् थी। उस दिव्य पुरुष और युग पुरुष के पावन चरणों में इस पुण्य शताब्दी अवसर पर मैं हार्दिक भावना के साथ श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

—कल्याण दास जैन
नगर प्रमुख आगरा

● ●

आप महामुनि श्री रत्नचन्द्र जी की पुण्य-स्मृति में स्वर्गारोहण-शताब्दी-समारोह का आयोजन एवं स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन कर रहे हैं यह जानकर हर्ष हुआ।

परम श्रद्धेय मुनि श्री महाराज आजीवन धर्म-समन्वय, नैतिकोत्थान एवं भारतीय संस्कृति के प्रचार तथा प्रसार के लिए प्रयत्न करते रहे। उनका तपोमय जीवन मानव मात्र के लिए अक्षय प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करता रहेगा। अतः आज जबकि विश्व विनाश के कगार पर खड़ा है ऐसे सन्त पुरुषों के जीवन का अनुकरण करने से ही शान्ति स्थापित हो सकती है।

आयोजन की सफलता के लिए मेरी शुभ-कामनाएँ।

रामशरण चन्द्र मित्तल
परियोजना मंत्री पंजाब

I am very happy to know that the citizens of Agra will be celebrating the Mortification centenary of Param Yogi Gurudev Shri Ratan Chandraji Maharaj during the last week of may, 1964, in a befitting manner, and on this happy occasion a brochure containing the life sketch of the saint and the literature on Indian Philosophy and Culture will be published

I send my best wishes for the success of the celebration and I hope, the publication will be of great use and helpful to the people

Chittaranjan Chattergee
Mayor of Calcutta

O O

I am very glad to know about that public of Agra is going to celebrate the Mortification Centenary of a renowned saint Param Yogi Gurudev Shri Ratan Chandraji on 24th 25th and 26th May, 1964

Curudev Ratan Chandraji was a famous Indian saint His work for the humanity will long be remembered, and the public of Agra deserves congratulations for commemorating the deeds of such a great saint

'I wish the function a great success'

D Inder Singh
Mayor of Kanpur

रत्न-ज्योति

●

रत्न-शताब्दी विशेषांक

सम्पादक

विजय मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

प्रकाशक

श्री रत्न मुनि जैन इण्टर कालेज श्री संघ, आगरा

रत्न-ज्योति

रत्न-शताब्दी विशेषांक

★

सम्पादक

विजय मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

★

प्रकाशक

श्री रत्न मुनि जैन इन्टर कालेज

★

श्री रत्न मुनि जैन गर्ल्स इन्टर कालेज

★

श्री सघ लोहामण्डी, आगरा

★

सन् १९६४—२४, २५, व २६ मई

★

मुद्रक

एजुकेशनल प्रेस, आगरा

सम्पादकीय

गुरुदेव श्री रत्न-मुनि स्मृति-ग्रन्थ के सम्पादन और प्रकाशन के तुरन्त बाद ही 'रत्न-ज्योति' पत्रिका के रत्न-शताब्दी विशेषांक के सम्पादन का प्रश्न जब मेरे सामने आया तब सहसा इसके सम्पादन के लिए मेरा मन तैयार नहीं था। मुख्य-रूप में इसके दो कारण थे—पहला स्मृति-ग्रन्थ के सम्पादन से मानसिक थकान दूसरा—विशेषांक के सम्पादन के लिए समय की अल्पता। परन्तु भावना से कर्तव्य ऊँचा होता है। सम्पादन की मेरी भावना न होते हुए भी गुरुदेव के प्रति कर्तव्य-बुद्धि से अनुप्राणित होकर तथा श्री संघ लोहामंडी के वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध श्रावक शिरोमणि श्री बाबूलाल जी पारखी के और आगरा के नगर प्रमुख श्री कल्याणदास जी जैन के विशेष आग्रह से अनुप्रेरित होकर मुझे यह कार्य अपने हाथ में लेना पड़ा।

'रत्न-ज्योति' प्रतिवर्ष कालेज की ओर से प्रकाशित होती है। किन्तु इस वर्ष गुरुदेव की पुण्य-तिथि का विशेष अवसर होने से 'रत्न-ज्योति' का रत्न-शताब्दी विशेषांक प्रकाशित करने की मूल उद्भावना और कल्पना शताब्दी समारोह के संयोजक एवं आगरा के नगर प्रमुख श्री कल्याणदास जी जैन की ही है। संयोजक जी ने बड़ी उदारता और लगन के साथ इस कार्य को सम्पन्न किया है। अतः वे विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं।

'रत्न-ज्योति' के रत्न-शताब्दी विशेषांक के लिए विषय सामग्री संगृहीत एवं संकलित करने का कार्य एक बहुत कठिन कार्य था। किन्तु दोनों कालेजों के दोनों प्रधानाचार्यों ने बड़ी दक्षता के साथ और बड़ी शीघ्रता के साथ अपने-अपने अध्यापक एवं छात्रों से और अध्यापिका एवं छात्राओं से सामग्री का संकलन कर के मेरे सम्पादन में एक बहुत बड़ा योग-दान दिया है। अतः श्री रमेशचन्द्र जी अग्रवाल और श्रीमती हीरादेवी शर्मा विशेष रूप से धन्यवाद के योग्य हैं।

दोनों कालेजों के सिवा व्यवस्थापक श्री सोनाराम जैन ने स्मृति-ग्रन्थ के समान 'रत्न-ज्योति' रत्न शताब्दी विशेषांक के प्रकाशन में मुझे बहुत बड़ा सहयोग दिया है। उनका उत्साह चिरस्मरणीय रहेगा।

लाला बलभद्र जी के सुयोग्य पुत्र श्री पवन कुमार जी जैन जो ब्लाक फोटो और प्रकाशन विभाग के संचालक हैं, उनके उत्साह और लगन की मैं विशेष रूप से प्रशंसा करता हूँ। क्योंकि गुरुदेव स्मृति-ग्रन्थ में जितने भी फोटो ब्लाक एवं पेपर की क्रय-क्रय का काम हुआ है वह सर्व श्री पवनकुमार जी के प्रबन्ध में ही हुआ है और बहुत सुन्दर हुआ है इसी प्रकार रत्न-ज्योति के विशेषांक के फोटो ब्लाक और क्रय-क्रय का काम भी श्री पवन कुमार जी के हाथों से ही हो रहा है। अतः श्री पवन कुमार जी विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं।

—विजय मुनि

प्रकाशकीय

आगरा श्री सघ का यह परम सौभाग्य है, कि परम श्रद्धेय पूज्य प्रवर गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज की पुण्य शताब्दी मनाने का उसे शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। इस शुभ अवसर की प्रतीक्षा हम सब चिर काल से कर रहे थे। अब समय आ चुका है, कि हम सब मिलकर, एक-दूसरे के सहकार और सहयोग से इस पवित्र क्षण का सद्-उपयोग करें। हम सब मे विचार-भेद हो सकते हैं, परन्तु मनोभेद नही होना चाहिए, नही रहना चाहिए।

'रत्न-ज्योति' पत्रिका का आपके सामने यह रत्न-शताब्दी विशेषाक आ रहा है। समय थोडा रहने पर भी इसका सम्पादन बहुत सुन्दर एव आकर्षक हुआ है। इस पुनीत काय मे जिनका, जितना भी सहयोग मुझे मिला है, उन सब का मैं हार्दिक भाव से धन्यवाद करता हूँ।

एक बात मुख्य रूप मे मुझे जो कहनी है, वह यह है, कि इस 'रत्न-ज्योति' रत्न-शताब्दी विशेषाक का सम्पादन श्री विजय मुनि जी महाराज ने किया है। यद्यपि श्री विजय मुनि जी गुरुदेव श्री रत्न मुनि स्मृति-ग्रन्थ के सम्पादन काय मे अत्यधिक व्यस्त रहे हैं, तथापि हमारी प्राथना को उन्होने स्वीकार किया, और इस काय को भी पूरा किया। शताब्दी समारोह के एक मुख्य काय 'गुरुदेव स्मृति ग्रन्थ' योजना को जहाँ उपाध्याय कविरत्न श्री अमर चन्द्र जी महाराज के निर्देशन से जीवन मिला है, वहाँ श्री विजय मुनि जी शास्त्री, साहित्य-रत्न के द्वारा इस विशाल ग्रन्थ का सम्पादन और प्रकाशन सम्भव हो सका है। स्मृति-ग्रन्थ और रत्न-शताब्दी विशेषाक के सम्पादन मे श्री विजय मुनि जी ने लगन के साथ जो कठिन परिश्रम किया है, वह वस्तुत प्रशसनीय है। उनकी इस कृपा को कभी भुलाया नही जा सकेगा। इसके लिए हम श्री विजय मुनि जी महाराज के अत्यन्त आभारी हैं।

'रत्न-ज्योति' के रत्न-शताब्दी विशेषाक के कलात्मक काय मे श्री श्रवण कुमार का परिश्रम और सहयोग प्रशसनीय रहा है। इसी प्रकार समाज के, और विशेषत कालेज के सभी बन्धुओ ने जो सहयोग प्रदान किया है, उसके लिए धन्यवाद।

श्री कल्याणदास जैन
(नगर प्रमुख, आगरा)

विषय-रेखा

हे ज्योति-पुञ्ज ! मुनिरत्न 'रत्नगुरु'
चरणो मे शत - शत वन्दन ।
स्वर्गारोहण पुण्य - शती पर,
जग - जन करते अभिनन्दन ॥

—उपाध्याय अमर मुनि

★

समाधि भवन में गुरुदेव के चरण चिन्ह

विषय	पृष्ठ

३
श्री सघ लोहामडी

– ४ –

विविध भारती

★

हे ज्योति-पुञ्ज ! मुनिरत्न 'रत्नगुरु'
चरणो मे शत - शत वन्दन ।
स्वर्गारोहण पुण्य - शती पर,
जग - जन करते अभिनन्दन ।।

—उपाध्याय अमर मुनि

*

समाधि भवन मे गुरुदेव के चरण चिन्ह

हे ज्योति-पुञ्ज ! मुनिरत्न 'रत्नगुरु'

चरणो मे शत - शत वन्दन ।

स्वर्गारोहण पुण्य - शती पर,

जग - जन करते अभिनन्दन ॥

—उपाध्याय अमर मुनि

*

श्री
★
रत्न
★
मुनि
★
जैन
★
इन्टर
★
कालेज
★

महामन्त्र नवकार
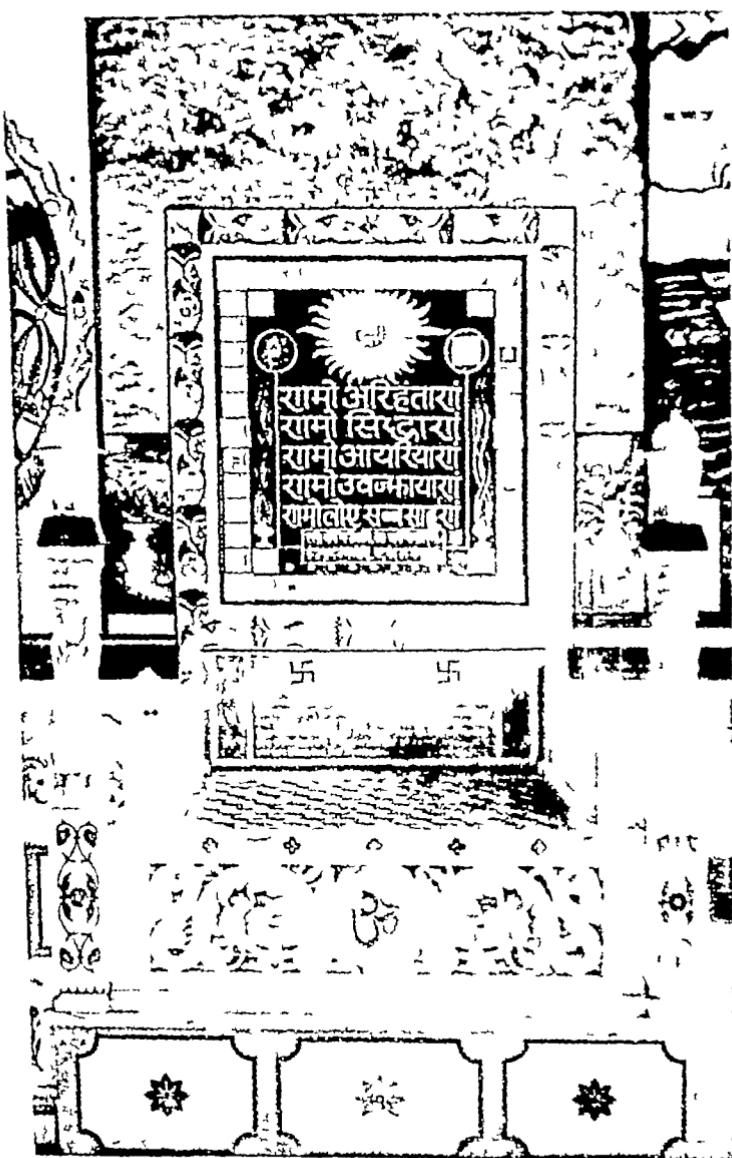
जैन भवन, लोहामण्डी, आगरा

श्री रत्नमुनि जैन इण्टर कालेज के प्रबन्धक

श्री ओमप्रकाश जैन

रत्न रत्नानि

॥ वन्दे सदा तं मुनि रत्न रत्नम् ॥

आचार्य चन्दनलाल पाराशर 'पीयूष'

यस्य प्रसादात् सकला कलास्ता
विभान्ति सर्वत्र जनस्य मूर्तेः ।
विद्या-तपो-ज्ञान-दया समुद्रम्
वन्दे सदा तं मुनि-रत्न रत्नम् ॥

त्याग विराग तपसि प्रसिद्धो
जिनो जगत्या जनतोपकारी ।
स सर्वथा सर्व-सुखाय जातो
वन्दे सदा तं मुनि रत्न-रत्नम् ॥

य 'साधु' शब्दं सततं समाज
प्रत्येक कल्याणकरोऽस्य सार्थम् ।
साक्षाद्यशी भारत-भूतिदायी
वन्दे सदा तं मुनि-रत्न रत्नम् ॥

या संस्कृति शास्त्र विराजमाना
देशस्य सर्वस्य विभाव्यमाना ।
विश्वं मत देश मुनि व्यवादि
वन्दे सदा तं मुनि-रत्न-रत्नम् ॥

सत्यं शिवं सुन्दरमेकतोऽस्मिन्,
चरित्र-पूतं चरितञ्च भाव ।
रत्नाकरो मौञ्ज गुणाकरोऽस्मृत,
वन्दे सदा तं मुनि रत्न-रत्नम् ॥

अयं परोऽयं निजको जनोऽयं
नासीद् विचारः लघुमानसानाम् ।

पूज्य गुरुदेव की प्रतिभा के चमत्कार

श्री रमेशचन्द्र, प्रधानाचार्य

तीक्ष्ण प्रतिभा, अकाट्य युक्ति, गुरुवर की मानी जाती थी।
जो तत्त्ववाद और शास्त्राथ मे, चमत्कार दिखलाती थी ।।

पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज अलौकिक प्रतिभा के चमत्कारी सिद्ध सन्त थे। यद्यपि आज से शत वर्ष पूर्व उन्होंने इस असार ससार को सदा सवदा के लिये छोडकर चिर शाश्वत देवलोक के लिए प्रस्थान किया था, किन्तु आज भी अपने श्रद्धालु भक्त जनो की वे भव सागर मे जीवन-नैया पार लगाने वाले, सकट मोचन, सिद्धि-सम्पन्नता के प्रदाता, तीनो तापो को दूर करने वाले आदि अनेकों रूपो मे पथ प्रदर्शक का कार्य करते हैं। यह श्रद्धेय गुरुदेव की प्रतिभा का चमत्कार ही है, कि गुरुदेव द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलने वाले भक्तो की मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं और उनका जीवन सम्पन्नता की फलती-फूलती वेल की तरह कुसुमित व सुरभित रहता है। गुरुदेव की सच्चे हृदय से आराधना करने वाला श्रद्धालु का सरल विश्वास कभी भटकता नही। उसे यह विश्वास कर लेने में सकोच नहीं होता कि पूज्य गुरुदेव की भक्ति का उसे प्रसाद मिलेगा और जग-जीवन सुधरेगा, सभलेगा तथा भौतिक जीवन को आवागमन से मुक्ति मिलेगी। यह श्रेय पूज्य गुरुदेव की प्रतिभा के चमत्कार का ही है कि उनके नाम पर सस्थापित सस्थाएँ निरन्तर उन्नति कर रही हैं और उनके द्वारा प्रतिबोधित क्षेत्रो में लौकिक सम्पन्नता के साथ-साथ धम के प्रकाश ने कुरीतियो के अन्धकार को दूर किया है।

पूज्य गुरुदेव की प्रतिभा का चमत्कार उनके जीवन-काल मे ही दृष्टिगोचर होने लगा था। आज के लोक-जीवन मे चमत्कारात्मक घटनाओ की अनेको गाथाएँ अथवा किवदतियाँ प्रसिद्ध हैं। गुरुदेव जहाँ-जहाँ गये, वहाँ जिन-धम की जय पताका फहराने लगी। बडे-बडे यशस्वी जैन मुनियो ने पूज्य गुरुदेव का लोहा माना। जैन-धम की कठिन साधनापूण तपश्चर्या मे गुरुदेव सदैव खरे उतरे। धार्मिक कृत्यो मे उन्हे जो सफलता मिली, उसने आने वाली पीढी के लिये आत्मिक उन्नयन के झरोखे खोल दिये।

गुरुदेव का तप पूत जीवन वडा निर्मल था। उनकी अमृत रूपी वाणी मे मानस परिवतन की अदभुत क्षमता थी। गुरुदेव की प्रतिभा का चमत्कार उस समय स्पष्टरूप से अनुभव होने लगा, जब गुरुदेव ने पहली-पहली बार लोहामडी को अपने चरण-कमलो की कृपा से पवित्र वनाया था। यहाँ के लगभग दोसौ घर शुद्ध जैन धर्म की दीक्षा लेकर जैन मतावलम्वी वन गये। यह पूज्य गुरुदेव की प्रतिभा का चमत्कार ही था कि यहाँ देखते-देखते पौषधशाला का निर्माण किया गया। इसी प्रकार अनेको क्षेत्रो मे जैन धम का प्रकाश फैलने लगा और जीवन के मूल्य वदलने लगे।

श्री रत्नमुनि जैन इण्टर कालेज के प्रधानाचार्य

श्री रमेशचन्द्र अग्रवाल

यदर्चितं साधकतो यतात्मा
तदर्पितं सर्वमिदं सहर्षम् ।
क्षमादि-कल्याणरतं महान्तं
वन्दे सदा तं मुनि-रत्न-रत्नम् ॥

रत्नरिमां रत्न-गुरु-स्तुतिं यः करोति नित्यं मनसा समग्राम् ।
मनोऽभिलाषं लभते स सर्वं परत्र सर्वत्र च सौख्यमत्र ॥

* * *

गुरु-सेवा

(ओमप्रकाश बंसल कक्षा ८ स)

दया कर दान सेवा का हमें गुरुवर ! सदा देना ।
भुला देना हमारी त्रुटि गुरो ! निज वीरता का दान देना ॥
दया कर दान—— —— ॥१॥

सुना है नाथ दीनों का सदा उपकार करते हैं ।
हमें भी पाप भय से तुम पतित पावन छुड़ा देना ॥
दया कर दान—— ॥२॥

भँवर में आ रही चक्कर हमारे ज्ञान की नैया ।
कृपा करके सदा गुरुवर ! किनारे से लगा देना ॥
दया कर दान —— ॥३॥

न हम में है कोई सेवा जो हमको पार कर देवे ।
शरण तेरी हैं शरणागत गुरो ! अब आसरा देना ॥
दयाकर दान सेवा का हमें गुरुवर ! सदा देना ॥४॥

* * *

पूज्य गुरुदेव की प्रतिभा के चमत्कार

श्री रमेशचन्द्र, प्रधानाचार्य

तीक्ष्ण प्रतिभा, अकाट्य युक्ति, गुरुवर की मानी जाती थी।
जो तत्त्ववाद और शास्त्राथ मे, चमत्कार दिखलाती थी ॥

पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज अलौकिक प्रतिभा के चमत्कारी सिद्ध सन्त थे। यद्यपि आज से शत वर्ष पूर्व उन्होंने इस असार ससार को सदा सर्वदा के लिये छोडकर चिर शाश्वत देवलोक के लिए प्रस्थान किया था, किन्तु आज भी अपने श्रद्धालु भक्त जनो की वे भव सागर से जीवन-नैया पार लगाने वाले, सकट मोचन, सिद्धि-सम्पन्नता के प्रदाता, तीनो तापो को दूर करने वाले आदि अनेको रूपो मे पथ प्रदर्शक का काय करते हैं। यह श्रद्धेय गुरुदेव की प्रतिभा का चमत्कार ही है, कि गुरुदेव द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलने वाले भक्तो की मनोकामनाएँ पूण होती हैं और उनका जीवन सम्पन्नता की फलती-फूलती वेल की तरह कुसुमित व सुरभित रहता है। गुरुदेव की सच्चे हृदय से आराधना करने वाला श्रद्धालु का सरल विश्वास कभी भटकता नही। उसे यह विश्वास कर लेने मे सकोच नही होता कि पूज्य गुरुदेव की भक्ति का उसे प्रसाद मिलेगा और जग-जीवन सुधरेगा, सभलेगा तथा भौतिक जीवन को आवागमन से मुक्ति मिलेगी। यह श्रेय पूज्य गुरुदेव की प्रतिभा के चमत्कार का ही है कि उनके नाम पर सस्थापित सस्थाएँ निरन्तर उन्नति कर रही हैं और उनके द्वारा प्रतिबोधित क्षेत्रो मे लौकिक सम्पन्नता के साथ-साथ धम के प्रकाश ने कुरीतियो के अन्धकार को दूर किया है।

पूज्य गुरुदेव की प्रतिभा का चमत्कार उनके जीवन-काल मे ही पष्टिगोचर होने लगा था। आज के लोक-जीवन मे चमत्कारात्मक घटनाओ की अनेको गाथाएँ अथवा किंवदतियाँ प्रसिद्ध हैं। गुरुदेव जहाँ-जहाँ गये, वहाँ जिन-धम की जय पताका फहराने लगी। वडे-वडे यशस्वी जैन मुनियो ने पूज्य गुरुदेव का लोहा माना। जैन-धम की कठिन साधनापूण तपश्चर्या मे गुरुदेव सदैव खरे उतरे। धार्मिक कृत्यो मे उन्ह जो सफलता मिली, उसने आने वाली पीढी के लिये आत्मिक उन्नयन के झरोखे खोल दिये।

गुरुदेव का तप पूत जीवन वडा निर्मल था। उनकी अमृत रूपी वाणी मे मानस परिवतन की अदभुत क्षमता थी। गुरुदेव की प्रतिभा का चमत्कार उस समय स्पष्टरूप से अनुभव होने लगा, जब गुरुदेव ने पहली-पहली वार लोहामडी को अपने चरण-कमलो की कृपा से पवित्र वनाया था। यहाँ के लगभग दोसौ घर शुद्ध जैन धर्म की दीक्षा लेकर जैन मतावलम्बी वन गये। यह पूज्य गुरुदेव की प्रतिभा का चमत्कार ही था कि यहाँ देखते-देखते पौषधशाला का निर्माण किया गया। इसी प्रकार अनेको क्षेत्रो मे जैन धम का प्रकाश फैलने लगा और जीवन के मूल्य वदलने लगे।

श्री रत्नमुनि जैन इण्टर कालेज के प्रधानाचार्य

श्री रमेशचन्द्र अग्रवाल

गुरुदेव की प्रतिभा का चमत्कार उनकी अकाट्य युक्तियों में स्पष्ट झलकता है। तत्त्ववाद तथा शास्त्रार्थ में यह प्रतिभा का चमत्कार बड़े से बड़े विद्वान को भी चमत्कृत कर देता है। प्रतिभा का चमत्कार जब लेखनी पर उतर कर ग्रन्थ रचना मे प्रस्फुटित होता है तो मोक्षमार्ग प्रकाश प्रश्नोत्तर माला बालावबोध नवतत्त्व चमत्कार-चिन्तामणि (ज्योतिष) जैसे श्रेष्ठ ग्रन्थ देखने को मिलते हैं। यही प्रतिभा का चमत्कार जब वाणी के रूप में घुल जाता है तो तेरह पन्थी पूज्य जीतमल जी समाधान तथा साधु-आचार विषय पर तथा संवेगी मुनि रत्नविजय जी मूर्तिपूजा तथा मुखपत्ति विषय पर अभिभूत हो चमत्कृत हो उठते हैं। यही प्रतिभा का चमत्कार जब ज्ञान की अखण्ड दीप-शिखा के रूप मे प्रकट होता है, तो पंडित रत्न श्री कुवरसेन जी महाराज उग्र तपस्वी श्री जिनचन्द्र जी महाराज सेवा-भावी श्री चतुर्भुज जी महाराज और पस्वीवाल श्री स्वामीराम जी महाराज जैसे शिष्य समाज को पथ प्रदर्शक के रूप मे मिलते हैं और पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज श्री बसन्ती लाल जी महाराज श्री हर्षचन्द जी महाराज श्री चुन्नीलाल जी महाराज श्री रणवीर जी महाराज जैसे अनमोल रत्न सुप्रसिद्ध विद्या-शिष्य के रूप में प्रकट होते हैं।

महान् गुरुदेव की प्रतिभा का अलौकिक चमत्कार उनके निर्वाण से पूर्व उनके श्रीमुख से मुखरित हुआ था। संथारा करने के पश्चात् गुरुदेव ने धर्मोपदेश दिया। भावी अथवा होनी पूज्य गुरुदेव की वाणी से प्रकट हो रही थी। उनके अनुसार आठ दिन बाद उन्हें जीवन की काया त्यागनी थी। आश्चर्य की बात यह है कि पूर्व इंगित मुक्ता पूर्णिमा दिन शनिवार सम्वत् १९२१ को ही गुरुदेव देवलोक के वासी बने। जीवन और मरण का यह अटूट क्रम न कभी टूटा न टूटा न टूटेगा। परन्तु दिव्य आत्माएँ न कभी मरी न मरेंगी। मेरा विश्वास है कि पूज्य गुरुदेव की दिवंगत आत्मा आज भी सदा की भाँति मानव-कल्याण की अलौकिक छटा छिटकाती रहती है।

ये घटनाएँ आश्चर्यजनक हो सकती हैं किन्तु इन पर सहसा अविश्वास नहीं किया जा सकता मैं स्वयं गुरुदेव की प्रतिभा के चमत्कार से चमत्कृत हुआ हूँ। एक बार मैंने एक पुस्तक की रचना इस आशय से की कि उसे उत्तर प्रदेश की शिक्षा परिषद् (बोर्ड) द्वारा स्वीकृत पाठ्य पुस्तकों में स्थान मिले। पुस्तक जब पूरी हो गई तो अनायास मेरे मन में नई प्रेरणा जगमगा उठी। अनजाने मेरे कदम छतरी की ओर बढ़ चले। बेसुध-सा जब मैं छतरी पर पहुँचा तो श्रद्धा से मेरे हाथ जुड़ गये मस्तक झुक गया और बन्द आँखों की उज्ज्वल ज्योति में गुरुदेव के श्री चरण तैरने लगे। मन यह मानकर प्रफुल्लित हो उठा कि मेरी पुस्तक को भी पूज्य गुरुदेव का वरदान मिल गया है। निःसन्देह मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य व आनन्दानुभूति हुई कि मेरी पुस्तक बोर्ड द्वारा स्वीकृत करली गई है।

तब से आज का दिन है जब भी मैं मानसिक अन्तर्द्वन्द्व अथवा जीवन के संघर्षों से घबराकर आशा-निराशा की चपल लहरों में तिनके की तरह डंवाडोल हो उठता हूँ तो पूज्य गुरुदेव की छतरी पर पहुँच कर न जाने कितनी शान्ति कितना सन्तोष कितना आनन्द प्राप्त करता हूँ। मैं तो इसे पूज्य गुरुदेव की प्रतिभा का चमत्कार ही मानता हूँ।

पूज्य गुरुदेव की प्रतिभा का चमत्कार अतीत में मानव-जीवन को चमत्कृत करता रहा है वर्तमान मे चमत्कृत कर रहा है और भविष्य में भी चमत्कृत करता रहेगा। ये चमत्कार अलौकिक आत्मा

के आलोक से प्रकाशित होते रहते हैं और मानव मात्र को पारलौकिक शक्ति मे विश्वास करने की प्रेरणा देते रहते हैं।

प्रतिभा का चमत्कार मानव को ऐसी शक्ति देता है कि वह अपनी तुच्छता भूलकर पूर्णता प्राप्त करने के लिये साहसिक प्रयत्न करने लगता है। प्रतिभा के चमत्कार मे ही दानवता पर मानवता की विजय होती है। पूज्य गुरुदेव की प्रतिभा का चमत्कार ऐसी ही अलौकिकता का प्रतीयमान था।

* * *

गुरु देव-महिमा

(रणधीर सिंह कक्षा १० ब)

(१)

हमारे गुरुदेव से जग मे, हमारा राष्ट्र भाता है।
इसी से लोक मे मानव, सुधा सुख शान्ति पाता है।।
वनो गुरु भक्त सब भाई, सदा सौजन्य मिलता है।
बने सार्थक सदा जीवन, सभी ससार फलता है।।

(२)

जो ऐसे लोक उपकारी, सदा जीवन जगा देते।
उन्हें जो भूलते जग मे, भला वे लाभ क्या लेते।।
हमारे राष्ट्र का सर्वस्व जीवन-प्राण, गुरु धन है।
विना गुरु के सभी निस्तेज, निवल, भ्रम जीवन है।।

(३)

रहें समृद्धियाँ वहाँ पर, जहाँ सम्मान गुरु का है।
अनादर है जहाँ उनका, वहाँ सुख का न तिनका है।।
अत गुरु की सदा महिमा, हृदय मे नित्य धारण कर।
बढो, नित सत्य पथ पर शुभ, शताब्दी सत्य सार्थक कर।।

* * *

गुरु-रत्न-मुनि व्यक्तित्व-कृतित्व

आचार्य चन्दनलाल पाराशर 'पीयूष'

भारत-भूमि को सदैव से सत्पुरुषों के सम्पर्कों से समलंकृत होने का सर्वथा सौभाग्य सम्प्राप्त होता रहा है। समय-समय पर ऐसी दिव्य भव्य भव्य विभूतियाँ अपने पावन-प्रकाश से प्राणि-मात्र का समुद्धार करती रही हैं। लोक ने अज्ञान-तम में भटकते हुए इस आलोक में अपना परमार्थ-पथ प्रशस्त किया है। अपनी महती लोकोत्तर आकांक्षाओं को इन्हीं के व्यक्तित्व-बल से प्राप्त किया है। गुरु रत्न मुनि का व्यक्तित्व भी इन्हीं दिव्य भव्य भव्य विभूतियों में से एक था। सर्व प्रथम हम इनके यथा नाम तथा गुण के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हैं। आपके इन तीनों शब्दों—'गुरु' 'रत्न' 'मुनि' की त्रिवेणी ने भारतीय जन मानस को किस प्रकार पवित्र किया है यह सर्व विदित है। पहले 'गुरु' शब्द को लीजिये—गुरु के तीन अर्थ हैं—बड़ा भारी तथा प्रकाश में ले आने वाला अर्थात् जो ज्ञान में बड़ा हो ज्ञान में भारी हो और अन्धकार से प्रकाश में ले आने वाला हो अतः आप में वस्तुतः ये तीनों अर्थ ही सर्व-प्रकार विद्यमान थे। आप ज्ञान में बड़े थे ज्ञान में भारी थे और अन्धकार से प्रकाश में ले आने वाले थे। इसके पश्चात् आप 'रत्न' शब्द को देखें—इसमें कितनी स्वच्छता श्रेष्ठता और गम्भीरता विद्यमान है। 'रत्न' का अर्थ है श्रेष्ठ अमूल्य सुन्दर। सांसारिक दृष्टि से रत्न (हीरा जवाहरात आदि) श्रेष्ठ होता है और कितना अधिक मूल्यवान होता है तथा सर्वतोभावेन सुन्दर भी होता है। गुरु रत्न वास्तव में रत्न के अनुसार गुरु-रत्न (श्रेष्ठ) थे। उनका व्यक्तित्व 'रत्न' के समान ही अमूल्य था। इसके साथ ही उनके सर्वाङ्गीण व्यक्तित्व का विकास सर्वथा सुन्दर था। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक उनकी जीवन चर्या सर्व प्रकार सुन्दर रही। वस्तुतः वे 'रत्न' ही थे। तीसरे मुनि शब्द के विशेषार्थ को देखें—कितनी सुन्दर अर्थानुभूति विद्यमान है। संस्कृत में 'मन ज्ञाने तथा मनु अव बोधने' धातु से यह शब्द बना है जिसका सामान्यतः अर्थ ज्ञान का मनन करना होता है। किन्तु जब इस धातु से 'मुनि' शब्द उणादि में 'इन्' प्रत्यय करने पर बन जाता है तब इसका अर्थ ही एक विचित्र चमत्कार को प्राप्त हो जाता है। इस मुनि शब्द की व्याख्या के सम्बन्ध में सिद्धान्त कौमुदी की 'तत्त्वार्थबोधिनी' टीका में इस प्रकार व्याख्या की गयी है—जो सर्व प्रकार इसकी गम्भीरता विशालता एवं उदात्तता को प्रकट करती है यथा 'मन्तारो वेदशास्त्रस्य तत्त्वावगन्तारो मुनयः' अर्थात् जो वेद-शास्त्र को जानने वाले और तत्त्व को प्राप्त करने वाले हों उन्हें मुनि कहते हैं। अब विचार कीजिए वेद क्या है? वेद समस्त ज्ञान के भण्डार को कहते हैं। तत्त्व—पञ्चतत्त्व (पृथ्वी जल तेज वायु, आकाश तथा तत्त्व (सार) अर्थात् पञ्चभूतों के ज्ञान के साथ ही सांसारिक सार को भी सर्वथा जानते थे। अतः स्पष्ट है कि वे ज्ञान और तप के वास्तविक मुनि थे।

इस प्रकार आप देखेंगे कि उनके जीवन में इस शब्दत्रयी की परम पावनी त्रिवेणी का कितना सुन्दर संगम था। जिस प्रकार किसी की भी श्रेष्ठता सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के सम्मिलित रूप से ही

सम्पन्न होती है, उसी प्रकार किसी भी साधु की साधुता वास्तविक रूप से तीनो गुरु, रत्न, मुनि शब्दो की त्रिधारा मे ही सम्पन्न होती है। जीवन की यह गहन अनुभूति का विकास उनके व्यक्तित्व मे विद्यमान था। उनमे गुरुत्व था, रत्नत्व था, और था सर्वोपरि मुनित्व जिसने भारतीय जन मानस को सर्वथा आलोडित कर दिया था। वस्तुत उनका व्यक्तित्व महान् था।

आपका हृदय कोमलता, दयालुता मधुरता एव साधुता का आगर था। यही कारण था कि आप अन्य के किसी प्रकार के दुख को नही देख सकते थे। आप की प्रथित प्रकृति मे मानवीय तत्वो की उत्कृष्ट से उत्कृष्ट भावना विद्यमान थी। सामाजिक मार्ग को हटाकर आपने मुनि-मार्ग को जीवन मे सर्वथा केवल स्वीकार ही नहीं किया अपितु उस मार्ग पर जीवनपर्यन्त चलते रहे। गुरुता मे हिमालय के समान उस सयमित जीवन के भार को आपने अपने आत्मबल से उठाकर सुखपूर्वक अहर्निश परमार्थ पथ के पथिक बने रहे। साधु-जीवन की साधुता से वे ओत-प्रोत थे। ज्ञान मार्ग को अपनाकर शाश्वत सिद्धि को सम्प्राप्त किया। आपके साधु-जीवन की सयम शीलता को सभी ने सब प्रकार देखा था। आप रात्रि-दिन ज्ञान-चर्चा मे सलग्न रहते थे। रात्रि मे केवल ३ घण्टे शयन करते थे। २१ घण्टे निरन्तर कार्यरत रहना किसी महान् पुरुष का ही काम है। मानापमान से परे आपका व्यक्तित्व था। राग-द्वेष शत्रु-मित्रादिक की गन्ध आपके पास नाम मात्र को भी नहीं थी। उनका विचार था कि जिसमे 'अहम्' नही है उसे ससार के इन राग-द्वेषो तिरस्कार आदि से क्या सम्बन्ध है? आपके कार्यशील जीवन का व्यक्तित्व विशेष था, इस व्यक्तित्व का वास्तविक दर्शन कोई वास्तविक नेत्र वाला व्यक्ति ही कर सकता है। जीवन जटिल ग्रथित ग्रन्थि का आपने सबके समक्ष खोलकर रख दिया। आपके इस महज्जीवन की ज्वलन्त ज्योति की सर्वप्राथमिकी विशेपता यह थी कि आप आजन्म ब्रह्मचारी रहे, यही कारण था जिसके बल से आपको समस्त साधन सुलभ थे। जीवन मे यदि कुछ शक्ति है तो वह है ब्रह्मचर्य। बिना इस शक्ति के व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण समुचित विकास सर्वथा सम्भव नहीं हो सकता है।

आपके यहाँ ज्ञान की प्रपा प्रतिक्षण प्रत्येक के लिए खुली थी जिसमे ज्ञानाम्बु पीकर प्राणी अन्तर्दाह को सर्वदा शान्त कर ले। आपकी प्रथित प्रतिभा के प्रभाव से प्रतिपक्षी भी प्रभावित हो प्रश्रय प्राप्त करते थे। आपकी वक्तृत्व कला, लेखन कला दोनो ही सर्वश्रेष्ठ थी। वक्तृत्व कला के बल से गूढातिगूढ विषय को आप सरलातिसरल ढँग से साधक को समझा देते थे।

लेखन-कला के सम्बन्ध मे उनके ज्ञान की गम्भीरता इसी मे देखी जा सकती है कि मोक्ष जैसे गूढ विषय पर आपने 'मोक्ष-मार्ग प्रकाश' नामक ग्रन्थ की रचना की है। यद्यपि आपने अनेकानेक अन्यान्य ग्रन्थ भी लिखे हैं जो अपने विषय मे सर्वाङ्गपूर्ण हैं, फिर भी इस ग्रन्थ की विशेषताएँ विद्वद्वृन्द को बर-बश अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। आपके ज्ञानार्जन एव ज्ञान-वर्धन की ही ये ऐसी विशेषताएँ हैं जिनने समस्त समाज मे सद्भावना का सञ्चार किया। प्रारम्भ से अन्त तक आपके व्यक्तित्व का विशाल ध्वज विपद् मे अक्षीण-अजीर्ण रूप से लहरा रहा है। ससार के रङ्गमञ्च पर आपने एक सफल अभिनेता के पाठ से जन समूह को सर्वतोभावेन चमत्कृत कर दिया। विद्वत्ता के विशाल वैभव-वर्णन मे आपके व्यक्तित्व की विचारधारा सर्वथा विचारणीय है।

यद्यपि आप सम्प्रदाय से जैन साधु थे किन्तु आपको सम्प्रदाय की अपेक्षा धर्म की विशेष चिन्ता थी और उस पर श्रद्धा विशेष थी। स्निग्धता सज्जनता मृदुता तथा ऋजुता की वे प्रतिमूर्ति थे। धनुता अहंकारता मत्सरता एवं रागता से सर्व प्रकार दूर थे। इन दोषों की छाया भी उन्हें नहीं छू सकी थी। उनके अमन्द अनुपम अमल अन्तःकरण में समता की सरिता सतत प्रवाहित थी और कठिन कालकूट कष्ट-कण्टकों के झेलने की आप में अबाधित क्षमता भी थी। आपके सौम्य सोम मुख से उन्नत सुधा की वर्षा होती थी जिसका दर्शन एवं पान करके वास्तविक भक्त जन अमन्द आनन्द की अनुभूति का अनुभव करते थे।

संक्षेप में यह सतत सत्य है कि आपका व्यक्तित्व नवधा संस्कृति-समुन्नतिकारक है। आपका प्रशस्त प्रयास प्रायः प्रशंसनीय ही नहीं अपितु सर्व प्रकार अनुकरणीय एवं स्मरणीय है। उनका जीवन दर्शन दार्शनिक-दर्शनों का दर्शनीय दर्शन है। उनके मधुर जीवन-सागर में विद्वत्ता के विमल विचारों की विशाल वीचियाँ हैं। उनका मानव-जीवन मानवता की भाव का मनोहर मन्दिर है। उनका व्यक्तित्व जन जीवन-जलधि में ज्योतित चलमान है। उनकी अमर भारती भारती के भव्य भावों का भाण्डार है। उनका व्यक्तित्व जीवन के उत्तर का उचित उत्तम उदाहरण है। उनकी सुन्दर साधना सांसारिक सामयिक समस्याओं का सुखद समाधान है। उनकी जीवन-विधि वेद-विधि विविधता की विशद विधायिका है। उनके व्यक्तित्व का सांसारिक संविधान संस्कृति-समुन्नति का सुन्दर तथा सुदृढ़ सोपान है। वास्तव में वे दया दान दमन की दर्शनीय द्वारका व साथ ही धर्म दर्शन कला की कलित कालिन्दी में उनका मज्जन मय जीवन था।

इसके साथ ही हम उनके कृतित्व की विभूति के विभाग का विशेष दर्शन उनके द्वारा रचित आध्यात्मिक गीतों की बहुलता में सत्प्रकार प्राप्त करते हैं जिनमें भारतीयदर्शन की आत्मा के साक्षात् दर्शन दिखलाई देते हैं। यहाँ हम इन भाव-भरे गीत-गीतों की गीता को गुम्फित कर अपने को संसार के सार को समझने में सर्वथा समर्थ या सक्षम। इन गीतों में चित्त चित्त यौवन का यथार्थ चलता हुआ दिखाई देता है। उनके इस 'आत्म-ज्ञानोपदेश' गीत में संसार के वास्तविक चित्र का चित्र देखने को मिलता है। शरीर की सार्थकता ज्ञानामृत की विशेषता काल की कठोरता जरा-मंजारी की जड़ता आदि के दर्शन आप इस पद्य में प्राप्त करेंगे। जीवन की वास्तविक अनुभूति का यह कितना सुन्दर साहित्यिक स्वरूप सम्प्राप्त है —

न्यारी फूल सी देह बालक में पलटे, क्या जवानी राखे रे।
आतम ज्ञान अमीरस तजने जहर जड़ी मुख चाखे रे॥ १॥

काल बली भारे भाग्या भारे, जो पीछे जिम झांके रे।
जरा मजारी छल कर बैठी ज्यूँ मूसा पर ताके रे॥ २॥

शिर पर पाप लगी खटचोई ते बड़ा छिप गमावे रे।
जिसके भार भार की नैया भवन विषम किम जावे रे॥ ३॥

इक मनुष भू पल मे पलटे, देह नेह तन छाके रे।
इन सूँ मोह करे तो मूरख इम नहीं आगम साखे रे॥ ४॥

'रतन चन्द्र' जग देख तृथा, कहिये धर्म विपाकी रे।
शिव सुख बोध दियो मोहि सतगुरु तिण सुगणे अभिलाषी रे ॥ ५ ॥

इस प्रकार हम उनके इस गीत में जीवन के सार का रहस्य बड़ी सरलता से प्राप्त कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त हम उनके जीवनोपयोगी 'शिक्षाप्रद दोहों' पर यदि विचार करें तो जो उन्होंने अपने द्वारा रचित "तत्वानुबोध" में लिखे हैं। इन दोहों में भारतीय नीति-नैपुण्य का बड़ा विद्वत्तापूर्ण वर्णन किया है जिसका सम्बन्ध सामयिक समाज के व्यवहार-ज्ञान से सर्वथा सम्बन्धित है। नैतिकता, सच्चरित्रता, पवित्रता का पावन पीयूष पद-पद पर प्राप्त हो रहा है। इन दोहों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जन-वाणी में जनता को जागृत करने की ज्योति आप में सर्वत्र जगमगा रही थी। सत्सङ्गति के सम्बन्ध में आपका यह दोहा कितना सुन्दर, भावपूर्ण तथा अनुभवयुक्त है —

सगति सोभा उपज निरख देख यह वयण।
सोई कज्जल आरसी, सोई कज्जल नयण ॥

वास्तविक नरत्व का लक्षण आपके इस दोहे में देखने को मिलता है—

जिस नयण मे लाज है जिस वयण मे सांच।
शील 'रतन' जिस तन वसे, सो नर जाणो पाच ॥

समयानुकूल कही हुई वार्ता सर्वदा सार्थक, सिद्ध और आनन्दकारक होती है, समय का विचार न करते हुए कह देना सब प्रकार से निरर्थक एवं हास्यास्पद होता है। इसके सम्बन्ध में आप के निम्न दोहे समाज को सतत सावधान करते हैं —

"फीकी भी नीकी लगे, कहिये समय विचार।
सबको मन हर्षित करे, ज्यों विवाह, मे गार ॥
नीकी भी फीकी लगे, विन अवसर की वात।
जसे बरणत जुद्ध मे, रस सिणगार न सुहात ॥"

इसके साथ ही साधु-परीक्षण, स्त्री-परीक्षण और शूर-परीक्षण के सम्बन्ध में आपकी उचित उक्ति कितनी सुन्दर तथा स्वाभाविक है।

"साधु वचनें परखिये, विपत पडे पर नार।
शूरा जब ही परखिये, जब चालें तरवार ॥"

उनके विशाल कृतित्व का विकास उनके इस आध्यात्मिक गीत में विशेष रूप से हमें देखने को मिलता है। जीवन की अनवरत अनुभूति के द्वारा वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण आगम आदि का समस्त सार सर्वांश में सन्निहित है। यह गीत केवल श्रवणीय तथा पठनीय ही नहीं अपितु मननीय, स्मरणीय एवं अनुकरणीय है। जीवन की इतनी गहन क्रियात्मक दार्शनिकता सत्यार्थ में दर्शनीय है। वे कहते हैं —

'अरे प्यारे करनी हो कछु कर रे,
काया रहने की नाहीं।
आप मुसाफिर सोता क्यों रे,
तू आप मुसाफिर सोता क्यों रे॥
तू मौत भीमाणी को डर रे
अरे प्यारे मौत भीमाणी को डर रे।
काया रहने की नाहीं॥ १॥

किसकी नामण किसकी जामण
किसकी है घर वर माया रे॥ २॥

त्यागी पाई सच्ची भाई तू फूंक-फूंक पग धर रे।
काइ रे तेरा कुटुम्ब कबीला काई रे तेरा घर रे॥
मा बस्ती में मेरा कुटुम्ब कबीला जगल में मेरा घर रे।
ज्ञान शील तप भावना भावो ये ही है 'रतन' तारो रे॥

इस प्रकार उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व म भारतीय संस्कृति के मौलिक तत्व—त्याग तपस्या और वैराग्य सर्व प्रकार पाये जाते हैं। उनका व्यक्तित्व भोग का नहीं त्याग का था। उनमें भौतिकता नहीं आध्यात्मिकता विद्यमान थी। तन मन धन के भोगवाद पर त्यागवाद की चिरन्तन विजय थी। उनके आचार और विचार में पारस्परिक सम्बन्ध था अर्थात् आचार में विचार और विचार मे आचार अबाध गति से प्रवाहित होते थे। जिस वीतराग महात्मा महामनीषी महापुरुष ने शाश्वत सत्य एवं संस्कृति की सतत रक्षा की है यदि उस अमर भारतीय संस्कृति का संरक्षक सजग प्रहरी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं है। वे भारतीय संस्कृति धर्म दर्शन कला के समन्वय थे।

उन्होंने शास्त्रार्थ में केवल बाह्य प्रतिपक्षियों को ही नहीं जीता अपितु आत्म-शास्त्रार्थ में बाधक आन्तरिक काम क्रोधादि षड् शत्रुओं पर भी विजय प्राप्त किया। क्योंकि बिना आन्तरिक शत्रुओं के वध मे किये कोई विजेता वीर नहीं हो सकता। वास्तविक वीर वही होता है जो इन आन्तरिक काम क्रोध मोह आदि शत्रुओं को शान्त कर देता है। इस अर्थ मे वे सच्चे वीर थे। उन्होंने जीवन मे स्वच्छ और गम्भीर ज्ञान प्राप्त किया था किन्तु उस ज्ञान का कदापि अभिमान नहीं किया। साथ ही तप त्याग वैराग्य की उत्कट साधना की किन्तु उसका कभी भी प्रचार एवं प्रसार नहीं किया। उनकी अवस्थात्रयी ज्ञान संयम तथा मङ्गल के लिए थी अर्थात् बाल्यावस्था ज्ञानार्जन के लिए, युवावस्था संयम के लिए और वृद्धावस्था मङ्गलमय जीवन व्यतीत करने के लिए थी। उनका समस्त जीवन केवल बहुजनहिताय और बहुजनसुखाय के लिए ही नहीं था अपितु सर्वजनहिताय और सर्वजनसुखाय के लिए था।

महापुरुषों की महत्वाकांक्षा की सरल स्वाभाविकता का सन्दर्भ यही होता है कि वे अपनी कठोर जीवन साधना के द्वारा जो कुछ विचार-वैभिन्य प्राप्त करते हैं उसे केवल अपने तक ही सीमित न रखकर उसे जन-जन कल्याणार्थ सतत सहर्ष समर्पित कर देते हैं। यही उन्होंने किया। जहाँ-जहाँ वे

गये, जो-जो उनके पास आया, सब जगत् त्रय व्यक्तियों की ज्ञान-पिपासा का उद्योत अपने उपदेशामृत से शान्त किया।

गुरु-रत्न-मुनि अपने युग के विख्यात विजेता, तपोनिधि, तत्त्ववेत्ता, सत्साहित्य-स्रष्टा, उचित उपदेष्टा तथा प्रखर प्रवक्ता थे। उनके 'गुरुत्व' में ओज था, उनके 'रत्नत्व' में तेज था और मुनित्व में था वच। उनमें ओजस, तेजस, और वचस का साधु सङ्गम था। उनके वाणी वैभव से विशिष्ट विद्वद्वृन्द भी विवाद रहित हो विस्मृत होते थे। शास्त्र-चर्चा की चरम कृति व चमत्कृति से चञ्चल भी चटपट अचञ्चल हो जाते थे। यह था उनके गुरुत्व, रत्नत्व, मुनित्व के व्यक्तित्व कृतित्व का प्रभाव, जिसको जन-जन जीवन को जगती में जागृत कर ज्योतित्व तक दिया। ऐसे शाश्वत सिद्ध सत्पुरुष की स्वर्गारोहण शताब्दी का समायोजन समाज द्वारा आगामी सम्वत् २०२१ वैशाख शुक्ल १५ पूर्णिमा मङ्गलवार को मङ्गलमयी वेला में सम्पन्न हो रहा है, हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि सभी सभ्य गुरु-भक्त समाज-सेवी सज्जन गुरु-निर्दिष्ट मार्ग पर चलते हुए जनता जनार्दन की सेवा से अधिकाधिक लाभान्वित होंगे। गुरु गृहीत-गुण-गान की तत्परता में ही सब की सफलता है। प्रभु-प्रसाद से ही प्रगति के प्रशस्त पथ पर बढ़ सकेंगे ऐसी हमारी ध्रुव-धारणा है।

* * *

गुरुवर-सन्देश

(महेश चन्द्र जौहरी कक्षा ७)

(१)

गुरुवर 'रत्न' जगाते तुमको, वीर शिष्य जग जाओ तुम।
भारत भू को कर प्रसन्न सब, अधिक ज्ञान उपजाओ तुम॥

(२)

लेकर शक्ति साथ में सब तुम, अपनी शक्ति बढ़ाते जाओ।
गुरुवर सत्य बताते सबको, अधिक ज्ञान उपजाओ तुम।

(३)

अपना यह उद्देश्य समझलो, ज्ञान बढ़ाना है तुमको।
अपनी धृष्ट सभी आलसता, दूर भगाना है तुमको॥
गुरुवर रत्न जगाते तुमको, वीर शिष्य जग जाओ तुम॥

* * *

गुरुदेव के रचित गीतों की समीक्षा

श्री ब्रजेन्द्र सक्सेना

पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज द्वारा रचित गीतों की समीक्षा लिखते समय मेरे मानस पटल पर अनायास ही भक्ति-कालीन कवियों के मनमोहक चित्र उभरने लगते हैं। लगता है पूज्य गुरुदेव की सरल-सुबोध रचनाओं में कबीर, सूर, तुलसी और मीरा की आत्मा बोलती-सी है। कारण पूज्य गुरुदेव की रचनाओं में कबीर के गीतों की गूढ़ व्यंजना, सूर और तुलसी की अपने-अपने आराध्य देव की अर्चना व आराधना और मीरा की भाषा से मेल खाती हुई साधना के सूत्र में पिरोई गई कविता की पुष्पांजलियां देखने को मिलती हैं।

भक्त कवियों की भांति पूज्य गुरुदेव के सभी गीत गेय हैं। उन गीतों में कवि-हृदय की सहज कोमल अनुभूतियां भी हैं और भक्ति रस में पगी भावनामयी गीत सुघर कविता भी है। भक्ति में तल्लीन कवि ने अपने गीतों को काव्य की अलंकारिकता अथवा कविता की विलक्षणता से सजाने अथवा संवारने का कहीं भी लेश मात्र प्रयत्न नहीं किया है। उनके गीतों में पर्वत से निकल कर शिलाखंड से टकराने की भीषण प्रवाह-गर्जन नहीं है। गीतों की भक्तिमयी सरिता समतल भूमि पर बहती हुई कल कल करती शान्त रस की धारा प्रवाहित करती है। इन गीतों के तट पर खड़ा तीर्थ-यात्री गीत-गंगा में भक्ति की स्निग्धपूर्ण जल-धारा से आँख मिचौनी खेलती कल्पना की चपल उर्मियों की मधुरता का अनुभव करता ही है, साथ ही अवगाहन करने पर उसे ज्ञान के अमूल्य अनमोल व चमकते मोती भी मिलते हैं। पूज्य गुरुदेव के गीतों में हृदय को वशीभूत करने की अनुपम क्षमता है। गीतों की गरिमा के कुछ सुन्दर भव्य उदाहरण —

प्रात उठ श्री शांति जिनेश्वर का सुमरण कीजे घड़ी घड़ी।
सकल रोग हरे भव संचित जो ध्यावे मन भाव धरी॥
जनमत पाप जगत सुख छलिया मरिमा रोग प्रताप भगी।
घर घर अम्बर आनन्द बरतें उमड़ी हियड़ी हरष भरी॥
आतप व्यन्तर विषम भय भाजै जैसे देखत भूप हरी।
पूजन किये शुभ विधि ध्याता, प्रबल परिचय प्रभ धरी॥
भए जिनालय भरत के आसन परमार्थ पद परस करी।
और देव अनेक शुभ सेवे जो शुभ मन्दिर कैसि खरी॥
प्रभु तुम नाम जपे घट अन्तर, तो सब करिये कर्म अरी।
"रत्नचन्द्र" विनवता स्वामी पाप की ताप बचाय हरी॥

पूज्य गुरुदेव के गीतों की काव्य माधुरी का एक अन्य मनन उदाहरण—

अलख निरजन मुनि मन रञ्जन, भय भजन विश्रामी ।
शिवदायक नायक गुण गायक, पावक है शिवगामी ।।
"रत्नचन्द्र" प्रभु कुछ नहीं मागत, सुण तू अतरयामी ।
तुम रहना नी ठौर दिला दो, तो हूँ सब भर पामी ।।

पूज्य गुरुदेव ने अपने गीतो मे गुरु महिमा के अनेक सुन्दर गीत गाये हैं । उनके गुरु कबीर के गुरु से कुछ कम नही हैं । कबीर कहते हैं —

गुरु गोविन्द दोनो खडे, काके लागू पायँ ।
बलिहारी गुरु आपको, गोविन्द दिए दिखाय ।।

पूज्य गुरुदेव कहते हैं —

'रत्नचन्द्र" कहे गुण गुरु सेवो ।
जो चाहो मुक्त पुरी ।।

पूज्य गुरुदेव ने अपने गीतो के माध्यम से ज्ञान व भक्ति के श्रेय व प्रेय पूज्य गुरु श्री हरजीमल जी को ही माना है । गुरुदेव न सतगुरु के सरल शिष्य होने के नाते विनीत भवित-भाव के सुन्दर गीत गाए हैं ।

पूज्य हरजीमल जी गुरु भेटचा, रतनचन्द शिष्य शसयमेट्या ।
बिनोली चौमास करया सेठ्या ।।

अथवा

ऋषि रतनचन्द्र कहे मोक्ष पथ पग धर रे ।
सीख सुगुरु की मान जगत् सूँ तिर रे ।।

अथवा

साधु गुण गाया रे, मन-मन हरष करी, नारनौल मे जोय
ऋषि रतनचन्द्र शिष्य हो हरजीमल जी तणो,
निध ऋषि सिध तन लोय ।।

गुरु महिमा के अनेक उदाहरण गुरुदेव की गीताजलि मे देखने को मिलते हैं । उनके गीतो में जिन-धम के प्रति अखड विश्वास की अभिव्यक्ति तो है ही साथ ही मानव जीवन की मुक्ति का ज्ञानमय सन्देश भी है । गुरुदेव ने अपने गीतो मे लिखा है—

शान्ति करता श्री शान्ति जिन सोलमा,
मन हर्ष धर चरण जुग शीस नाऊँ ।
जन्म अरु मरण दुख दूर करवा मणी,
एक जिन राज की शरण जाऊँ ।

एक अन्य स्थल पर—

श्री जिन वाणी अमिय समाणी सुधा मारग बुलायो।
रतनचन्द्र कर जोड़ि यावे इस वाणी सरणायी॥

कबीर की भांति पूज्य गुरुदेव ने भी आत्मोपदेश के अनेक दोहों की रचना की है। जैसे —

काया माया बादली इस संसार मंझार।
सोच न कर है बावड़ी रतनू कहै बारम्बार।

पूज्य गुरुदेव उच्च कोटि के सिद्ध सन्त थे। उनके आत्मा की शुचिता का देवत्व और देवत्व की सहज नम्रता थी। मन में प्रदीप्त हृदय मन्दिर में छलनाहीन शान्ति का अखंड साम्राज्य था। परम चिन्तन की आनन्दमयी अनुभूतियों ने अपने आराध्य देव की सीमाहीन विराटता के अनेकों मधुर भावुक स्वप्न चित्र सजाये थे। करुणा की सजल तूलिका ने देवत्वमयी शुचिता छलनाहीन शान्ति और सीमाहीन विराटता को दार्शनिकता का रंग देकर पूज्य गुरुदेव को एक साथ भक्त कवि व दार्शनिक *बना दिया। उनके गीतों में मानवता की आत्मा ने अपना स्वप्न बना लिया था। संकीर्णता की दीवारें* टूट गयीं। भक्त की सीमाहीन साधना ने अपने प्रभु की गौरवमयी अलौकिक क्षमता के हृदयस्पर्शी गीत गाए हैं। विराट प्रभु की मनोहर मूर्ति झांकी के दार्शनिकतापूर्ण चित्रों का अवलोकन कर देखिये कितना सुन्दर चित्रण है—

सांवलिया साहब सुखदायक मुरारी।
भवसागर माँहि तुम पकरो बाँहेली मोहेतारो।
जनम जनम नयन तू निरखी हरखी हूँ महतारी।
पिता परम सुख पायो प्रभु जी को लख मोहनगारी।
जीवन में प्रभु जोर दिखायो विस्मय भया हूं मुरारी।
राज सावन मिल ब्याहन आए, छोड़ दिया मन धारी।
नेम विवाह में जीव छुड़ाए, त्यागी है राजुल नारी।
सहस्र वन सुं संयम लीनो आप भया ब्रह्मचारी।
परद्युम्न साम्ब कंवर से तारे आठ हरि की नारी।
पांडव पांच द्रौपदी उबारी जादौं वंश सुधारी।
सहस अनेक पुरुष निस्तारे पहुँचा मुक्त मंझारी।
ऋषि रतनचन्द कहै, अब तो आई हमारी बारी।

तथा

ब्रह्मचारी चिदानन्द चिद्रूप तू,
सिन्धु जगदीश तू अमर नामी
अचल में अचल निराकार ज्योतित तुम
अलख परमात्मा परम स्वामी।

जगत लोचन तुम ही जगत आधार,
परम कृपाल दया सिंधु स्वामी ।
भगत वत्सलमन्य जीव तारक तुम्हीं,
निज रूप गुण रमण शिव सुख पामी ।

त्यारण तिरण तुम विरद श्रवण सुणी,
आस धर द्वार तुम तणे आयो ।
दयावन्त जिन राज सवज्ञ तुम,
तार करतार भव दुख जायो ।
तप जप सयम सेवन उत्कठ बहु,
करम पिण भरम कर तिमिर छायो ।
काम वश लोभ वश आत्मा मघवत,
वश तुम ज्ञान से नाहि पायो ।
शान्ति जिन सुमरता निर्मल चित्त करी,
भव जलधि भ्रमण दुख दूर जावें ।
हरजीमल जी गुरु चरण भेटिया,
'रतन' बीनती करत तुम गुण गावें ।

शरीर की क्षणभगुरता का भी एक उदाहरण देखिए—

इन्द्र धनुष ज्यूँ पलक मे पलटे, देह खेह सम देखे रे ।
इण सू मोह करे सो मूरख, इम कहूँ आगम साखे रे ।
रतनचन्द्र जग देख वृथा फदिए कर्म विपाकी रे ।
शिव सुख बोध दियो मोहि सत गुरु, विण सुख रो अभिलाषी रे ।

गुरुदेव के गीतो मे भक्ति की सकीणता दृष्टिगोचर नही होती । उन्होंने ज्ञान के मोती धम के असीम सिन्धु से सकलित करने मे उदारता का परिचय दिया है । वह 'शिव', 'राम', 'मुरारी' व सरस्वती की सीमा मे पहुँचकर गीतो को ज्ञान का आलोक देने मे निःसन्देह विशाल हृदय रहे हैं —

शिव सुख बोध दियो मोहि सतगुरु तिण सुख से अभिलाषी रे ।

अथवा

श्री जिन पद पकज नमूँ, गणधर मुनिवर वृन्द ।
वरदायक वर सरस्वती, समरत होय आनन्द ॥

शुद्ध दशा आतम नी जाणो, सहज भावहि लगायो ।
रतनचन्द्र आनन्द भयो जब आतम राम रमायो ॥

पूज्य गुरुदेव के एक ही गीत में सूर व तुलसी की विनय शैली, कबीर की गुरु दर्शन भावना और मीरा की भाषा से मिलती जुलती अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। कविता की श्रेष्ठता का इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है।

* * *

भूल न पाऊँ

(चैतन्य कुमार लवानियाँ कक्षा १२ कला)

जनम जनम तक भूल न पाऊँ, गुरुवर! पावन प्रेम तुम्हारा।

माना मुझ से दूर हुए हो
मिलने में अति कठिन हुए हो।
ममता निर्मम लगती है जब
तुम इस जग से दूर हुए हो।

आता याद सदा है मुझको गुरुवर! सरल स्वभाव तुम्हारा।
जनम जनम तक भूल न पाऊँ गुरुवर! पावन प्रेम तुम्हारा।।

जीवन के सपनों का मेला
कभी न तुम बिन रहा अकेला।
सभी सफलता मिली हुई अब
गुरु-प्रसाद की आई बेला।

इस जीवन में चुका न पाऊँ गुरुवर! यह आभार तुम्हारा।
जनम जनम तक भूल न पाऊँ गुरुवर! पावन प्रेम तुम्हारा।।

तोड़ो अब सब जग के बन्धन
जोड़ो मन का दीपक कम्पन।
तब गुरु को पा फिर मिल जावें
इस वसुधा के ये छन कन कन।

कभी न भूलें सदियों तक हम ये जग नेह अपार तुम्हारा।
जनम-जनम तक भूल न पाऊँ गुरुवर! पावन प्रेम तुम्हारा।।

* *

श्री रत्नचन्द्र जी महाराज : सामाजिक सुधार व तत्सम्बन्धी साहित्य

श्री मथुराप्रसाद गर्ग

भारत भूमि पर समय-समय पर अनेक साधु एवं महात्मा जन्म लेते रहे हैं और अपने आचरणों एवं उपदेशों द्वारा जन-जन का मार्ग दर्शन करते रहे हैं। अनेक साधु महात्मा अपने कार्यों के लिए विख्यात हो गये हैं किन्तु अनेक अपनी ऐकान्तिक साधना करते रहे। ऐसे साधु सन्तों का स्थान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि उनकी दिव्य ज्योति वायुमण्डल में व्याप्त होकर ही लोगों को प्रकाश देती रहती है।

हमारे चरित नायक श्री रत्नचन्द्र जी महाराज भारत भू के उन अनेक रत्नों में से एक अति जाज्वल्यमान रत्न हैं। वे भारत भूमि की पावन परम्परा के श्रेष्ठतम प्रतीक हैं। उन्होंने बचपन में ही समझ लिया कि मानव का कल्याण भोग में नहीं त्याग में है, धन सम्पत्ति में नहीं अनन्त ज्ञान में है, हिंसा में नहीं अहिंसा में है, वैर में नहीं प्रेम में है।

जो दीपक स्वयं में भली भाँति दीप्त नहीं होगा, वह दूसरों को कैसे दीप्त कर सकता है। स्वर्ण जब तक अग्नि के बीच में होकर नहीं निकलेगा, शुद्ध कैसे होगा। भारतीय परम्परा आदर्श प्रस्तुत करने की है, केवल दूसरों को शिक्षा देने की नहीं। रत्नचन्द्र जी महाराज ने पहले अपने जीवन को ही त्याग व तपस्या की कसौटी पर कसकर खरा एवं शुद्ध बनाया। प्रत्यक्ष शत्रु पर शारीरिक बल से विजय प्राप्त करना अत्यन्त ही सरल है किन्तु हमारे शरीर में जो छिपे हुए काम-क्रोधादिक शत्रु हैं उन पर विजय प्राप्त करना कठिन है। इसी दृष्टि से भारतीय संस्कृति में राजाओं से अधिक त्यागी, तपस्वी महात्माओं को अधिक महत्व दिया गया है।

इस प्रकार सर्व प्रथम आपने इस दुर्लभ तप को साधा। यही नहीं आप में स्वाध्याय व चिंतन के महान गुण थे और अपनी कुशाग्र बुद्धि के द्वारा आपने संस्कृत तथा प्राकृत का गम्भीर अध्ययन किया लेकिन साहित्य और विशेषकर कविता तो स्वाभाविक स्रोत है जो अनायास ही मनुष्य के मुख से निकल पड़ता है। पूज्य रत्नचन्द्र जी महाराज ने भी अपने धार्मिक व सामाजिक उपदेशों को भी कविता-रूपी वाणी दी है। आपकी कविता में बनावट नहीं अपितु सरलता और सादगी तथा ओज है। आपने अनेक ग्रन्थ लिखे जिनका धार्मिक तथा साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्व है किन्तु यहाँ संक्षेप में उनके सामान्य जन के धार्मिक व सामाजिक जीवन से सम्बन्धित विचारों का ही उल्लेख करूँगा।

गुरु सम्बन्धी विचार

सभी धर्मों में प्राय सद्गुरु को अत्यन्त ही महत्व दिया गया है। किन्तु सद्गुरु मिलना बहुत दुर्लभ है। लोग भ्रमवश कुगुरुओं के फेर में पड़ जाते हैं। पूज्य रत्नचन्द्र जी महाराज ने बराबर यही

उपदेश दिया है कि मनुष्य को सतगुरु की शरण जाकर धर्म मे प्रवृत्त होना चाहिये ।

सतगुरु संगत कीजे प्राणी । इसभव परभव सुख थाई ।

वे कुगुरु व कुदेव की पूजा की भर्त्सना करते है ।

कुदेव कुगुरु ने नित्य पूजे मिथ्र अन्तर्पत नहीं सूजे

विषय-वासना

निश्चय ही विषय-वासनाओ में पड़े प्राणी को विषय-वासनाएँ मधुबिन्दु के समान प्यारी लगती है । रत्नचन्द्र जी महाराज सन्मार्ग बताते हुए कहते है—

मधु बिन्दु सम विषया जाणी अनन्त दुखों नीछ खाणी
समज देख अन्तर ज्ञानी
विषया रस में मत भूले सतगुरु उपदेश तु मत भूले
देख सम्पदा मत फूले

दुर्व्यसन

पूज्य रत्नचन्द्र जी महाराज ने साधारण व्यक्ति को सद्मार्ग पर प्रवृत्त करने के लिये उपदेश दिया । उन्होंने बड़ी ही सरल भाषा मे मनुष्य को सात दुर्गुण जूआ मांस भक्षण मद्यपान वेश्या-गमन शिकार, चोरी परनारी गमन छोड़ने का उपदेश दिया है । मद्यपान के दोषो को कितनी सरल भाषा में आपने वर्णन किया है—

मद्यपान से सुध बुध जावे बहिन नारी कर माने ।
मुख दुर्गंध बहे मक्खी जिनके मद्यूमी में चित हाले ।

सांसारिक जाल

सांसारिक जाल का आपने अत्यन्त ही सरल शब्दो मे वर्णन किया है । जैसे मकड़े की फांसी तथा मकड़ी का जाल बताया है और जीव स्वयं ही जाल मे फँस जाता है —

राग द्वष और मोह मिथ्या रूप पलफांसी डारी
बाजीगर के मरकट ज्यूं स्यापना धारी ।
\+ \+ \+
अपनी भूल में आपही उलझे ज्यूं मकड़ी जारी
स्वजन स्नेही तात मात सुत बहिन बधू नारी
धर्म बिना इस जीवन का साथी कोइ न हितकारी

इस प्रकार पूज्य महाराज ने जीवनपर्यन्त धर्मोपदेश किया । जहाँ एक ओर आपने गहन दार्शनिक तत्वो का सूक्ष्म विवेचन किया वही सामान्य जन को भी सरल व मधुर भाषा मे-जीवन का रहस्य बताया तथा सद्मार्ग भी प्रशस्त किया ।

* * *

श्रद्धेय गुरुदेव : एक परिचय

द्वारा श्री हेमचन्द्र शर्मा

सरल हृदय था, सरल वाणी थी,
सरल कर्म था, "गुरुवर" का ।
सादा सरल, मधुर जीवन था,
श्री "रत्नचन्द्र" मुनीश्वर का ।।

पूज्य श्रद्धेय गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज का जीवन पवन-पावन गगा के निमल जल के मानिन्द कल्याणकारी एव वन्दनीय है । आप अपने समय के महान् विद्वान, क्रियाशील महात्मा तथा परम त्यागी मुनिराज थे । आपने अपने तपस्तेज से अनेकानक नवीन सन्तो को जैन धम का प्रतिबोध देकर बहुत-सी भव्य आत्माओ का कल्याण किया है ।

आपका जन्म जयपुर राज्यान्तगत तातीजा नामक रम्य ग्राम मे वि० स० १८५० भाद्रपद कृष्णा चतुदशी को क्षत्रिय कुल भूपण चौधरी गगारामजी के सम्पन्न परिवार मे हुआ था । पूजनीया मा का श्री नाम श्रीमती सरूपा देवी था । "यथा नाम तथा गुण" के अनुरूप भावी मुनिराज के शिशु स्वरूप का नामकरण सस्कार "रत्नकुमार" किया गया ।

लगभग ग्यारह-बारह वप की अवस्था मे जब बालक गुलाबी यौवन के मनमोहक दिवा स्वप्न मे खोए रगीन जीवन के स्वप्निल चित्र बनाया करते ह, यह नव यौवन की देहली पर खडा बाल-सुलभ सरलता व शुचिता का प्रहरी सासारिकता के अन्धकार को निगल कर प्रकाश का पावन पीयूप पिलाने की पवित्र भूमिका रच रहा था । "मरता" को "अमरता" का वरदान देने यह भावी सन्त पूज्यपाद श्री हरजीमल जी महाराज के श्री चरणो मे बैठा दीक्षा प्राप्त कर रहा था । जैन-धर्म की दीक्षा कितनी कठोर एव कितनी कष्टसाध्य साधना होती है । परन्तु भावना के दृढ सकल्पी और साधना के चतुर शिल्पी ने वि० स० १८६२ भा० शु० ६ शुक्रवार के दिन दीक्षा ग्रहण की और फिर यावज्जीवन अखड रूप से पुनीत व्रत का पालन करते रहे ।

दीप से दीप जला करता है । ज्योतिमय गुरुदेव की दीप-ज्योति पाकर गुरुदेव का अन्तर्मन प्रदीप्त हो उठा । आलोक की अरुण किरण ने जन-जीवन के कल्याण के लिए सासारिकता की घनीभूत जडता को ज्ञानरूपी चेतना देने का महाव्रत लिया । गुरुदेव विद्यागुरु पडित रत्न श्री लक्ष्मीचन्द्र जी महाराज के चरण कमलो मे बैठकर शास्त्रो का ज्ञानोपाजन करने लगे । ज्ञान और तप की साधनामयी अग्नि मे तपकर शुद्ध स्वण की भाँति गुरुदेव का जीवन लोक-जीवन के लोभ, मोह, मद आदि मे ऊपर उठकर मानव जीवन को पवित्र मोक्षमार्गी बनाने लगा । गुरुदेव की मधुर वाणी मे गुरु गम्भीर विपयो को सरलता देने

का अमृतपूर्ण पुंज था। उनके प्रवचन मन की गहराई में उतर कर कलुष धो देते और मुदिता की सुरभि से मानवीय जीवन सुवासित हो उठता। गुरुदेव की मानवीय जीवन की महिमा साकार होने लगी। तप की ज्वाला में वासना की हिम गल गयी और साधना की उषा में अहं की निशा सदा के लिए विसर्जित हो गई।

अनेक क्षेत्रों को गुरुदेव ने अपने श्रीचरणों की पावन रज से पवित्र बनाया और सहस्रों जीवन जैन धर्म की दीक्षा से दीप्तिमान हो उठे। गुरुदेव की लेखनी से प्रवाहित ज्ञान-सुधा अनेक ग्रन्थों में समा कर समय और स्थान पर विजय की ध्वजा फहराने लगी। शास्त्रार्थ के लिए बड़े-बड़े विद्वान आएं तो परन्तु गुरुदेव के ज्ञान के आगे अभिभूत हो उठते। जीवन की तुच्छता मानो पारस का स्पर्श पा स्वर्ण-स्वरूप ग्रहण कर गुरुदेव के रंग में रँग जाती।

आगरे का लोहामण्डी क्षेत्र गुरुदेव का प्रिय क्षेत्र था। यहीं गुरुदेव ने भौतिक जीवन की अंधता को अध्यात्म की ज्योति दी थी यहीं गुरुदेव ने साधना की प्याऊ खोलकर प्यासे मानव की प्यास बुझाकर उसे शान्ति और सन्तोष दिया था। इसी लोहामण्डी में गुरुदेव ने आत्मा को परमात्मा में तल्लीन कर देने की अन्त चेतना पाई थी। इसी लोहामण्डी में मृत्यु शरीर को निर्वाण का सन्देश मिला था। मृत्यु भिखारिन की भांति आई और हाड़ मांस से बने शरीर की भिक्षा पाकर वैशाख शुक्ला पूर्णिमा (वै शु) संवत् १९२१ को आत्मा का अमर रूप संसार के कल्याण के लिए छोड़ गई।

पूज्य गुरुदेव श्रमण-संस्कृति के सक्षम थे। गुरुदेव की त्याग तपस्या व वैराग्य की त्रिवेणी आज भी जैन धर्म की शाश्वत गरिमा धारण किए मानव जीवन को तारती हुई जिन-सिद्धान्तों की कल-कल करती मधुर संगीत लहरी प्रवाहित करती रहती है। इस त्रिवेणी के तट पर खड़े होकर ज्ञानी ज्ञान की प्यास बुझाकर मानव जीवन की सफलता एवं सुख अनुभव करते हैं और साधक साधना का वरदान या परम तपश्चर्या का प्रसाद प्राप्त करता है। अन्त में गुरुदेव के श्रीचरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए मैं इतना ही कह सकता हूँ —

हृदय-मन्दिर में बिठा कर
नम्र अर्चन कर रहा हूँ।
आप का आदर्श जीवन
मैं ढँसा कर भर रहा हूँ॥

* * *

गुरुदेव की वक्तृत्व कला

श्री महावीर प्रसाद

महापुरुषो के जीवन का प्रत्येक क्षण एव उनके द्वारा प्रतिपादित प्रत्येक प्रक्रिया समाज की अमूल्य निधि होती है जिसे वह उस समाज के कणधारो के पास धरोहर के रूप मे छोड जाते हैं। यदि समाज की चैतन्य बाहुल्य प्रकृति होती है तो इस विशिष्ट धरोहर का शनै शनै विकास होता रहता है तथा समाज इकाई के रूप मे इससे भली भाँति लाभान्वित भी होता है, किन्तु यदि समाज जीवन की यह पवित्र चैतन्यता भौतिक समृद्धि की ओर आकर्षित हो जाती है तो निश्चित इस बहुमूल्य आध्यात्मिक धरोहर का त्वरित गति से विनाश प्रारम्भ होता हुआ दिखाई देता है।

आज वर्षानुवर्षो से उस महामानव द्वारा मण्डित सिद्धान्तो को समाज जिस श्रद्धा, पवित्रता एव लगन से अपनाकर स्वय के आराध्य के रूप मे स्वीकार कर चुका है, उसकी शताब्दी समारोह पर उनके जीवन की चतुर्दिक श्रेष्ठ विशेषताएँ अत्यल्प समय एव शब्दो मे भली भाँति स्मरण कर समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हुए यदि एक बार पुन समाज को उस अलौकिक व्यक्तित्व की ओर आकर्षित कर नव-चेतना एव स्फूर्ति दी जा सकती है तो इन पवित्र शुभावसर पर यह गुरुतर काय ही उन श्री चरणो मे वास्तविक श्रद्धाञ्जलि का समपण होगा।

वैसे तो महापुरुषो के सम्बन्ध मे किन्ही भी भावो की लिपिबद्ध अभिव्यक्ति करना केवल स्वय की योग्यता एव स्तर के प्रकटीकरण के अतिरिक्त कुछ नही है, तो भी मानव हृदय को आत्मिक शाति प्राप्त हो जाती है, जब भावो की पवित्र शृखला अचना के असख्य दीपो के रूप मे प्रतिबिम्बित होती है।

पूज्य गुरुदेव से सम्बन्धित विषयो के बारे मे किसी भी विचार की अभिव्यक्ति मात्र कल्पना करना ही स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है अन्यथा ये विषय लेखनी शक्ति के तो बाहर ही हैं।

क्योकि इस महान् सनातन भारतीय सस्कृति मे गुरु का स्थान अति उच्च तथा श्रेष्ठ है। गुरु का अथ सामान्यत 'गुरुता' से है अर्थात्—जिस के अन्दर आकर्षण हो। गुरुत्व किसी भी प्रकार का हो सक्षम होता है। क्योकि यह समाज के इहलोक एव परलोक के प्रतिनिधित्व का प्रतीक एव कसौटी है।

पूज्यवर समाज की वह महान् ईश्वर प्रदत्त विभूति थे जिनके स्वय सिद्ध तेजोमय व्यक्तित्व से उत्पन्न अनेक प्रतिबिम्ब आज भी समाज-जीवन को प्रकाशित कर रहे हैं।

इस नर केहरी की समाज-सेवा, साहित्य-सेवा धर्म-सेवा एव मानवीय मूल्यो की यथोचित

आराधना जहाँ अमिट एवं बेजोड़ है वहाँ उनकी मधुर ओजपूर्ण वक्तृत्वशक्ति की ओर दुर्लक्ष करना स्वयं को किसी सद्गुण की प्रतीति से पराङ्मुख करना है।

सामान्यत देखने मे यह आता है कि सद्विचारों को धारण करने वाला महामनीषी उन विचारों को उतनी सुदृढ़ता एवं सुयोग्यता के साथ समाज के समक्ष प्रस्तुत करने मे असमर्थ रहता है। श्रेष्ठ धर्मोपदेशक लेखक एवं विचारक किंचित् ही श्रेष्ठ वक्ता होते हैं किन्तु पूज्य गुरुदेव वस्तुतः एक अपवाद थे। उनके अन्दर जहाँ विचारो की सागर सदृश गहनता थी वहाँ वाणी में चट्टान सदृश दृढ़ता भी थी।

पूज्य आचार्य ने दिव्य-दृष्टि द्वारा अलौकिक ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् जब संसार सागर मे पदार्पण करने की कल्पना की उस समय वह पूर्णत भौतिक साधनो से रहित थे। उनके निकट कोई प्रचार-तन्त्र-साधन समाचार-पत्र आदि, धनीवर्ग की आर्थिक सहायता या राजकीय संरक्षण नही था। मात्र हृदय सरिता के अन्दर उत्पन्न अठखेलियाँ तथा किलोलें करती हुई आध्यात्मिक लहरें ही उनकी चट्टान सदृश वाणी द्वारा समाज का स्पन्दन बन गयी।

जहाँ जहाँ वह गुरुदेव जाते थे एक मेला-सा लग जाता था। उनके विहार-क्षेत्र के अन्तर्गत कदाचित् ही कोई ग्राम कस्बा अथवा नगर अछूता रहा हो जो उनके भावों से अनुप्राणित न हुआ हो। उनकी मधुरिम अमृतमयी वाणी उत्तराखण्ड के पवित्र रज-कणों म गूँज रही थी।

निर्धन परिवार का रत्न स्वयं की रसमयी वाणी द्वारा समाज का अमूल्य रत्न बन गया। समाज के जौहरियों ने उनके मूल्य को भली भाँति परखा। लोग उनके विचारो को तन्मयता के साथ सुनते थे और मंत्रमुग्ध हो स्वयं उनके विचारों मे दीक्षित हो रहे थे। यह था उस ओजमयी प्रभावी वाणी का क्रान्तिकारी प्रभाव।

उनके पास धन नही शासन था भय नही आस्था थी धारणा नही ध्येय था विषमता नही समता थी विरोध नही अनुरोध था शत्रुता नहीं स्नेह था मोह नही ममता थी भौतिकता नहीं आध्यात्मिकता थी माया नही मुक्ति थी समस्त ये गुण उनकी निर्मल वाणी द्वारा समाज को उद्भासित कर रहे थे। धनकुबेर धनास्था छोड़ धर्माधीन हो रहे थे। सामान्य समाज सांसारिक समस्याओ से विमुख हो सरस संत वाणी की ओर मुखरित हो उठा।

उनकी भाषा में न तो किसी प्रकार की क्लिष्टता थी न ही तथाकथित प्रगतिशीलता। भाषा मे संस्कृत पाली प्राकृत का जहाँ समावेश था वहाँ अवधी ब्रज एवं राजस्थानी जनभाषाओ का वाणी मे बाहुल्य था।

उनके विचारो में धैर्य संयम एवं तादात्म्य था। उनके दृष्टान्त अति ही सरस किन्तु हृदय स्पर्शी होते थे। प्रवचन करते समय उनकी मुखाकृति अति ही सौम्य प्रतीत होती थी। चेहरे पर हिमालय जैसी दृढ़ता नेत्रों मे वात्सल्य तथा वाणी मे आत्मविश्वास की झलक स्पष्टत दृष्टिगोचर होती थी।

उनकी वाणी में जहाँ एक ओर स्पन्दन उतार-चढ़ाव मधुरता एवं प्रवाह था वहाँ दूसरी ओर

क्रोध, कर्कशता, कटुता एव कठोरता नाम मात्र को भी नही थी। जनभावनाओ को भली भाँति समझने की उनमे सूक्ष्म दृष्टि थी।

वार्तालाप के मध्य उनका विनोदी स्वभाव सहज मे ही पराये को अपना बना लेता था। विनोद मे भी कभी किसी को तनिक भी चोट न पहुँचे, वार्तालाप करते समय इसका वह पूर्णरूपेण ध्यान रखते थे। अनेक ऐसे प्रसङ्ग जब सामान्य श्रावक किसी शका को लेकर अथवा निराशा-सागर मे डुबकी लगाता हुआ उनके समीप आता था तो शीघ्र ही उनकी मधुर प्रभावी वाणी द्वारा उसे प्रसन्नचित्त हो लौटते ही बनता था।

हल्का गौरवर्ण, छरहरा शरीर, उच्च भाल, इस व्यक्तित्व ने सरलता से ही प्रत्येक मन-मन्दिर मे स्थान पा लिया था।

उनकी ओजमयी वाणी का प्रत्यक्ष प्रमाण इससे बढ़कर अन्य कोई नही हो सकता कि नगर के इस क्षेत्र मे जैन गुरु परम्परा की जो नीव उन्होने डाली उस पर निर्मित यह छोटा-सा किन्तु सुदृढ़ भवन आज भी अबाध गति से सत्य, शाति एव अहिंसा का उपदेश देकर मानव मात्र के कल्याण का केन्द्र बना हुआ शीतलता प्रदान कर रहा है।

उनकी वक्तृत्व कला धीरता एव गम्भीरता से परिपूर्ण होने के साथ ही प्रभावशालिनी एव सफलतामयी भी थी। मानव हृदय उनकी शीतल वाणी से आत्मविभोर हो विह्वल हो उठता था।

आज के भौतिक उद्वेलित, निराश, विषम, शोषित, पीडित एव निराश्रित मानव-समुदाय को, आध्यात्मिक गगन का यह तेजस्वी रत्न-नक्षत्र युगो तक मानवता का सम्बल बनकर आध्यात्मिकता, आशा, समता, सुख, समृद्धि, शाति, त्याग, तपस्या एव आश्रय का महासदेश देता हुआ मानव जीवन को अमरत्व तक पहुँचने का पथ प्रशस्त करता रहेगा।

★ ★ ★

पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी एवं उनकी समाज सेवा

श्री सुन्दरसिंह शर्मा

पर उपकार बचन-मन-काया ।
संत सहज सुभाव खगराया ॥

—तुलसी

कवि के उक्त शब्दो मे सन्त जनो के सहज स्वभाव को परोपकारी बताया गया है । यह केवल कथन मात्र ही नही है वरन् वास्तविकता मे पूर्ण है । संसार मे जितने महान सत अवतरित हुए है उन्होंने अपने मन वचन और कर्म से जनता का जितना कल्याण किया है शायद उसकी कल्पना उनके अनुयायी ही ठीक-ठीक रूप मे कर सकते हैं । ऐसे परोपकारी महान सन्तो को जन्म देने के लिये यह भारत भूमि सर्वोपरि है । राम कृष्ण गौतम और महावीर स्वामी जैसी महान विभूतियों ने तत्कालीन भारत और भारत जनजीवन का कितना बड़ा उद्धार किया था । इन ईश्वरीय विभूतियो को छोड़िये साधारण जन समुदाय मे भी सूर, तुलसी नानक दयानन्द सरस्वती स्वामी विवेकानन्द और महात्मा गांधी आदि महान् सन्तों ने अपनी वाणी और सद् उपदेश से समय-समय पर जनता को ढाढस देकर उबारा है । ऐसे ही परम ज्ञानी त्यागी उदार, तपस्वी और सरल हृदय वाले एक महान संत थे हमारे पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज ।

आपका जन्म तातीजा (जयपुर) नामक ग्राम मे भादो वदी १४ संवत् १ ९ वि मे हुआ था । आपके पिता श्री गंगाराम जी चौधरी एव माता स्वरूपा देवी जी आप जैसा पुत्र पाकर अपने को धन्य मानते थे । बचपन मे आप एक साधारण परिवार के सदस्य की तरह घर के काम काज मे पिता की सहायता करते थे । इन्हें विशेष रूप से घर के गाय बैल चराने का कार्य सौंपा गया था । ये प्रतिदिन गाय चराने जगल मे जाया करते थे । एक दिन दैवयोग से एक शेर ने इनकी एक गाय पर हमला बोल दिया उस समय ये एक पेड़ पर जा चढे । जब शेर गाय को खाकर वहाँ से चला गया तो आप पेड़ से उतरे और गाय के बिना घर वापस जाने का इरादा छोड़कर इनके मन मे संसार की क्षणभंगुरता और नाशवानता का अंकुर जम गया और इस घटना से इनके हृदय-पटल पर ऐसा गंभीर प्रभाव पड़ा कि इन्हें संसार से एकदम विरक्ति हो गई तथा चिरशान्ति का मार्ग खोजने निकल पड़े । संयोगवश आपने श्री पण्डित लक्ष्मीचन्द्र जी महाराज से विद्याध्ययन करके परम तपस्वी श्री हरखीमल जी महाराज से दीक्षा ग्रहण की । जैन मुनि बनते ही आपने अपने तप त्याग एव विद्वता से जनता का कल्याण करना ही अपना एक मात्र लक्ष्य बनाया ।

संसार मे अनेक व्यक्ति अनन्त काल से साधना के पथ पर आगे बढ़ते रहे हैं । ऐसे साधक दो श्रेणियो मे विभाजित किये जा सकते हैं जिनमे एक तो वे जो स्वयं के हित और कल्याण की भावना से

प्रेरित होकर साधना-पथ में आगे बढ़ो? और दूसरे वे जो स्वयं की चिन्ता न करके सम्पूर्ण समाज के कल्याण की भावना रखते हैं। ऐसे ही परम त्यागी, तपस्वी सन्तों में से एक थे पूज्य गुरुदेव जिन्होंने अपने अकथनीय चिन्तन, मनन और साधना से लोक का कल्याण किया।

पूज्य गुरुदेव की वाणी में बड़ा ही प्रभाव था जिसके फलस्वरूप हमें आपकी समाज-सेवा के दो रूप मिलते हैं—एक प्रत्यक्ष और दूसरा अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष रूप में समाज-सेवा के लिए हम कह सकते हैं कि पूज्य गुरुदेव ने विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करके अपनी प्रभावमयी वाणी और विद्वत्ता भरे विचारों से वहाँ के लोगों के मरु भूमि सदृश शुष्क हृदयों को रसप्लावित करके हरा भरा बनाया। जो भी श्रावक उनके प्रवचनों को सुन लेता, वह उनका ही हो जाता था। गुरुदेव से प्रबोधित क्षेत्रों में से प्रमुख हैं—लोहामण्डी आगरा, हाथरस, जैसलमेर और हरदुआगंज आदि। इन अनेक स्थानों पर जैन धर्म के सदुपदेशों और सिद्धान्तों से भरे अपने विचारों से सभी का मार्गदर्शन किया और अनेक भूले-भटकों को सन्मार्ग पर लाकर, अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करके ज्ञान का प्रकाश प्रदान किया।

पूज्य गुरुदेव ने एक बार जैसलमेर जाकर वहाँ के अहंकारी लोगों को वीर प्रभु का दिव्य सन्देश सुनाने का विचार किया, किन्तु उपस्थित सभी श्रावकों ने आपके वहाँ जाने के लिये विरोध प्रकट किया और कहा कि गुरुदेव जैसलमेर के लोग कुछ वर्ष से विकृत मन्तव्य हो गये हैं, अपने आप को शोधक मानते हुए दिन रात ज्ञान-चर्चा में युक्त अपने को पूर्ण आध्यात्मवादी मानते हैं और जैसलमेर में यदि भूले भटके भी कोई सन्त या मुनि पहुँच जाते हैं तो वहाँ के लोग उनका बड़ा अपमान करते हैं। इसलिये गुरुदेव आपसे हमारी करबद्ध प्रार्थना है कि आप ऐसे कुमार्ग पर जाने वाले अभागे लोगों को ज्ञान का उपदेश देने जाकर स्वयं तिरस्कृत न हों। इस पर पूज्य गुरुदेव ने उत्तर दिया —

आपने मृदु हास्य हँस कर-
के कहा "कुछ डर नहीं है"
साधुता का मार्ग है, कुछ
गृहस्थ का घर-वर नहीं है।
मान की, अपमान की यहाँ,
आंधियाँ हर-रोज आतीं,
पर, अटल हम साधुओं को,
भ्रष्ट पथ से कर न पातीं।

× × ×

वास्तविक जो साधु होगा,
क्यों उसे भर्त्सन मिलेगा?
चाहिये अपनी विमलता,
विश्व फिर चरणों गिरेगा।

इस है केवल यहाँ मुनि
वेश रूप में घूम रहा है
समझ लो यहाँ पग पग
अति घोर लाञ्छन लग रहा है।

× × ×

अन्तर्ध्वनि कह रही है,—
रत्न ! जैसलमेर ही जल
क्या अभी धुल में रही है
देव यहाँ अतिशय निजधन !
जो खरा है स्वर्ण तू फिर,
क्यों परीक्षा से डरे है ?
वस्तुतः पीतल अपर है
गर्व फिर किस पर करे है ?

—श्रद्धेय 'मुनि अमर' कृत श्रद्धाञ्जलि से

धन्य है गुरुदेव ! आपकी गम्भीरता सरलता मानवता और साधकता को कि आप जैसे सन्त सन्त में ही मिल सकती है। आप निर्भीकतापूर्वक जैसलमेर पहुँचे और वहाँ पर अपने ज्ञानामृत के अमृत रस का उन अहंकारी लोगों को ऐसा पान कराया कि सभी लोग उनके पद-कमल चूमने लगे और ज्ञान-गर्वित जैसलमेर निवासियों को स्पष्ट कर दिया कि —

'गर्व है किस पर मनुज रे।
ज्ञान की कुछ इति नहीं है।

पूज्य गुरुदेव ने अपनी ज्ञान गंगा के सहारे ऐसे ही अनेक लोगों का उद्धार किया। यह उनकी समाज-सेवा का अनूठा उदाहरण है। यही नहीं उनकी ज्ञान की प्याऊ सभी के लिये खुली थी जिससे कोई भी ज्ञान-पिपासु अपनी तृषा मिटा सकता था। वह दिन धन्य था जिस शुभ दिन गुरुदेव लोहामंडी में पधारे थे। उनके ज्ञानपूर्ण उपदेश और प्रवचनों से यहाँ के लोगों का अज्ञान-अन्धकार विलीन हुआ और समाज में एक नवीन प्रभात की लहर दौड़ गई। गुरुदेव के वचनामृत सुधारस का पान करके सभी अग्रवाल लोहिया बन्धु श्वेताम्बर स्थानक वासी जैन सम्प्रदाय में विश्वास करके गुरुदेव के बताये हुए मार्ग के सच्चे अनुयायी बनकर सत्य और अहिंसा का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। लोहामंडी की भांति अन्य स्थान और क्षेत्रों में भी पूज्य गुरुदेव का ज्ञानभरा आशीर्वाद जनजीवन को चिर सुख एवं शान्ति का मार्ग बताकर समाज के कल्याण में सहायक हो रहा है।

पूज्य गुरुदेव की अप्रत्यक्ष समाज-सेवा का प्रमाण हमें उनकी प्रेरणा के साकार रूप में यत्र तत्र सर्वत्र मिलता है। लोहामंडी जन का ही उदाहरण लें तो हम भी श्वेताम्बर स्थानक वासी जैन समाज के पूर्व इतिहास से विदित होगा कि पूज्य गुरुदेव का समस्त बालक और बालिकाओं की शिक्षा के लिये

पाठशालाएँ स्थापित करना चाहता था। उस समाज के धनी, मानी एवं उदार महानुभावों ने पूज्य गुरुदेव की प्रेरणा को साकार रूप देकर उन्ही के नाम से "श्री रत्नमुनि जैन बालक एवं कन्या पाठशालाएँ" स्थापित करके गुरुदेव के सच्चे भक्त तथा अनुयायी होने का श्रेय पाया है। वैसे तो समाज के अन्य अनेक लोगों ने इन पाठशालाओं के संचालन एवं प्रगति मे पूर्ण योगदान दिया है किन्तु इन संस्थाओं के मन्दिर का पूर्ण विकास करने मे गुरुदेव के अनन्य भक्त परम उदार स्वनामधन्य स्वर्गीय श्री सेठ रतनलाल जी जैन मित्तल अधिक श्रद्धा के पात्र एवं अग्रणीय हैं जिन्होंने समाज के प्रत्येक नर-नारी, बालक, युवा और वृद्ध जनों के हृदय मे देश एवं समाज के कल्याण हेतु इन पाठशाला रूपी नन्हे पौधों को एक विशाल विभिन्न भाषाओंयुक्त टैक्नीकल कालेज रूपी वट वृक्ष के रूप मे बनाने की प्रेरणा भरी थी और उसे साकार बनाने के लिये उसकी नींव वे अपने जीवन काल मे ही अपने हाथों से डाल गये थे। आज पूज्य गुरुदेव की प्रेरणा व आशीर्वाद से वे दोनो पाठशालाएँ इन्टर कालेजों के रूप मे विद्यमान हैं जिनमे हजारों बालक-बालिकाएँ साहित्य, कला, व्यापार, विज्ञान आदि सभी वर्गों के विभिन्न विषयों का अध्ययन करके अपना जीवन समुन्नत बना रहे है। लोक-कल्याण की दृष्टि से आज के युग मे विद्यादान सर्वोपरि है। तब तो हमारे ये दोनो विद्यालय जो देश व समाज की सेवा उन छोटे छोटे बालक-बालिकाओं को विद्यादान देकर कर रहे है, यह सब उन्ही पूज्य गुरुदेव की अप्रत्यक्ष समाज-सेवा का ही रूप है क्योंकि यह वरदान उन्ही की प्रेरणा और आशीर्वाद का फल है।

इतना ही नही गुरुदेव के कई सुप्रसिद्ध दीक्षित शिष्य थे तथा अनेक लोगों को जैन सम्प्रदाय मे प्रेम कराया, उसका अनुयायी बनाया है। उन लोगो के सत्य, अहिंसा भरे विचारो से प्राणि मात्र का अन्य की अपेक्षा कही अधिक कल्याण करने की सम्भावना है। इस प्रकार हम स्पष्ट शब्दो मे कह सकते हैं कि पूज्य गुरुदेव का समाज पर बडा उपकार है जिनकी प्रेरणा से सन्मार्ग चलने को मिला जो भौतिक एवं अभौतिक दोनो दृष्टिकोणो से मानव मात्र को चिर सुख और शान्ति देने वाला एवं कल्याणकारी है।

अत निसन्देह पूज्य गुरुदेव की समाज-सेवा प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप से सराहनीय और अनुकरणीय है। उन्होंने स्थान-स्थान पर पैदल भ्रमण करके वीर प्रभू के दिव्य सन्देश का अपनी ज्ञानमयी वाणी द्वारा जनता को अमृत पान कराया तथा अपने प्रेरणाशील विचार व अनुभव से चिर लोक-कल्याण की अमर विभूति प्रदान करते हुए सवत् १९२१ वि० वैशाख शुक्ला पूर्णिमा को इस असार-ससार को पूर्ण करके लोहामडी आगरा मे ही देवलोकवासी हुए। उनके भक्त सम्प्रदाय ने स्मारक स्वरूप पूज्य गुरुदेव की भव्य समाधि स्वरूप छत्री का निर्माण करके उनके प्रति अपनी सच्ची श्रद्धा, भक्ति और प्रेम का परिचय दिया है। आज पूज्य गुरुदेव के निर्वाण को हुए एक शताब्दी पूर्ण हो रही है फिर भी उनके ज्ञान की अमर ज्योति सम्बन्धित सभी क्षेत्रो मे आज भी देदीप्यमान है तथा उनके परम अनुयायी भक्तजन पूज्य गुरुदेव की अमर कीर्ति-पताका को मुक्त गगन मे फहरा रहे हैं।

ऐसे परम पूज्यनीय, त्यागी, तपस्वी, ज्ञान के आगार तथा समाज-सेवी, भव्य आत्मा स्वरूप, प्रात-स्मरणीय पूज्य गुरुदेव के चरण कमलो मे अपने अकिंचन उक्त शब्द-पुष्पो की भेंट चढ़ाते हुए मैं उन्हे श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए अपने को अहोभाग्यशाली अनुभव कर रहा हूँ।

★ ★ ★

गुरुदेव द्वारा प्रतिबोधित क्षेत्र

श्री जयन्ती प्रसाद जैन

मानव जीवन एक बड़े महत्व की वस्तु है। यूं तो प्रकृति में एक छोटा-सा तिनका भी व्यर्थ नहीं जन व्यक्तित्व से वह भी जीवधारियों के लिए कितना हितकर है इसका अनुमान एक सच्चा और सम्पूर्ण वैज्ञानिक भी नहीं लगा सकता है। जैन तथा जैनेतर अनेक महात्मा हो चुके हैं जिन्होंने परमार्थ में ही जीवन व्यतीत किया। मैं एक ऐसे ही युग-पुरुष का एवं जैन जगत् की विमल विभूति का जीवन परिचय दे रहा हूँ जिसने अपने युग की जनता को लोक-मार्ग से हटा कर धर्म-मार्ग पर लगाया। जिसने जन-जन के अज्ञान को मिटाकर ज्ञान का विमल प्रकाश दिया एवं संयम और तप की ज्योति जगा दी। वे थे—गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज।

जन्म भूमि

आपका जन्म जयपुर राज्य में एक ताटीजा नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम मनारामजी तथा माता का नाम सरूपा देवी था। आपके माता-पिता गुर्जर राजपूत क्षत्रिय वंश के होते हुए भी जैन सन्तों की संगति में विशेष अभिरुचि रखते थे। धर्म-चर्चा में उनकी विशेष रुचि थी। आपका जन्म संवत् १ ५ में माघमास कृष्णा चतुर्दशी के शुभ मुहूर्त में हुआ था। आप बाल्य-काल से ही बुद्धि में चतुर, रूप में सुन्दर और स्वभाव से मधुर थे।

वैराग्य

श्री रत्नचन्द्र जी महाराज अभी किशोरावस्था में ही थे। एक दिन एक सिंह तथा बछड़े की आकस्मिक घटना ने उनके हृदय में परिवर्तन ला दिया और वे जन्म जीवन मरण पर विचार करने लगे। उनके हृदय पट से आवाज आई 'एक जीव दूसरे जीव का भक्ष्य है'। वे ऐसे गुरु की खोज करने लगे जो उन्हें इस क्रूर संसार के फंदों से बचा सके। और अन्त में कठिन परिश्रम करने के पश्चात् वे नारनौल नगर में पहुँचे। वहाँ धर्म स्थानक में तपस्वी हरजीमल जी महाराज विराजित थे। कई दिन उनके प्रवचन सुनने के पश्चात् उनकी अन्तरात्मा ने हरजीमल जी के पथ के गामी बनने की प्रेरणा दी। काफी कठिन परीक्षा के बाद संवत् १ ६२ में भाद्रपद शुक्ला ५ के दिन नारनौल नगर में ही दीक्षा दी गई और उस पवित्र दिन से आपने मुनि पद ग्रहण किया।

धर्म-प्रचार

तप संयम सेवा और विशेष अध्ययन से युक्त होकर अपने गुरु की आज्ञा से रत्न मुनि जी ने अपनी विमल ज्ञान राशि को पंजाब राजस्थान मध्य प्रदेश और विशेषतया उत्तर-प्रदेश के जन-जीवन

[illegible] प्रचलित पशु-हत्या बन्द करवाई ।

नवीन क्षेत्र

वैसे तो जैन धर्म [illegible] श्री गुरु महाराज के धर्म प्रचार के परिणामस्वरूप [illegible]

लोहामंडी

आप संवत् १८६[illegible] में दिल्ली की ओर से आगरा आ रहे थे । रास्ते में लोहामण्डी में स्थित मजूमल की बगीची में आपने विश्राम किया । प्रातः लोहामण्डी क्षेत्र के कुछ भाई आपके [illegible] आये और वहाँ प्रतिदिन प्रवचन होने लगे । दिन पर दिन आपका प्रभाव बढ़ता रहा । वहाँ उस समय यतियों का प्रभाव अधिक था । एक बार आपका यतियों से शास्त्रार्थ [illegible] और उसमें आप ही विजयी रहे । तभी से यहाँ की जनता आपसे प्रभावित हुई और आपकी अनुयायी बन गई । फिर धीरे-धीरे वर्तमान पौषधशाला का निर्माण हुआ । आपके प्रतिष्ठापित क्षेत्रों में लोहामण्डी क्षेत्र विशेष स्थान रखता है और इस क्षेत्र के लोगों पर आपका विशेष आशीर्वाद है । दिन दूनी और रात चौगुनी तरक्की हो रही है । वर्तमान समय में यहाँ आपके ही नाम पर एक बालिका एवं बालकों का विद्यालय भी चल रहा है ।

अन्य क्षेत्र

इसी भाँति हाथरस, जलेसर, हरदुआगंज, [illegible] तथा यमुना पार में लुहारा सराय, बिनौली, एलम, रठौडा, छपरौली, दोघट एवं निगाड-परसोली आदि अनेक क्षेत्र आपके धर्मप्रचारार्थ किये गये दीर्घकालीन परिश्रम के प्रतिफल हैं । यहाँ के लोगों में आज भी आपके प्रति विशेष भक्ति और धर्ममय अनुराग है । इन सभी स्थानों पर आज भी पौषधशालाएँ स्थित हैं । यहाँ के लोग अभी तक जैन धर्म के अनुयायी हैं ।

इस प्रकार आप ने धर्म का प्रचार राजस्थान, पंजाब, बिहार, मध्यप्रदेश एवं अन्य प्रदेशों में किया । आपके ही कठिन परिश्रम से जैन धर्म सभी प्रान्तों में काफी उन्नति कर रहा है ।

शास्त्रचर्चा

आपकी तर्क शक्ति बड़ी ही विलक्षण थी । शंका समाधान के क्षेत्र में आपका यश प्रतिष्ठा के केन्द्र बिन्दु पर पहुँच गया था । आपने अपने समय में अनेक शास्त्र-चर्चा की थी जिनमें लश्कर और जयपुर की शास्त्र-चर्चा विशेष प्रसिद्ध हैं । लश्कर में संवत् १६१७ में श्री रत्नविजय जी से मूर्ति पूजा पर और जयपुर में १६१० में तेरा पन्थ के आचार्य पू० श्री जीतमल जी से दया एवं दान पर की गई शास्त्र-चर्चा के कुछ लिखित अंश अब भी उपलब्ध हैं । जो आप श्री के अगाध आगम ज्ञान, सूक्ष्म तर्क शक्ति एवं सामाजिक सूझ-बूझ का हृदयग्राही परिचय देते हैं । उसके अतिरिक्त आगरा में ही एक ईसाई पादरी से भी ईश्वर के कर्तव्य पर आपने शास्त्र-चर्चा की थी ।

म महामेष के समान इतना समारोह म कभी नहीं दिखा । इन स्थानों पर इस प्रभाव से म प्रचलित पशुहत्या बन्द हो गई ।

नवीन क्षेत्र

वैसे तो जैन-धर्म व्यापक धर्म है, इसकी मान्यता वाले समाज के व्यक्ति आगरा में पाये जाते हैं, किन्तु श्री गुरु महाराज के धर्म प्रचार के परिणामस्वरूप आगरा में नवीन क्षेत्र बने ।

लोहामडी

आप संवत् १९६१ मे दिल्ली की ओर से आगरा आ रहे थे । रास्ता में आने से लोहामण्डी में स्थित मजूमन की बगीची म आपने विश्राम किया । प्रात लोहामण्डी क्षेत्र के कुछ भाई आपको विनय पूर्वक ले आए और यहा प्रतिदिन प्रवचन होने लगे । दिन पर दिन आपका प्रभाव बढ़ता रहा । यहाँ उस समय यतियों का प्रभाव अधिक था । एक बार आपका यतियों स शास्त्रार्थ भी करना पड़ा और उसमे आप ही विजयी रहे । तभी से यहाँ की जनता आपसे प्रभावित हुई और आपकी अनुयायी बन गई । फिर धीरे-धीरे वर्तमान पोषदशाला का निर्माण हुआ । आपके प्रतिबोधित क्षेत्रों मे लोहामण्डी क्षेत्र विशेष स्थान रखता है और इस क्षेत्र के लोगों पर आपका विशेष आशीर्वाद है । दिन दूनी और रात चौगुनी तरक्की हो रही है । वर्तमान समय मे यहाँ आपके ही नाम पर एक बालिका एव बालकों का विद्यालय भी चल रहा है ।

अन्य क्षेत्र

इसी भाँति हाथरस, जलेसर, हरदुआगंज, नदौता तथा यमुना पार में लुहारा गगाय, बिनौली, एलम, रठौडा, उपरौली, दोघट एव लिसाढ-परासौली आदि अनेक क्षेत्र आपके धर्मप्रचारार्थ किये गये दीर्घकालीन परिश्रम के प्रतिफल ह । यहाँ के लोगों मे आज भी आपके प्रति विशेष भक्ति और धममय अनुराग है । इन सभी स्थानो पर आज भी पोषदशालाएँ स्थित है । यहा के लोग अभी तक जैन धर्म के अनुयायी ह ।

इस प्रकार आप ने धर्म का प्रचार राजस्थान, पजाब, बिहार, मध्यप्रदेश एव अन्य प्रदेशों मे किया । आपके ही कठिन परिश्रम से जैन धर्म सभी प्रान्तों मे काफी उन्नति कर रहा है ।

शास्त्रचर्चा

आपकी तर्क शक्ति बड़ी ही विलक्षण थी । शका समाधान के क्षेत्र मे आपका यश प्रतिष्ठा के केन्द्र बिन्दु पर पहुँच गया था । आपने अपने समय म अनेक शास्त्र-चर्चा की थी जिनमें लश्कर और जयपुर की शास्त्र-चर्चा विशेष प्रसिद्ध हैं । लश्कर मे सवत् १९१७ मे श्री रत्नविजय जी से मूर्ति पूजा पर और जयपुर मे १९१० मे तेरा पन्थ के आचाय पू० श्री जीतमल जी से दया एव दान पर की गई शास्त्र-चर्चा के कुछ लिखित अश अब भी उपलब्ध हैं । जो आप श्री के अगाध आगम ज्ञान, सूक्ष्म तर्क शक्ति एव सामाजिक सूझ-बूझ का हृदयग्राही परिचय देते हैं । इसके अतिरिक्त आगरा मे ही एक ईसाई पादरी से भी ईश्वर के कर्तव्य पर आपने शास्त्र-चर्चा की थी ।

अन्तिम साधना

सुन्दरी ऊषा का प्रत्येक चरण विन्यास मधुरंगी संध्या मे विलीन होता है। अथ के साथ इति लगी रहती है। विक्रम संवत् १९२१ म वैशाख शुक्ला १२ बुधवार को संथारा ग्रहण किया और वैशाखी पूर्णिमा शनिवार के दिन जन-जीवन को आलोकित करने वाला यह दिव्य आलोक दिव्यलोक का यात्री हो गया। विवेक और वैराग्य का प्रखर भास्कर जो राजस्थान के क्षितिज पर उदय हुआ था वह उत्तर प्रदेश के अस्ताचल पर अस्त हो गया। आगरा लोहामण्डी के जैन भवन में संथारा की साधना विधिवत् पूर्ण करके पूज्यपाद मज म गुरुदेव रत्नचन्द्र जी महाराज ने इस असार संसार को छोड कर अमर पद प्राप्त किया।

वर्षावास कब और कहाँ

आपने दीर्घकाल तक संयमी जीवन म रहकर दूर-दूर तक के प्रदेशो में धर्म-प्रचार किया। गुरुदेव के वर्षावास कब और कहाँ हुए इसकी एक निश्चित तालिका निम्न प्रकार से है —

विक्रम संवत्	क्षेत्र	
१८६२	नारनौल	(पंजाब)
१८६३	भिवानी	(हिसार)
१८६४	हांसी	(हिसार)
१८६५	नारनौल	(पंजाब)
१८६६	सिंघाना	(शेखावाटी)
१८६७	कुचामन	(मारवाड़)
१ ६८	भरतपुर	(राजस्थान)
१८६९	मालेर कोटला	(पंजाब)
१८७	अमृतसर	(पंजाब)
१८७१	महेन्द्रगढ़	( )
१८७२	पटियाला	( )
१८७३	बड़ौत	(उत्तर प्रदेश)
१८७४	जींद	(पंजाब)
१८७५	मालेर कोटला	( )
१८७६	कांधला	(मुजफ्फरनगर)
१८७७	नाभा	(पंजाब)
१ ७	पटियाला	(पंजाब)
१८७९	नारनौल	( )
१८	सिंघाना	(शेखावाटी)
१८८१	एलम	(मुजफ्फरनगर)
१ ८२	अमृतसर	(पंजाब)
१८८३	बाहरी	(पंजाब)
१८ ४	बामनौली	(उत्तर प्रदेश)
१ ८५	बड़ौत	( )
१ ८६	आगरा	( )
१ ८७	दिल्ली शहर	

विक्रम संवत्	क्षेत्र	
१८८८	लश्कर	(मध्य प्रदेश)
१८८९	अलवर	(राजस्थान)
१८९०	उदयपुर	(,,)
१८९१	बीकानेर	(,,)
१८९२	आगरा	(उत्तर प्रदेश)
१८९३	कुचामन	(मारवाड़)
१८९४	बिनौली	(उत्तर प्रदेश)
१८९५	जोधपुर	(मारवाड़)
१८९६	पटियाला	(पंजाब)
१८९७	लश्कर	(मध्य प्रदेश)
१८९८	बिनौली	(उत्तर प्रदेश)
१८९९	दिल्ली शहर	(पंजाब)
१९००	उज्जैन	(मध्य प्रदेश)
१९०२	आगरा	(उत्तर प्रदेश)
१९०३	अलवर	(राजस्थान)
१९०४	एलम	(उत्तर प्रदेश)
१९०५	जलेसर	(,,)
१९०६	लखनऊ	(,,)
१९०७	हाथरस	(,,)
१९०८	बड़ी निर्मावली	(,,)
१९०९	सुनाम	(पंजाब)
१९१०	आगरा लोहामंडी	(उत्तर प्रदेश)
१९११	बिनौली	उत्तर प्रदेश
१९१२	हरदुआगंज	(,,)
१९१३	डीग	(राजस्थान)
१९१४	आगरा लोहामंडी	(उत्तर प्रदेश)
१९१५	बड़ौत	(,,)
१९१६	अम्बाला	(पंजाब)
१९१७	लश्कर	(मध्य प्रदेश)
१९१८	आगरा	(उत्तर प्रदेश)
१९१९	दिल्ली	(पंजाब)
१९२०	आगरा लोहामण्डी	(उत्तर प्रदेश)

गुरुदेव व इच्छा-मृत्यु

मनीत प्रसाद वर्मा (१ अ)

मृत्यु की कल्पना एक भयंकर कल्पना है। मनुष्य जीवन भर सांसारिक भोगों में फँसा रहता है। वह भोगों के आनन्द को ही सब कुछ समझता रहता है। वह समझता रहता है कि भोग-विलास शाश्वत है। वह भोग-विलासों की क्षणभंगुरता को केवल तभी समझ पाता है जब कि वह वृद्धावस्था में अनेक कष्ट भोगता है या जब वह मृत्यु के क्रूर पंजों में फँसता है।

प्राचीन काल में लोग जीने की कला जानते थे जीवन के प्रति उनका मोह सात्विक था। वे जीवन से चिपके रहना नहीं चाहते थे। वे यशस्वी जीवन बिताते थे। मृत्यु उनके लिये एक भयंकर कल्पना नहीं थी। वे जीवन के मर्म को जानते थे। वे समझते थे कि शरीर तो केवल वस्त्र के समान है और शरीर के भीतर विराजमान आत्मा वास्तविक एवं अजर अमर है। प्राचीन काल के ऋषि इस तथ्य को समझने के कारण ही इच्छापूर्वक मृत्यु का आलिंगन करते थे।

आज के मनुष्य को इस बात का बड़ा अभिमान है कि उसने अनेकानेक औषधियों का आविष्कार कर लिया है और उनके द्वारा उसने मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली है। आज मनुष्य को जीवन से तामसिक प्रेम है वृद्धावस्था में जबकि उसके समस्त अंग शिथिल हो जाते हैं और इन्द्रियाँ कार्य नहीं करती वे औषधियों के द्वारा अधिकाधिक जीवित रहना चाहते हैं और समस्त कष्टों को भोगते रहते हैं। वे जीने की इच्छा केवल भोग-विलास के लिये करते हैं किसी अन्य उद्देश्य के लिये नहीं। वास्तव में मनुष्य की यह दशा अत्यन्त ही दयनीय है।

जैन धर्म और मृत्यु

जैन धर्म में इस विषय पर बहुत विचार किया गया है। जैन मुनियों ने कभी भी रोगी शरीर से मृत्यु प्राप्त नहीं की। उन्होंने सदैव स्वेच्छा से मृत्यु प्राप्त की है। हमारे चरित्र नायक गुरु देव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज को तो दिव्य दृष्टि प्राप्त थी। अपनी मृत्यु के सम्बन्ध में तो उन्हें निश्चित ज्ञान था ही उन्होंने अन्य मुनियों की मृत्यु के सम्बन्ध में भी भविष्य वाणियाँ की यह था आपके ज्योतिष ज्ञान व योग-साधना का चमत्कार।

संथारा

जैन मुनि परवश होकर रोग से नहीं मरते हैं! वे इच्छा मृत्यु प्राप्त करते हैं। मृत्यु से पूर्व वे यावत् जीवन का परिपूर्ण अनशन लेकर समाधि भाव के साथ बैठ जाते हैं और मृत्यु को प्राप्त करते हैं। इस विधि के लिये जैन धर्म में एक विशेष शब्द संथारा का प्रयोग किया जाता है। मुनि लोग संथारा विधि से ही अपने जीवन का अन्त करते हैं।

श्री रत्नमुनि जैन इण्टर कालेज आगरा

प्रबन्ध समिति—सन् १९६३—६४

बायें से दायें :

प्रथम पंक्ति :—श्री रमेशचन्द्र अग्रवाल (प्रधानाचार्य), डा एस के दास (मैडीकल आफीसर), श्री प्रमोदकुमार जैन (कार्य वाहक प्रबन्धक), श्री सोनाराम जैन (शिक्षा संचालक), श्री कल्याणदास जैन (नगर प्रमुख)

श्री पदमकुमार जैन (मन्त्री), श्री जगन्नाथ प्रसाद जैन (कोषाध्यक्ष), श्री वंशीधर जैन।

द्वितीय पंक्ति —श्री सुन्दरसिंह वर्मा (उपप्रधानाचार्य), श्री वै प्रसाद जैन, श्री अमरनाथ जैन, श्री सुमेरचन्द जैन, श्री महावीर प्रसाद जैन।

श्री रत्न मुनि जैन इण्टर कालेज के अध्यापकगण

(सन् १९६३—६४)

बायें से दायें :

प्रथम पंक्ति —श्री भगवानदास बंसल, श्री सुरेन्द्र सक्सैना, श्री रामकुमार शर्मा, श्री रामबाबू शर्मा, श्री सुन्दरसिंह वर्मा (उपप्रधानाचार्य)

श्री रमेशचन्द्र अग्रवाल (प्रधानाचार्य), आचार्य श्री कन्हैयालाल पाराशर, श्री वी अरुणकुमार, श्री मथुराप्रसाद गर्ग, श्री हेमचन्द्र शर्मा। (हेडक्लर्क)

द्वितीय पंक्ति :—श्री भगवतीप्रसाद जैन, श्री सतीशचन्द्र अस्थाना, श्री ए सी तिवारी, श्री मनोहरलाल जैन, श्री बी एस माहूर, श्री प्रकाशचन्द्र जैन, श्री सुरेशचन्द्र शर्मा, श्री बी सी मल्ला, श्री रामगोपाल शर्मा, श्री देवदत्त शास्त्री, श्री बाबूलाल जैन, श्री वैजनाथ गुप्ता

तृतीय पंक्ति कर्मचारी वर्ग :—श्री हरीराम (दफ्तरी), श्री रामबाबू, श्री विजय कुमार, श्री भिखोरीराम, श्री धमाचौड, श्री हबीब खाँ, श्री गंगासिंह।

विलीन हो जाते हैं। संसार के अन्य व्यक्तियों का पता भी नहीं लग पाता कि वे कब जन्म ले गये और कब इस संसार से विदा हो गये। प्रिय से प्रिय व्यक्ति को भी कुछ ही दिनों में भूल जाते हैं। हमें न उनकी जन्म की तिथि स्मरण रहती है और न मृत्यु की। परन्तु संसार में ऐसी महान विभूति भी जन्म लेती हैं जो कि भौतिक दृष्टि से तो उनके जीवन का अन्त होता हुआ दिखलाई पड़ता है अर्थात् यह शरीर मिट्टी में मिल जाता है परन्तु वे अपने शुभ कार्यों से ऐसी ज्योति प्रज्वलित कर जाते हैं कि अनन्त काल तक उस ज्योति के प्रकाश से मानव सच्चे जीवन की राह को स्पष्ट देखता रहता है और वह संसार में इधर-उधर भटकने से बच जाता है। ऐसी आत्माओं के जीवन की सुगंध हजार-हजार वर्ष तक महकती रहती है और जन-जीवन को सुवासित करती रहती है।

शताब्दी का महत्त्व

पूज्य गुरुदेव का हम पर उपकार हुआ, उन्होंने हमें ज्ञान का सदुपदेश दिया और सही दिशा की ओर बढ़ने की प्रेरणा दी। इसलिये हम सौ वर्ष बाद उनकी स्मृति में शताब्दी समारोह मनाने जा रहे हैं। शताब्दी समरोह मनाने का हमारा कर्त्तव्य भी है लेकिन इस समारोह को मनाकर हम उस महान आत्मा के ऊपर कोई अहसान नहीं कर रहे हैं। यह तो हमारा आवश्यक कर्त्तव्य है जिसे हम पूर्ण करने की शुभ भावना रख रहे हैं। परन्तु शताब्दी का प्रकाश हमारे हृदय को छू जाय और जीवन भर वह प्रकाश की किरण हमारा मार्ग दर्शन करती रहे, ऐसे ढंग से शताब्दी समारोह मनाने के लिये तत्पर रहना चाहिये। इस शुभ अवसर पर यदि हम सच्चे हृदय से कोई प्रतिज्ञा कर सके और पूज्य गुरुदेव की शिक्षाओं का शतांश भी जीवन में उतार सके, तो शताब्दी समारोह सफल समझा जायेगा।

श्रद्धाञ्जलि

आइये, हम सब पूज्य गुरुदेव की पुण्य शताब्दी के शुभ अवसर पर ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, गरीब-अमीर के सभी भेद-भावों को भुलाकर एवं एक पंक्ति में खड़े होकर पूज्य गुरुदेव का सच्चे हृदय से मिल-कर वंदन-अभिनन्दन करें।

★
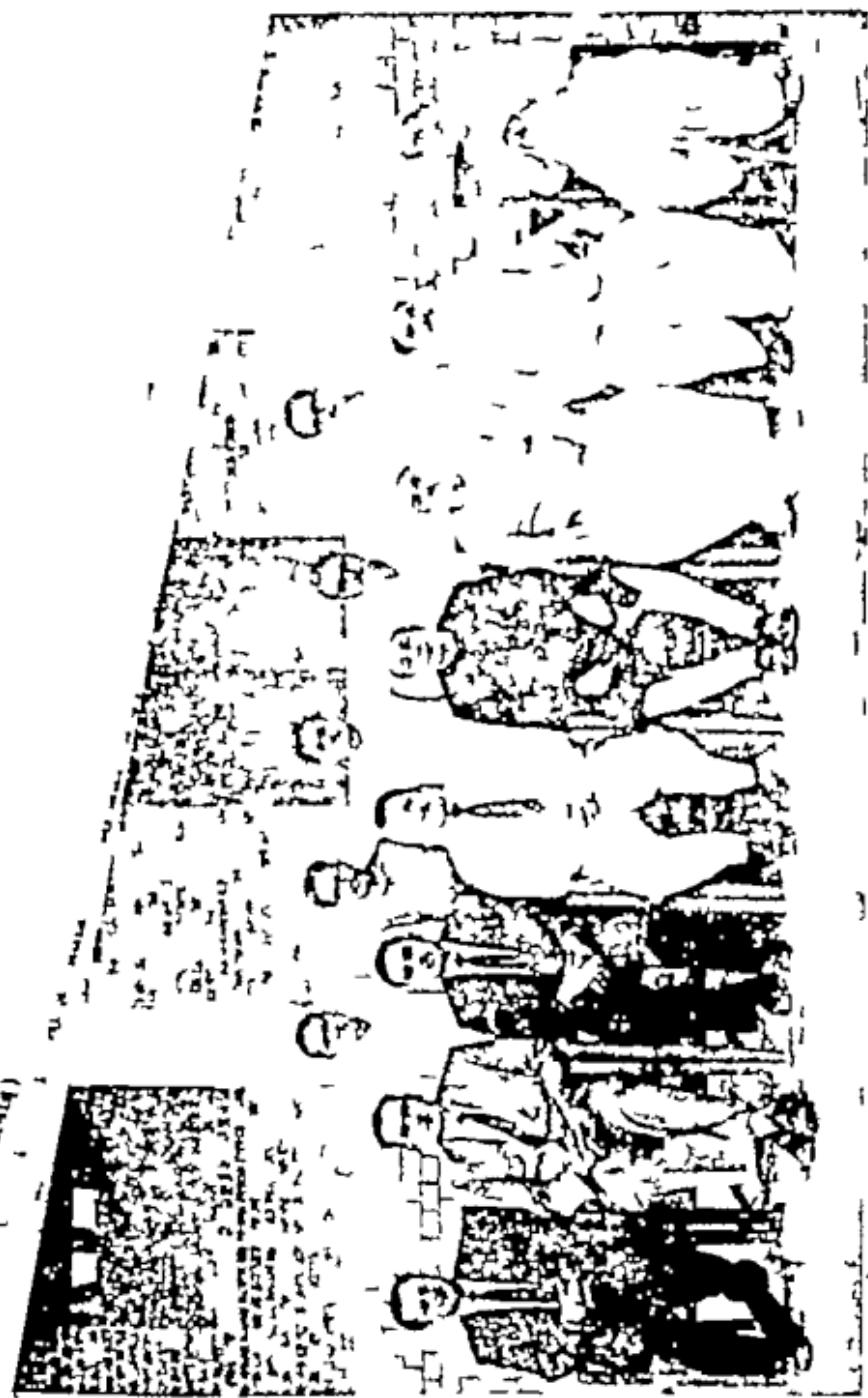
पूज्य गुरुदेव को सथारे के सम्बन्ध मे कितना ज्ञान था यह निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा। जयपुर राज्य के सिंघाणा नामक स्थान पर तपस्वी श्री सेवग राम जी विराजमान थे। आपने माघ कृष्णा ४ को सथारा ग्रहण किया। पूज्य गुरुदेव उनके दर्शनो के लिए पहुँचे और कुछ दिन ठहर कर कुचामण की ओर प्रस्थान करने लगे तो लोगो ने उनसे वहीं ठहरने की प्रार्थना की और कहा कि न जाने तपस्वी जी का सथारा कब पूर्ण हो, अत आपकी उपस्थिति अनिवार्य है। किन्तु पूज्य गुरुदेव के चिंतन चक्षुओ के समक्ष सब बातें स्पष्ट थी। उन्होंने कहा कि मै कुचामण मे एक महीने ठहर कर तपस्वी जी के स्वर्गवास से पूर्व ही सिंघाणा लौट आऊँगा। और सचमुच तपस्वी जी ५६ दिन का सथारा पूर्ण करके स्वर्गवासी हुए। और पूज्य गुरुदेव उस से पूर्व ही सिंघाणा लौट आये। ऐसी ही घटना पटियाला के तपस्वी श्री जयन्ती लाल जी के सथारे के समय पर हुई।

गुरुदेव का सथारा और स्वर्गवास

स्वय के स्वर्गवास के सम्बन्ध मे भी पूज्य गुरुदेव ने महीनो पहले भविष्य वाणी कर दी थी। आपने भविष्य वाणी की थी कि मेरा स्वर्गवास वैशाख शुक्ला १५ सवत् १९२१ शनिवार को दिन के दो बजे होगा। और ठीक इसी समय आप स्वर्गवासी हुए।

पूज्य गुरुदेव स्वर्गवास से ८ दिन पूर्व ही अन्तिम आलोचना और सबसे क्षमापना करके और जैन सघ के लिए आत्मकल्याण का सदेश देकर अन्तिम प्रयाण के लिये तैयार हुए। आपने वैशाख शुक्ला १२ को दो पोषदशाला लोहामण्डी आगरा मे सथारा ग्रहण किया और वैशाख शुक्ला पूर्णिमा सवत् १९२१ दिन शनिवार को दो बजे समाधि के साथ स्वर्गवासी हुए।

इस प्रकार यद्यपि इस महापुरुष का पार्थिव शरीर इस ससार से उठ गया है, लेकिन उनकी आत्मा और उनके उपदेश आज भी हमे प्रेरणा दे रहे हैं और देते रहेंगे। इस वर्ष हम पूज्य गुरुदेव के समाधि ग्रहण करने की शताब्दी मना रहे हैं।

★

एक महकती जिन्दगी

रामधन प्रभाकर' सी एल एस सी

जीवित जन है सदा वही जो जीता है परहित के काज ।
सारे जग में यश फैला कर बन जाता देवों का ताज ॥

पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी एक सफल प्रवचनकार उच्चकोटि के साहित्यकार महान तपस्वी ज्योतिषशास्त्र के महान पंडित शास्त्रज्ञ एवं उच्चकोटि के संत थे । अपना सम्पूर्ण जीवन उन्होंने साहित्य की साधना एवं धर्म की आराधना में ही व्यतीत किया । त्यागी होते हुए भी उन्होंने जिस अमूल्य निधि को जनता में वितरित किया वह है धर्म का सच्चा मार्ग जिसके सम्मुख सांसारिक धन-दौलत की कोई कीमत नहीं है । उन्होंने वह मार्ग दिखलाया जिस पर चलकर भूला भटका मानव एक सही मंजिल पर चलकर इस जीवन का सफल राही बन सके और जीवन का कल्याण कर सके ।

सब कुछ देकर भी कुछ नहीं लिया

पूज्य गुरुदेव कितने कृपालु थे कि जीवन भर कठोर से कठोर साधना करते रहे और साधना के द्वारा जो कुछ भी ज्ञान की उपलब्धि हुई उसका सदुपयोग करके ज्ञान के भंडार से जनता में वितरित करते रहे । उन्होंने ज्ञान की गठरी को स्वयम् के लिये बाँधकर नहीं रखा बल्कि जो भी सम्पर्क में आया उसी को ज्ञान का प्रसाद दिया । इस प्रकार वे जीवन भर हमें कुछ न कुछ देते ही रहे, परन्तु हम से लेने की उन्होंने कुछ भी भावना ही नहीं रक्खी । लेने की उनकी भावना इसलिये नहीं थी कि वे एक महान त्यागी एवं तपस्वी थे इसलिये उनको देने के लिये हमारे पास था ही क्या ?

जीवन के सच्चे राही

विज्ञान के इस युग में मानव जन्म लेकर सांसारिक झंझटों के जाल में इतना फँस जाता है कि वह जीवन भर बाहर नहीं निकल पाता है । जितना ही वह निकलने का प्रयत्न करता है उतना ही फँसता चला जाता है । बस ऐसे भूले भटके व्यक्तियों को जीवन का सही मार्ग दिखलाने के लिये ही ऐसी महान आत्मायें जन्म लेती हैं जो कि इस संसार में साधना के द्वारा अपने जीवन का भी कल्याण करती हैं और भूले-भटके प्राणियों को सही मार्ग दिखलाती हैं । पूज्य गुरुदेव को हम जीवन का सफल एवं सच्चा राही कह सकते हैं जिन्होंने अपनी ज्ञान-साधना के द्वारा अनेक व्यक्तियों को सही मार्ग दिखलाया और उन्हें सही दिशा में बढ़ चलने की प्रेरणा दी ।

एक महकती जिन्दगी

इस संसार में अनेक प्राणी प्रतिदिन जन्म लेते हैं और अनेकों ही प्रतिदिन काल के गाल में

गुरु-विनय

आचार्य चन्दनमल पाराशर 'पीयूष'

(१)

महात्मा गुरो ! आपकी सत्यकर्मी
जिसे देख होती प्रसन्ना धरित्री ।
बड़ा भाग्य था देश के मानवों का
तुम्हें पा हुआ मान था बान्धवों का ॥

(२)

करें प्रार्थना देव ! दिव्या दयालो
पुनः प्राप्त हो सर्व शक्ति सँभालो ।
वही दृष्टि पावें वही सृष्टि पावें
जिसे ले सदा आपका नाम गावें ॥

(३)

सदा हों सभी वीर सन्मार्ग गामी,
अहिंसा दया धर्म पालें न कामी ।
इसी भावना से करें प्राणि-रक्षा
पढ़ें पाठ सत्कार्य हो प्रेम-कक्षा ॥

(४)

बनें कर्मयोगी बनें धर्मयोगी
करें राष्ट्र-सेवा बनें वीर भोगी ।
'धरा वीर भोग्या' जिसे नाम ऐसा,
बने सार्थ ये नाम हो काम वैसा ॥

(५)

करें आज कामना यही शिष्य शिष्या
यशस्वी तपस्वी सभी हों सुमन्या ।

श्री रत्नमुनि जैन गर्ल्स इण्टर कालेज के प्रबन्धक

श्री सरोज कुमार जैन

करें विश्व मे नाम सवत्र सिद्ध,
रहे कीर्ति की कौमुदी, हो प्रसिद्ध ॥

(६)

मुने! एक आशा यही है हमारी,
हमे आशिषें दो बने भू तुम्हारी।
करें काम पूरा जु है आज भारी,
मन कामना हार्दिकी है हमारी ॥

(७)

हमे सत्य ज्ञानी हमे सत्य दानी,
हमे नित्य धर्मी, हमें नित्य ध्यानी।
करो, दे, कृपालो! कृपा-दान स्वामी,
सदा श्रेष्ठता हो, न हो काम-कामी ॥

(८)

सत् मे सदा ही लगे चित्त वृत्ति,
न हो वाधिका मार्ग मे वित्त-भित्ति।
सभी साधिका हो हमारी सुखाशा,
हमें सार्थता हो न आवे निराशा ॥

(९)

करें वन्दना, अर्चना, प्रार्थना ये,
प्रभो! आपकी है शताब्दी शुभा ये।
करें! भेंट 'पीयूष' ये भाव 'रत्न'
मन, कर्म, वाणी सभी से विभो! हे ॥

★

०

श्री

★

रत्न

★

मुनि

★

जैन

★

गर्ल्स

★

इन्टर

★

कालेज

●

'गुरुदेव का साहित्य'–एक अनुशीलन

श्रीमती द्रौपदी शर्मा प्रभाकराचार्या

पूज्य गुरुदेव रत्नमुनि जी महाराज का जन्म भाद्रपद कृ. ४ संवत् १९२ वि. को और स्वर्गारोहण संवत् १९२१ की दिवाली पूर्णिमा को हुआ। आपका सारा जीवन त्याग-तपस्यापूर्ण रहा। अपनी प्रभावशालिनी सिद्धानी निर्मल वाणी और विशाल व्यक्तित्व द्वारा आप मानव जाति का महान् कल्याण कर गये। सच्चे अर्थ में आप युग-पुरुष थे। आपके आचार-विचार में सदैव समानता रही। जो कहा वह स्वयम् भी तदनुरूप करके दिखाया। आप नव स्फूर्ति और अभिनव चेतना के प्रबल प्रेरक थे। भाग्यहीनों अर्थात् भूली-भटकी जनता को सन्मार्ग सुझाने की ओर आप आजन्म प्रयत्नशील रहे। श्रद्धा-भक्ति का शुभ सन्देश सुनाने और इस पुण्य प्रवृत्ति का परिवर्द्धन करने के लिए भी मुनि महाराज ने जीवन भर जो कुछ किया वह मानव-समाज के लिये परम कल्याणकारी सिद्ध हुआ। मुनि जी के आदेश और उपदेश सच्ची श्रद्धा यथार्थ ज्ञान और वास्तविक आचार के आधार पर अविच्छिन्न रहे। मुनि महाराज का भौतिक शरीर नष्ट हो गया परन्तु उनकी कल्याणकारिणी वाणी आज भी सर्व साधारण का पथ प्रदर्शन कर रही है। मुनि महाराज जहाँ त्याग-तप के महान् साधक और विमल विशाल व्यक्तित्वधारी थे वहाँ साहित्यकार भी उच्च कोटि के थे। उनकी वाणी और लेखनी द्वारा वे ही सब भावनाएं निःसृत होती थीं जो उनके उदात्त चरित्र और महान् मन मानस में दिव्य द्युति एवम् उज्ज्वल ज्योति के रूप में चमचमा रही थीं।

पूज्य मुनि महाराज ने संवत् १ ९९ वि. से लेखन-कार्य प्रारम्भ किया और अनेक निबन्धों तथा ग्रन्थों की रचना की। 'जीवाभिगमसूत्र' 'काल-ज्ञान' 'अनुत्तरोपपातिक सूत्र' 'साधु गुण माला' 'ठाणांग सूत्र' 'कपिपुत्र बत्तीसी' पुनरुत्थान 'भरत बाहु बली संवाद' 'मोक्ष मार्ग प्रकाश' 'आत्महित सज्झाय' 'संजया' 'भगवती सूत्र' 'दशवैकालिक सूत्र' आपकी हस्तकला की महत्वपूर्ण रुचिर रचनाएँ हैं। मुनि महाराज कविता भी बड़ी सुन्दर करते थे उनके पवित्र पद आज भी सहस्रों भक्तों की वाणी से निःसृत होते रहते हैं। आपका रचा अधिकांश साहित्य अभी अप्रकाशित है और कुछ अनुपलब्ध है। जो साहित्य प्रकाशित है उसमें से कुछ ग्रन्थों का यहाँ परिचय प्राप्त कर पाठकों को परम प्रसन्नता होगी। 'मोक्ष-मार्ग प्रकाश'—इसमें स्याद्वाद आदि का सूक्ष्म विश्लेषण और गम्भीर विवेचन है इसमें गुरुजी के प्रकाण्ड पाण्डित्य अद्भुत तत्त्वज्ञान एवम् दुर्लभ दार्शनिकता का पावन प्रकाश दिखायी देता है। आपने ऐसे दुरूह गम्भीर और जटिल विषय को अपनी *साहित्य-सम्पन्न प्रणाली द्वारा* बड़ा ही सुबोध सरल एवम् सहजगम्य बना दिया है। तत्त्वानुबोध-जैनदर्शन में जो नव तत्त्व माने गए हैं उन्हीं का विद्वत्तापूर्ण विमल विवेचन इस ग्रन्थ में है। प्रत्येक प्रसंग प्रबल युक्तियों और प्रशस्त प्रमाणों द्वारा परिपुष्ट किया गया है। प्रश्नोत्तर माला—इस ग्रन्थ में जैन जिज्ञासुओं द्वारा उठाये धार्मिक एवम् दार्शनिक प्रश्नों के बड़े सरस सुन्दर और तर्क पूर्ण समाधान करने वाले उत्तर दिये हैं। ये उत्तर

इतने व्यापक और विद्वत्ता पूर्ण हैं कि उनमे अनेक शास्त्रीय समस्याओ का भो ममाधान हो जाता है। 'गुण स्थान विवरण'—यह ग्रन्थ आध्यात्मिक भावना से रचा गया है। इममे आगम साहित्य के गुण-स्थान लक्षण, वन्ध, सत्व, उदय और उदीरण आदि तत्वो पर मविस्तार प्रकाश डाला गया है।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है पूज्य रत्नमुनि जी महाराज गद्य लेखक ही नही कवि भी वडी उच्च कोटि के थे। आपने 'जिन स्तुति', 'सती-स्तवन', प्राथना, वैराग्य-भावना, बारह्मासा आदि पर भी अनेक आध्यात्मिक पद्य लिखे हैं। ये पद्य मनोहर 'रत्न वस्नावली' और 'रत्न ज्योति' नाम से पुम्तकाकार मे भी प्रकाशित हो चुके हैं। गुरुजी द्वारा लिखित 'सुखानद मनोरमा चरित' विस्तृत काव्य ग्रन्थ है जो अभी अप्रकाशित है। हाँ, आपके रचे 'सगर चरित्र' और 'इलायची चरित्र' प्रकाशित हो गए हैं। कविता कला की दृष्टि से भी गुरुजी महाराज की रचनाएँ वडी आध्यात्मिक, श्रेष्ठ एवम् आनन्ददायिनी ह। इनके पाठ से आत्मिक वल मिलता, प्रेरणा प्राप्त होती और जीवन-ज्योति जगती है।

महामुनि रत्नमुनि जी को स्वर्गधाम गये सौ वप हो गये परन्तु उनकी विचार-धारा साहित्य के रूप मे ससार को सत् पथ दिखाने के लिए आज भी मौजूद है। जिसकी कीर्ति जीवित है, जिसके, साहित्य-सूय की रश्मियाँ आज भी जनता मे जीवन ज्योति जगा रही हैं, उसे मृत कैसे कह मकते हैं। किसी ने ठीक कहा है, सच्चा साहित्यकार कभी नही मरता। उसकी भौतिक देह नष्ट हो जाती है, परन्तु पवित्र आत्मा साहित्यिक धारा मे अवतीर्ण होकर निरन्तर लोक-कल्याण करती रहती है। सच्चा साहित्यकार वही है, जो सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का सच्चा समथक और पक्का प्रेरक है। अर्थात् जो लेखक सच्ची और कल्याणकारिणी वाणी को सुन्दरतापूवक लेखबद्ध करता है, उसी का साहित्य अजर-अमर रहता है। साहित्य मे साहित्यकार के व्यक्तित्व और विचारशैली का प्रचुर प्रभाव होता है। जिस साहित्यकार का व्यक्तित्व अपनी सैद्धान्तिक लेखन कला के अनुरूप नही होता उसकी वाणी और लेखनी दोनो प्रभावशून्य हो जाती हैं। ऐसे साहित्य मे सचाई और स्वानुभूति की खोज करना निरथक है। महामुनि रत्नचन्द्र जी का जो महान् व्यक्तित्व था, वही उनकी लेखनी और वाणी दोनो मे परिलक्षित हुआ, जिससे असख्य जनता का त्राण कल्याण होने मे सहायता मिली और जो इस अमृत सिन्धु की एक विन्दु भी श्रद्धापूवक पान करेगा उसका अवश्य ही हित-साधन होगा। मुनि महाराज के साहित्य अनुशीलन का सवसे वडा अर्थ एवम् अभिप्राय यही है कि हम उसे श्रद्धा सहित पढ़ें और अपने जीवन को भी तदनुसार बनाने की चेष्टा करें।

●

श्रीमती द्रौपदी शर्मा

जीवन और धर्म

कु पुष्पा पुज एम ए बी टी

धर्म जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता। धर्म का पालन जीवन को सफल साधक और समृद्ध बनाता है उससे जीवन में व्यापकता आ जाती है। ऐसा संवर्द्धन का ही नाम धर्म है। जो 'स्व' पर आधारित है और मनुष्य को संकुचित स्वार्थी और निर्दयी बनाता है वह धर्म नहीं अधर्म है।

जीवन मे धर्म एवं सदाचार ही वह पथ है, जिस पर चलते रहने से सुख-शान्ति एवम् स्वयं जीने और दूसरों को जीने की भावना का विकास और विस्तार होता है। स्वयं जीना और दूसरों को जीने देना भारतीय संस्कृति का आधार है। हमारे यहाँ 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का आदर्श उपस्थित किया गया है। अत समभाव की आवश्यकता है। सद्गुणों से ही समभाव उत्पन्न होता है। अत सद्गुणों का प्रेरक धर्म ही है, जो मनुष्य मे मानवता उत्पन्न कर पशुता पर अंकुश रखने की शक्ति प्रदान करता है। यही उसकी वास्तविक प्रगति का प्रतीक है। अर्थात् पशुता से मनुष्यता को उच्चतम स्थान प्राप्त करने में एक ही विशेष हेतु है जिसे "धर्म" कहा गया है। मानव जीवन में धर्म ही मुख्य वस्तु है। धर्म-हीन मानव पशु के समान है। अपने आप से ममत्व न रख कर दूसरों का उपकार करने वाला ही सन्त होता है। ऐसे सन्तों की सेवा करने से उनके प्रवचनानुसार आचरण करने से ही हम धर्म को प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं।

मनुष्य जीवन के लिए धर्म ही सर्वस्व माना गया है। धम का पालन करने पर ही मनुष्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। धर्म को जीवन का प्राण कहा गया है जिसका परित्याग करने पर मनुष्य पशु और पिशाच के रूप में परिवर्तित हो जाता है। धर्म ही हमें कर्तव्य का मार्ग दिखाता है और कर्तव्य-पथ का अनुसरण करने वाला व्यक्ति ही सदैव उन्नति के पथ पर अग्रसर होता चला जाता है।

सच्चे साधक का जीवन धर्म से ओत प्रोत रहता है। वह सदैव निर्भय रहता है और जीवन के अन्तिम क्षण तक कर्मठ और क्रियाशील रहता है क्योंकि वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे धर्म का अनुगामी बना रहता है। धर्म का पालन करने वाला व्यक्ति कभी नष्ट नहीं होता धर्म उसकी सदैव रक्षा करता है। कहा भी गया है—

'यतोधर्मस्ततो जय'

इसके विपरीत जिसने धर्म का त्याग किया उससे सभी दैवी सम्पत्तियाँ रुष्ट हो जाती हैं। धर्म विहीन जीवन में सुख-शान्ति की उपलब्धि नहीं हो सकती।

कुछ लोग भ्रम-वश यह मानते और समझते हैं कि धर्म का जीवन से उतनी देर तक ही सम्बन्ध

है, जितनी देर पूजा, प्राथना या उपासना मे बैठा जाए। पूजा-प्रार्थना समाप्त होते ही धर्म हमसे विलग हो जाता है। चौबीस घण्टे ईश्वर और धम का चिन्तन कैसे सम्भव हो सकता है। कुछ लोगो की धारणा है, कि धर्म-कर्म वृद्धावस्था के लिए ह। बचपन और युवावस्था तो खाने-पीने और मौज करने की अवस्थाएँ हैं, परन्तु वे यह नही समझते कि यदि शारीरिक विकास के लिए बचपन मे ही शरीर का भलीभाँति पोषण न किया गया अथवा बौद्धिक विकास के लिए बचपन मे ही अभ्यास आरम्भ न किया, तो शारीरिक और मानसिक विकास नही हो सकता। इसी प्रकार आत्मिक विकास के लिए आरम्भ मे ही धर्म का सहारा लेना पडता है। आत्म-ज्ञान की उपलब्धि के लिए ननत सुदीर्घ साधना करनी पडती है। बचपन से ही यदि धर्म मे प्रवृत्ति नही तो आगे चलकर इस प्रवृति को विकसित करना सरल नही है।

धम का प्रधान लक्षण है सदाचार एव कतव्यपरायणता। धम हमें वह माग प्रदर्शित करता है जिसके द्वारा हम अपने जीवन मे आदश उद्देश्य की प्राप्ति कर सकते हैं। यदि वास्तव मे देखा जाए, तो विदित होगा कि आस्तिकता, पूजा, अर्चना, जप-तप, व्रत-उपवास, नियम-सयम आदि धार्मिक कम केवल इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए निर्मित हुए हैं, कि मनुष्य दुष्प्रवृतियो से बचता हुआ अपने कर्तव्य-पथ पर अडिग बना रहे। इस उद्देश्य के अभाव मे धार्मिक कर्म काण्ड-निरर्थक और निरुद्देश्य हो जाते हैं।

श्रद्धेय गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज ने अपने जीवन मे धर्म की श्रेष्ठ साधना करके जनता के सामने एक महान् आदश रखा था। उनके विचार और आचार मे एकरूपता थी। वस्तुत यही सबसे बडा और सच्चा धर्म है।

धम को सदाचार का प्रेरक कहा गया है। सदाचारी व्यक्ति के चरणो को सफलता सदैव चूमती है। अत धम से ही जीवन मे सुख, शान्ति और समृद्धि प्राप्त हो सकती है।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे चाहे वह सामाजिक हो या राजनैतिक, आर्थिक हो या नैतिक, बौद्धिक हो या आध्यात्मिक सुधार एव प्रगति तभी सम्भव है, जब कि अन्त करण का समुचित विकास किया जाए। आज ससार मे जो अशान्ति, स्वार्थपरायणता, असहिष्णुता, भ्रष्टाचार, अनैतिकता आदि कुप्रवृतियो का आधिपत्य स्थापित हो चुका है, उसका एक मात्र कारण धर्म की भावना का अभाव है। धर्म के जो गुण (अहिंसा, प्रेम, धृति, निग्रह, अस्तेय, शौच, बुद्धि, विद्या अक्रोध आदि) बताए गए हैं, उन्ही गुणो के अभाव के कारण ही समय विकराल रूप धारण कर रहा है। यदि हम धर्म को जीवन के प्रत्येक काय मे साथ लेकर चलें, तो शनै शनै यह सब अशान्ति दूर हो जावेगी और मानव इन्ही गुणो को धारण करता हुआ तथा स्वकम और स्वधम का पालन करता हुआ विश्व-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर, उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकेगा। धम के द्वारा ही वह ऐहिक एव पारलौकिक समस्त श्रेय की प्राप्ति कर परम सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

भगवान महावीर और अहिंसा

श्रीमती रमासिंह एम ए

अपने अप्रतिम वैचारिक दर्शन से अनुप्राणित कर विश्व के मानव को आधुनिक सभ्यता की उच्चतम अवस्था तक पहुँचाने का जिन महापुरुषों ने अनवरत प्रयास किया है उनमें जैन धर्म के प्रवर्तक भगवान महावीर का स्थान प्रमुख है। उन्होंने अपनी वैचारिक क्रान्ति से रूढ़ि-जर्जर समाज का उद्धार किया और अपने तत्व दर्शन के अलौकिक आलोक से मानव जीवन को आलोकित कर दिया।

युग-पुरुष महावीर अन्य महापुरुषों की ही भाँति अपने युग की विशिष्ट देन थे। ईसा की छठी शताब्दी पूर्व का वह काल जब भगवान् महावीर ने जन्म लेकर इस देश को उपकृत किया और अलंकृत किया था धार्मिक विरोधों का काल था। एक ओर जहाँ वैदिक धर्म यज्ञ की पशु-बलियों के रूप में मानव जीवन दर्शन की विडम्बना कर रहा था वहाँ दूसरी ओर एक वर्ग विशेष के अन्तर्मानस में धर्म के इस विकृत रूप के प्रति प्रतिक्रियाओं का सृजन हो रहा था। युग की माँग पर, राजकुमार वर्द्धमान ने उस वर्ग विशेष को नेतृत्व प्रदान करते हुए, उसकी प्रतिक्रियाओं को एक सही दिशा में प्रेरित किया। ऐसा करने के लिए मनीषी वर्द्धमान ने बारह वर्ष तक कठोर तप किया जिसके फलस्वरूप उन्हें कैवल्य रूपी रत्न की उपलब्धि हुई। इस सर्वश्रेष्ठ कैवल्यज्ञान की उपलब्धि एवं सांसारिक सुख-दुख से अन्तिम मुक्ति प्राप्त कर लेने के कारण वर्द्धमान अब "अर्हन्" 'जिन' निर्ग्रन्थ" तथा "महावीर" कहलाए। इसके बाद उनका समस्त जीवन मानव को धर्म के तत्व से परिचित करा कर कैवल्य की ओर उन्मुख कराने में लगा रहा। यही उनका ध्येय और उद्देश्य था।

भगवान् महावीर ने धर्म और आचार के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उसमें उनकी क्रान्तिकारी दृष्टि दिखाई पड़ती है। परन्तु अहिंसा के सम्बन्ध में उनके विचार तत्कालीन समाज की दृष्टि से अधिक क्रान्तिकारी थे। उन्होंने जिन पाँच महाव्रतों (१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय (४) ब्रह्मचर्य और (५) अपरिग्रह का उपदेश दिया है उनमें से कोई ऊँचा या नीचा नहीं है। परन्तु फिर भी अपने विचारों के कारण वे अहिंसा को ही प्रधानता देते प्रतीत होते हैं। उनका विश्वास था कि सभी वस्तुओं जड़ और चेतन दोनों में जीव है। उनमें प्राण है अतः आघात पहुँचाने पर वे कष्ट का अनुभव करते हैं। इस प्रकार अहिंसा जैन धर्म का मूल सिद्धान्त है। छोटे से छोटे जीव के प्रति हिंसा का विचार जैन धर्मावलम्बियों के लिए अग्राह्य और असह्य है। वैसे तो अहिंसा की भावना वैदिक काल की ही एक पुण्य पुनीत भावना है, क्योंकि वेदों में भी "मा हिंस्यात् सर्वभूतानि" जैसे वाक्य बहुत उपलब्ध होते हैं उपनिषदों में भी अहिंसा की ही प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। पश्चात्कालीन हिन्दू समाज विशेषकर वैष्णव समाज पर अहिंसा का सर्वतोमुख प्रभाव था परन्तु महावीर से पूर्व की अहिंसा में वह भाव वह प्राण नहीं थे जो महावीर की अहिंसा में सन्निहित हैं। उपर्युक्त प्रकरणों से प्रतीत होता है कि वैदिक

ऋषियो की अहिंसा से तात्पर्य केवल दैहिक अहिंसा से था, परन्तु भगवान् महावीर की अहिंसा म दैहिक अहिंसा के साथ ही साथ मानसिक अहिंसा का भी समावेश है।

भगवान् महावीर के द्वारा इस बहु-प्रचारित अहिंसा का हमारे आधुनिक समाज मे क्या मूल्य है, यह जानने के लिए महात्मा गाधी के जीवन-दर्शन का अध्ययन अत्यावश्यक है। उन्होने अहिंसा को ही विश्व की सम्पूर्ण समस्याओ का समाधान बताया है और स्वय उनका जीवन इस तथ्य का साक्षी है। गाधी जी का यह कहना कितना सार्थक था कि जिस प्रकार कीचड से कीचड नही धोई जा सकती उसी प्रकार हिंसा द्वारा हिंसा को नही दबाया जा सकता। ठीक यही बात भगवान् महावीर की अहिंसा म भी है। युग-भेद से उसके प्रयोग मे अन्तर हो सकता है, परन्तु उसके मूल स्वरूप मे कोई अन्तर नही है। वस्तुत अहिंसा के सम्बन्ध मे महात्मा गाधी भगवान् महावीर के ही पद-चिन्हो पर चलते हुए प्रतीत होते हैं।

अहिंसा सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि की आधारशिला है। यह सत्य का प्राण है। अहिंसा के विना मनुष्य पशु-सदृश है। जीवन का उच्च से उच्च आदर्श अहिंसा द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। सत्य एव अहिंसा के शुद्धाचरण से ही मानव अपने जीवन को उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकता है। यह वीर पुरुषो का धर्म एव आभूषण है। महात्मा गाधी ने भी अहिंसा को कायरता का पर्यायवाची न मानकर, जीवन सग्राम का एक महान् सहायक शस्त्र माना है। भगवान महावीर ने तो अहिंसा को समस्त सासारिक क्लेशो से मुक्ति प्राप्त करने का एकमात्र साधन माना है। उनकी दृष्टि मे अहिंसा सम्पूर्ण विश्व के लिए वरदान है। सुख एव शान्ति से जीवन व्यतीत करने के लिए अहिंसा व्रत का पालन अत्यन्त आवश्यक है।

आज की विषम परिस्थितियो में जब आणविक युद्ध की आशकाओ से सत्रस्त विश्व हिंसा की उत्ताल तरङ्गो के आघात पर आघात सह रहा है, तथा आसुरी शक्तियाँ अपना साम्राज्य बढ़ाती जा रही हैं, अहिंसा का अमोघ अस्त्र ही हमारा एकमात्र अवलम्ब हो सकता है। नि सन्देह विश्व की उन्नति, विकास और प्रगति एकमात्र अहिंसा पर ही आधारित है। भगवान् महावीर का दिव्य अहिंसा-सन्देश ही आज घन-घोर अन्धकार में पुण्य प्रकाश का साधन और स्रोत बन सकता है।

गुरुदेव की साहित्य-साधना

कु. मनोरमा जैन

किसी भी राष्ट्र, किसी भी समाज और किसी भी व्यक्ति की संस्कृति और सभ्यता को समझने के लिए एक मात्र साधन है उसका साहित्य। साहित्य के बिना कम से कम मानवीय जीवन के मूल्य का निर्धारण और अंकन तो कथमपि नहीं किया जा सकता। भारत का एक महान् दार्शनिक कहता है—

"साहित्य संगीत कला-विहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छ-विषाण-हीनः।

जिस मनुष्य ने अपने जीवन में साहित्य और संगीत की कला अधिगत नहीं की वह मनुष्य नहीं एक प्रकार का पशु ही है। इतना गौरव है साहित्य का मानवीय जीवन में। अतः साहित्य वस्तुतः मनुष्य जीवन की एक सरस सुन्दर और मधुर कला है उसके बिना जीवन शून्य रहेगा।

परन्तु सवाल उठता है कि साहित्य का ध्येय क्या है। साहित्य का ध्येय है—विरोध में समन्वय, विषमता में समता और संघर्ष में सन्तुलन। भारतीय साहित्य में जब तब सर्वत्र समन्वय की मधुर भावना परिलक्षित हो जाती है। भारत के प्राचीन और अर्वाचीन—दोनों प्रकार के साहित्य में विचार और आचार में समन्वय साधने का सफल प्रयास किया गया है। यहाँ पर ज्ञान कर्म और भक्ति का अलग अलग कोई महत्व नहीं है उन तीनों का समन्वित रूप ही जीवन को सुन्दर और मधुर बना सकता है।

जैन परम्परा के साहित्यकार आचार्यों ने तो साहित्य की समन्वय भावना पर अत्यन्त बल दिया है। जैन दर्शन के अनुसार केवल साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में और उसके हर पहलू में समन्वय की भावना परम आवश्यक है। बिना समन्वय के जीवन में सरसता एवं मधुरता नहीं आ सकती। साहित्य अपने आप में 'सत्यं शिवं और सुन्दरं' होता है। उसके अध्येता के जीवन में भी सत्यता शिवता और सुन्दरता होनी चाहिए। और यह तभी सम्भव है जब साहित्य में समन्वय भावना सुरक्षित रहे। भारतीय साहित्य के मूल में समन्वय भावना निहित है।

भारतीय साहित्य की और विशेषतः जैन साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसके मूल में स्थित समन्वय की भावना है। धर्म क्षेत्र में जिस प्रकार ज्ञान भक्ति और कर्म का समन्वय हुआ है, उसी प्रकार भारत के साहित्य में भारत की कला में और भारत के जन-जीवन में भी समन्वय हुआ है। भारत की विविध परम्पराओं के साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है। राम कृष्ण बुद्ध महावीर को लेकर जो साहित्य लिखा गया है उसमें विरोध की अपेक्षा समन्वय के बीज अधिक हैं। उपनिषद् आगम और पिटकों में जो कुछ चिन्तन उपलब्ध हुआ है उसमें विरोध अल्प और समन्वय अधिक है। इसका अर्थ

यह नही है कि भारतीय साहित्य मे विरोध जैसी चीज ही न हो। समस्त भारतीय साहित्य तथा जैन परम्पराओ के साहित्य मे भी विरोध के तत्व उपलब्ध हैं। यह सब होते पर भी साहित्य का मूल लक्ष्य समन्वय है।

भारतीय साहित्य की दूसरी विशेषता है धर्मोन्मुखता। धर्म मे धारण करने की शक्ति है। भारत के अध्यात्म जीवन मे ही नही, लौकिक आचार-विचारो मे तथा राजनीति मे भी उसका नियन्त्रण स्वीकार किया गया है। अत भारतीय साहित्य धर्म से अनुप्राणित है। उसके अणु-अणु मे धर्म रमा हुआ है। जैन धर्म का साहित्य तो धर्म-भावना से इतना प्रभावित है कि उसमे शृगार रस का जरा भी अवकाश नही है। उसमे सर्वत्र वैराग्य रस परिव्याप्त है।

भारतीय साहित्य निराशा की ओर नही, आशा के प्रकाश की ओर ले जाता है। उसके मूल मे आशा है, निराशा नही। विदेश के विद्वानो ने उसे निराशा-मूलक भले ही कहा हो, परन्तु वास्तव मे वह मानव जीवन को आशा के अनन्त प्रकाश की ओर ले जाता है।

भारतीय साहित्य की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसमे आदर्शवाद की मुख्यता है। उसमे यथार्थवाद न हो, सो बात तो नही, पर उसमे प्रचुरता आदर्शवाद की ही है। रामायण, महाभारत, इस बात के प्रमाण हैं कि भारतीय साहित्य आदर्शमूलक है। किसी भी ग्रन्थ को उठाकर अध्ययन कीजिए उसमे से जीवन के लिए कुछ न कुछ आदर्श अवश्य उपलब्ध होगा। और यह आदर्श क्या है, यही वह महान आदर्श है, जिसने भारतीय साहित्य को अमर बना दिया है।

भारतीय साहित्य जिन भाषाओ मे पल्लवित और विकसित हुआ है, वे भाषाएँ हैं—प्राकृत, संस्कृत और पाली। भारत के साहित्य का गम्भीर एव गहन अध्ययन करने के लिए उक्त तीनो भाषाओ का अध्ययन परम आवश्यक है। जैन धर्म के साहित्य को समझने के लिए तो प्राकृत और सस्कृत दोनो भाषाओ का परिज्ञान अपेक्षित है। हिन्दी भाषा मे भी जैन साहित्य प्रचुर मात्रा मे प्रकाशित हो चुका है। फिर भी बहुत से ऐसे ग्रन्थ हैं, जो अभी तक प्राकृत और सस्कृत मे ही हैं। अपभ्रश भाषा मे भी जैन साहित्यकारो के हजारो ग्रन्थ हैं। हिन्दी भाषा के विकास मे जैन परम्परा के सन्तो ने महान योगदान दिया है। हिन्दी का प्राचीन से प्राचीन रूप जैन परम्परा के ग्रन्थो मे उपलब्ध हो सकता है, अत हिन्दी भी उनके साहित्य का माध्यम रही है।

गुरुदेव का साहित्य

गुरुदेव प्राकृत, सस्कृत और अपभ्रश भाषाओ के परम विद्वान थे। फिर भी उन्होंने अपनी साहित्य-रचना का माध्यम हिन्दी को ही बनाया। उनके द्वारा रचित बहुत से ग्रन्थ आज उपलब्ध भी नही हैं। पर, जो उपलब्ध हैं, वे भी उनके पाडित्य के परिचायक हैं। उनकी साहित्य-रचना के मुख्य रूप से दो उद्देश्य थे—पहला तत्व की शिक्षा और दूसरा जन-जीवन मे त्याग और वैराग्य-भाव का जागरण। उन्होने अपने ग्रन्थों की रचना तत्कालीन हिन्दी भाषा मे की। जैन सन्तो मे यह एक परम्परा रही है कि वे जैन-बोली मे ही साहित्य-रचना करते आए हैं। श्रद्धेय गुरुदेव ने अपने साहित्य का माध्यम हिन्दी भाषा को ही चुना था। उनकी साहित्य-साधना के विविध रूप हैं। सिद्धान्त-ग्रन्थ, चर्चा-ग्रन्थ और आगम-

ग्रन्थ के अतिरिक्त आपने अनेक चरित-ग्रन्थों की रचना पद्य में की थी। आपने फुटकर पदों में स्तुति भजन और उपदेश पद भी लिखे थे। आज उनके द्वारा लिखित साहित्य का अधिकांश भाग अप्रकाशित ही पड़ा है। बहुत कम ग्रन्थ ही प्रकाश में आए हैं। 'मोक्ष-मार्ग-प्रकाश' 'नवतत्व' तथा कुछ अध्यात्मपदों के अतिरिक्त शेष ग्रन्थ आज भी भण्डारों की ही शोभावृद्धि कर रहे हैं। सगर चरित्र सुखानन्द मनोरमा चमत्कार चिन्तामणि और गुण स्थान विवरण तथा प्रश्नोत्तर माला आदि ग्रन्थ अभी अप्रकाशित हैं। अध्येता इस परिचय से यह समझ सकेंगे कि गुरुदेव का कृतित्व कितना विशाल था। उस युग के कुछ विवादास्पद विषयों का परिचय भी इनमें पाठकों को भली भाँति ज्ञात हो सकेगा।

* * *

सत्य एवं अहिंसा के निर्माता : श्री रत्नमुनि जी

(कु० उर्मिला तनेजा, प्रथम वर्ष कला)

श्री रत्नमुनि रत्न थे इस देश के महान्
जिनके अगम्य ज्ञान का हमको भी है अभिमान
करके उद्दीप्त ज्ञान मानव को जगाया
अज्ञान अन्धकार के गर्त से उसको बचाया
जिनके अनन्त ज्ञान का करते सदा गान
सच्चे विरोधी हिंसा के मुनि रत्न थे महान्।

देके सन्देश अहिंसा का जीवों को बचाया
करके भ्रमण दिशा में शुभ मार्ग दर्शाया
जिनके गुणों का सम्मान सब राष्ट्र करते आज
श्री रत्नमुनि रत्न थे इस देश के महान्।

सच्चे थे संत सबमें बिन राग द्वेष के
सत्य और अहिंसा के मर्मज्ञ थे पक्के
जिनके प्रशस्त मार्ग पर सब रहे विद्वान
श्री रत्नमुनि रत्न थे इस देश के महान्॥

* * *

प्रगतिशील है। यह समझ मे नही आता। कितने मृतक जीवो को भाजन के रूपमे प्रयोग मे लाया जाता है, हार्दिक वेदना के साथ यह देखते रहे ह, ऐसी स्थिति म "वसुधैव कुटुम्बकम्" पवित्र सिद्धान्त स्वय ही समाप्त हो जाता है। "सर्वभूत-हिते रता" का वाक्या हम भूलते जा रहे हैं। "अहिंसा परमो धम" यह आदश मृत हो चुका है। मांसाहार मे प्रवृत होना ऋषियो और महर्षियो की हजारो साल की उस साधना पर पानी फेर देना है जिस साधना ने मानवीय करुणा का महत्त्व पहचाना है, जिस साधना ने समस्त पृथ्वी पर यह घोषणा की है कि समस्त भूमण्डल पर एक ही तत्व अद्वैत है।

इन सब बातो से यह प्रमाणित किया जा सकता है कि मनुष्य को अपना पोषण करने के लिये शाकाहारी ही होना चाहिये, क्योकि इतिहास, नीति, धर्म, शारीरिक विज्ञान और ओषधि विज्ञान (Hedical Sc) आदि सभी इसका अनुमोदन करते हैं।

* * *

गुरुदेव की मधुर-स्मृति

(रजनी जैन)

गुरु देव ! तुम्हारी मधुर मनोहर,
स्मृति का होता नही विराम।
सदा तुम्हारी मगल - मूर्ति ,
मन मे रहती है अभिराम ॥

जीवन मे मैंने पाया है,
नव्य दिव्य आलोक तेरा।
मिट गया अगणित युगो का,
छा रहा था जो अँधेरा ॥

तुम से सदा लिया ही मैं ने,
लेती - लेती थकी नही।
अमित ज्ञान सौभाग्य मिला,
पर मैं कुछ भी दे सकी नहीं ॥

मेरे जीवन के कण कण से,
झरते हैं श्रद्धा के फूल।
स्वीकार करो हे गुरुवर ! मेरे,
श्रद्धा के ये सुरभित फूल ॥

* * *

गुरुदेव समर्पण

लता जैन कक्षा सप्तम स

आज से सौ साल पहले
उतर आया था धरा पर एक तारा
रिक्तता की गोद से
देखकर धूमिल दिशाएँ जैन-जग की
सोचने फिर-फिर यही थी मैं लगा वह
'क्या कभी यह तिमिर घन छा जायगा ।।

पिघलती हिम की नसीली पर्त क्या ?
हाँ उस ठिठुरती प्रात की स्वर्णिम किरण पर
जो कि पहले कभी ... .
बोझिल थी स्वयं की पूर्णता से ।'

वह सितारा टिमटिमाता चल दिया... —
चल दिया उस ओर
जहाँ मच रहा कोहराम था
गूँज हिंसा अन्याय अत्याचार का
और बेचारी मनुजता से पशुता बलवती थी
हर तरफ संघर्ष के तूफान उठते दीखते थे
और तो क्या ? प्रभु सत्ता चीखती थी हाथ फैला
एक को प्रियतम बनाता
और पावन विश्व पर करुणा कराता ।

इस निर्दयी बयावह युग पर्व में वह
देख पाया था मनुज की जिन्दगी के दृश्य पट को
रह सका नहीं एक क्षण वह
मात का आघात एक निर्मम कुसुम पर,

शाकाहार ही क्यों ?

कु० निर्मला रावत, एम० ए०, बी० टी०, विशारद

आज का मानव वह मानव नही रह गया है, जो शताब्दियो पहले था। आज उसके प्रत्येक क्रिया-कलाप पर विज्ञान की छाप दिखाई देती है, और जिस किसी दिशा मे विज्ञान ने व्यावहारिक या प्रत्यक्ष रूप से योग नही भी दिया है तो उसमे आज के मानव के Cerebıal Cortex के अधिक develop होने के लक्षण दिखाई देते है। वह अपनी शारीरिक और मानसिक दोनो प्राकृतिक प्रकारों का अनादर कर रहा है। यही कारण है कि जैन धम के आदि प्रवर्तक ऋषभदेव ने कृषि के माध्यम से मांसाहार के स्थान पर शाकाहार का भी सिद्धान्त प्रस्तुत किया, वह आज तक विश्वव्यापी नही बन सका। अब हमे यह देखना आवश्यक है कि वस्तुत शाकाहार से क्या लाभ है। केवल शारीरिक दृष्टि से ही नहीं वरन् मानसिक, नैतिक और धार्मिक दृष्टि से भी हमे शाकाहारी क्यो होना चाहिए ? सबसे प्रथम यदि शाकाहार की अपेक्षा मासाहार को हम शारीरिक पोषण की दृष्टि से लम्बे-चौडे होने के लिये, महत्ता प्रदान करते हैं, तो यह अनुचित है। क्योकि हम यह देखते हैं कि हाथी शाकाहारी होते हुए भी, बडे डील-डौल का होता है, उसके शरीर को बडा बनाने वाले पोषक तत्वो मे से मास का अभाव होते हुए भी वह कभी लम्बाई या चौडाई मे छोटा नही हो जाता। यदि इसके लिये यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि हाथी के शाकाहारी होने के कारण ही मासाहारी शेर उसे मार डालता है, तो इसके उत्तर मे यही कथन उपयुक्त होगा कि शेर द्वारा हाथी को मार डालना, शेर की शक्ति का परिचायक नही है, वरन उसकी मासप्रियता और उससे उसकी क्षुधा का तृप्त होना है। क्योकि यदि हाथी और शेर की शक्ति का मुकावला एक वृक्ष से बाँध कर करें तो निश्चित है कि उसमे हाथी ही विजयी होगा। इस प्रकार निश्चित है कि शाकाहार ही अत्युत्तम है।

दूसरी दृष्टि से भी हमे मासाहार का अनौचित्य प्रतीत हो जाता है। जैसे शेर अपनी सीमा मे रहता है, उस सीमा मे जो प्रकृति-प्रदत्त है। उदाहरणानुसार, उसके शरीर मे उसे जीभ और दात जिस लिए मिले हैं, उसका वह उचित उपयोग करता है। उसके दात पैने—या तीक्ष्ण और जीभ खुरदरी होती है, जबकि व्यक्ति के ऐसा नही होता। मनुष्य की भी कुछ सीमाएँ हैं। उसके शरीर की रचना उसके अन्तर्गत हुई है। परन्तु वह सीमा—अथवा कहिये मर्यादा का उल्लघन करने लगा है। जब पशु, पशु होकर अपनी सीमा मे रहते हैं मनुष्य, मनुष्य होकर बुद्धिजीवी होकर भी अपनी सीमाएँ नही समझता, महान् आश्चय है। यह उसका दूसरे के भोजन पर अनुचित हस्तक्षेप है।

मनुष्य के शरीर की रचना का उदाहरण हमे नित्य औषधालय मे आये Appendıcıtıs के Cases से मिलता है, क्यो कि इस रोग के ९९% रोगी मासाहारी होते हैं। इन सब बातो से ज्ञात होता है कि मनुष्य के शरीर की रचना मासाहार के लिये नही की गई है।

औषधि-विज्ञानियों के अनुसार संतुलित भोजन के वे सब तत्व जो शाकाहारी भोजन में प्राप्त होते हैं वे सब अनेक प्रकार के मांसों में भी नहीं प्राप्त हैं। यही कारण है कि कुछ प्रदेशों के व्यक्तियों को मांसाहारी होते हुए भी अपने शरीर में संतुलित भोजन के तत्व प्राप्त करने के लिये शाकाहारी बनना पड़ता है परन्तु किसी शाकाहारी को वे उचित तत्व प्राप्त करने के लिये मांसाहारी बनने की आवश्यकता नहीं होती। यदि किसी व्यक्ति को केवल मांस पर निर्भर रहना पड़ जाय तो वह स्वास्थ्य का रक्षण नहीं कर सकता जब कि शाकाहारी भली भांति कर लेते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि मांसाहार करना आवश्यक नहीं वरन् शेर की तरह बलवान बनने की लिप्सा इसके मूल में कार्य करती है। परन्तु ये उसकी भूल है। अपनी आकृति की सौम्यता को नष्ट करके चेहरे पर क्रूरता लाकर बलवान बनना बुद्धिमानी नहीं है।

इसके अतिरिक्त जिन प्रदेशों में मांसाहार को अपना रखा है वह उन्होंने आवश्यक वस्तु के अभाव में उसके Substitute के रूप में लिया है। उसके प्रदेश के वातावरण और जलवायु का इसमें विशेष हाथ है। ठंडे मुल्कों में और पहाड़ी मुल्कों में और जंगली उप नगरों में जो बहुसंख्यक मानव समाज रहता है उसे अन्न उपलब्ध नहीं हो सकता वहां कृषि भी सम्भव नहीं हो सकती और वहां के वातावरण में गर्मी—मांस जैसी गर्मी देने वाली वस्तु के बिना काम भी नहीं चल सकता।

इस विषय में एक और तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है। वह यह है कि मनुष्य अपने स्वयं के श्रम से किसी फल या शाक का एक बीज पृथ्वी में डालकर हजारों उत्पन्न कर लेता है उन हजारों में से कुछ शेष रखकर और उनसे फिर उत्पन्न कर लेता है परन्तु उपर्युक्त अन्न या शाक की भांति किसी एक जीव को अपने उपभोग के लिये मारकर उसकी चेतन शक्ति को नष्ट करके अपने स्वयं के प्रयत्न से उसमें से एक भी उत्पन्न करने की क्षमता नहीं रखता। इससे भी यह सिद्ध होता है कि वह अपने अधिकार से बाहर जा रहा है। उसे उस जीव को मारकर खाने का कोई अधिकार नहीं है। क्यों कि कहावत भी है 'जिसे तुम जिला नहीं सकते उसे मारो भी मत"।

और भी एक तथ्य इस विषय में प्रमुख है और वह यह है कि शाकाहार उत्तम पोषण करता है। क्योंकि व्यक्ति उन्हीं पशुओं आदि जैसे भेड़ बकरी गाय बैल हिरन आदि का मांस खाता है जो शाकाहारी होते हैं। कुछ पक्षी आदि भी ऐसे हैं जिनका व्यक्ति मांस खाता है और वे भी थोड़ा मांस खाते हैं तो ऐसे पक्षी जैसे मुर्गी आदि ने मनुष्य की ही भांति कुछ न मिलने पर अपने आवश्यक तत्वों के अभाव Substitut के रूप में मांस को ग्रहण किया है। वे पूर्णतया मांस पर निर्भर नहीं रहते। जो पशु पक्षी मांस खाते हैं और उस पर पूर्णतया निर्भर रहते हैं व्यक्ति उनका मांस नहीं खाता क्यों कि उनके मांस में जहर होता है। तब ऐसी परिस्थिति में शाकाहार द्वारा पोषण किए गये शरीर से शरीर का पोषण करने की अपेक्षा जिसमें कि हिंसा और पाप का भय है, आकृति की सौम्यता नष्ट हो जाने का भय है, हमें चाहिए कि हम पोषण के तत्वों का मौलिक रूप ही ग्रहण करने का प्रयत्न करें।

इन सब बातों के अलावा मांसाहार से एक बड़ी हानि है और वह यह है विश्व-धर्म पर चोट आज का प्रगतिशील मानव जो मानव मात्र की समानता का सिद्धान्त मानता है और सामाजिक न्याय के प्रति प्रयत्नशील है, अपने से कमजोर प्राणियों के प्रति इतना क्रूर हो सकता है, तो वह कैसा

प्रगतिशील है। यह समझ म नही आता। कितने मृतक जीवो को भोजन के रूपमे प्रयोग मे लाया जाता है, हार्दिक वेदना के साथ यह देखते रहे ह, ऐसी स्थिति म "वसुधैव कुटुम्बकम्" पवित्र सिद्धान्त स्वय ही समाप्त हो जाता है। "सर्वभूत-हिते रता" का वाक्या हम भूलते जा रहे है। "अहिंसा परमो धम" यह आदर्श मृत हो चुका है। मासाहार मे प्रवृत होना ऋषियो और महर्षियो की हजारो साल की उस साधना पर पानी फेर देना है जिस साधना ने मानवीय करुणा का महत्त्व पहचाना है, जिस साधना ने समस्त पृथ्वी पर यह घोषणा की है कि समस्त भूमण्डल पर एक ही तत्व अद्वैत है।

इन सब बातो से यह प्रमाणित किया जा सकता ह कि मनुष्य का अपना पोषण करने के लिये शाकाहारी ही होना चाहिये, क्योकि इतिहास, नीति, धम, शारीरिक विज्ञान और औषधि विज्ञान (Hedical Sc) आदि सभी इसका अनुमोदन करते ह।

* * *

गुरुदेव की मधुर-स्मृति

(रजनी जैन)

गुरु देव! तुम्हारी मधुर मनोहर,
स्मृति का होता नही विराम।
सदा तुम्हारी मगल - मूर्ति,
मन मे रहती है अभिराम॥

जीवन मे मैंने पाया है,
नव्य दिव्य आलोक तरा।
मिट गया अगणित युगो का,
छा रहा था जो अँधेरा॥

तुम से सदा लिया ही मैं ने,
लेती - लेती थकी नही।
अमित ज्ञान सौभाग्य मिला,
पर मैं कुछ भी दे सकी नही॥

मेरे जीवन के कण कण से,
झरते हैं श्रद्धा के फूल।
स्वीकार करो हे गुरुवर! मेरे,
श्रद्धा के ये सुरभित फूल॥

* * *

गुरुदेव समर्पण

लता जैन कक्षा सप्तम स

आज से सौ साल पहले
उतर आया था धरा पर एक तारा
विस्मृता की गोद से
देखकर धूमिल दिशाएँ जैन-नभ की
सोचने फिर-फिर लगी थी मैं सदा यह
'क्या कभी यह तिमिर घन छा जाएगा ।।

सिमटती हिम की नशीली पर्त सा ?
हाँ उस ठिठुरती शाम की स्वर्णिम किरण पर
जो कि पहले कभी —
शोभित थी स्वयं की पूर्णता से ।

यह सितारा टिमटिमाता चल दिया— —
चल दिया उस ओर
जहाँ मच रहा कोहराम था
झूठ हिंसा अन्याय अत्याचार का
और बेचारी मनुजता से पशुता उलझती थी
हर तरफ संघर्ष के तूफान उठते दीखते थे
और तो क्या ? प्रभु सत्ता चीखती थी हाय पैसा
एक को प्रियतम बनाना
और शासन विश्व पर करना कराना ।

इस विदीर्ण भयावह युग गर्भ में यह
देख पाया था मनुज की जिन्दगी के दृश्य पट को
रह सका नहीं एक क्षण यह
मान था आघात एक निर्मम कुपथ पर

तदुपरान्त बन गया वह जैन भिक्षु
और खूब पढली समय की लम्बी कहानी
उस समय के महामानव, परिव्राजक सन्त ने
और हाँ, फूंक दी थी उसी ने दुदुभि महासत्य की
गुजरित की घाटियाँ भी ज्ञान की
धर्म जन्मा
और पनपा
और विस्तृत हो गया चहुँ ओर।

वाह रे, ओ दिव्यता के
सौम्यता के महातारे
आज भी साक्षात् हो इस नाम से
"गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज।"
जैन नीलाकाश के उज्ज्वल, महाध्रुव तारे ॥

जैन-जगताकाश के दिनकर

कुमारी आशाद जैन प्रथमवर्ष "कला"

यों तो सभी मरण के राही एक दिवस उठ जाते हैं।
किन्तु धन्य वे जो मरकर भी अमर यहाँ हो जाते हैं ॥

डाली पर पुष्प खिलता है वह इधर-उधर चारों ओर अपनी सुगन्ध बिखेर देता है। अपनी महक से आस-पास के वातावरण को महका देता है। जब तक वह डाली पर रहता है, तब तक महकता रहता है। लेकिन इस जगत में कुछ ऐसी आत्मायें हैं जो कि जीवन में तो प्रकाश फैलाती ही हैं लेकिन उनके आँखों के ओझल होने के पश्चात् उनके गुणों की महक जन तथा मन में नव चिन्तन बिखेर देती है।

इसी प्रकार जैन तथा जैनेतर अनेक महात्मा हो चुके हैं जिन्होंने परमार्थ में ही जीवन व्यतीत किया। भगवान महावीर जिनके नाम से पाप भी मुँह ढाँकते हैं वह आध्यात्मिक जीवन की ही साक्षात मूर्ति थे। महात्मा बुद्ध व्यास आदि महात्माओं ने भी इसी मार्ग का अनुसरण किया और परमार्थ में जीवन व्यतीत कर दिया। मनुष्य अपने लिए नहीं दूसरे के लिए पैदा हुआ है ऐसी अपूर्व आत्मा जिनका शुभ नाम श्री रत्नचन्द्र जी महाराज था।

पूज्य श्री रत्नचन्द्र जी महाराज का जन्म राजस्थान में तातीजा नामक ग्राम में [illegible] में भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशी के शुभ दिन हुआ। श्रेष्ठ पण्डितों के आदेशानुसार पुत्र का नाम रत्नचन्द्र रखा गया। जो कोई इनके कार्यों या लक्षणों को देखता वही आपको महापुरुष या महात्मा होने की भविष्यवाणी करता। उन लोगों की भविष्यवाणी वास्तव में माननीय थी। क्योंकि "होनहार बिरवान के होत चीकने पात।"

जब आप दो वर्ष के थे आपने एक शिक्षक बनाया। अपनी बुद्धि प्रखर होने के कारण प्रत्येक शिक्षा शीघ्र ग्रहण कर लेते थे। आपने माँ के द्वारा चरित्र का तथा शिक्षक से ज्ञान का पाठ सीखा। आप माता-पिता के पूर्ण भक्त थे। उनकी आज्ञा का पालन शीघ्र करते थे। और जो माता पिता का दिया हुआ कार्य पूर्ण नहीं होता तो अपने को अयोग्य समझते थे। जिस घटना के कारण आपको वैराग्य हुआ वह बहुत मार्मिक है। उस समय आप १२ वर्ष के थे माता-पिता की आज्ञानुसार बैलों को चराने के लिए वन में गये। वहाँ एक भेड़िया आ गया। आप तो पेड़ पर चढ़ गए। बैल उनसे भड़कता हुआ जंगल में चला गया। आप वहाँ से घर न जाकर नारनौल चले गये।

इस असाधारण घटना से आपके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। नारनौल में पहुँचने पर आपके पिता के परिचित एक व्यक्ति ने आपको आश्रय दिया। उनके साथ आपने गुरु हरजीमल जी का उपदेश

सुना। तब से आपको वैराग्य हो गया और आपने दीक्षा लेने की ठान ली। माता पिता के समझाने पर भी आप न माने तब विक्रम सवत् १८६२ भाद्रपद शुक्ला ६ गुरुवार को दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा के पश्चात् सयम पालना प्रारम्भ किया तथा साथ मे धर्म-प्रचार के लिए भी भ्रमण करते रहे। आपने मनको एकाग्र करके विद्याभ्यास करना प्रारम्भ किया। अपनी प्रखर बुद्धि के कारण दो मास मे ही सस्कृत का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया। आपने कई प्रभावशाली ग्रन्थो की रचना की। आपने पजाब, दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, श्यामली, बिनौली मे धर्म-प्रचार किया। जैन धर्म का प्रचार भी सारे भारत मे करते रहे। इन्ही के कारण देश मे जैन धर्म का प्रचार हो रहा है। आप जहाँ जाते धर्मोपदेश के द्वारा सुप्त हृदय मे जागृति-मन्त्र फूंकते थे। आप अहिसा, सत्य, सयम और सदाचार की दुदभि जीवन भर बजाते रहे।

१६२० मे वैशाख १२ को २ बजे जैन जगत की वह जलती हुई ज्योति इस पार्थिव शरीर का आवरण छोडकर आँखो से ओझल हो गई। आपके दुखद अवसान से क्षति केवल जैन समाज को ही नही वरन् भारत के उन अहिसा के पुजारियो की है, जो कि अहिसा को सर्वस्व मानते है।

जिनके गुण से गौरव पाता है यह भारतवर्ष महान ।
उन त्यागी गुरुवर का मानव कौन कर सके सुयश बखान ॥
बहुत दिनों पश्चात् हस्तियां ऐसी भू पर आती हैं ।
जिनके गुण गौरव से जनता धन्य-धन्य बन जाती है ॥

आज गुरु का पार्थिव रूप हमारे सामने नही है परन्तु आप की शान्तिमय मूर्ति सदैव नेत्रो के सामने रहती है। आपके द्वारा सरल वाणी मे दिए हुए उपदेश तो कभी विस्मृत नही हो सके हैं। आप क्षमा-समता के तो साक्षात् अवतार थे। आपको बाल ब्रह्मचारी शीलवान महान आदर्श सन्त कहा जाता था।

गुरुदेव सरलता के सौम्य रूप थे। आप के विचार, वाणी और कर्म मे सरलता एवं सयम का झरना बहता था। वह समाज मे शान्ति का वातावरण चाहते थे। यदि समाज मे कोई विभेद होता तो आप अपने मधुर विचारो से उसे दूर कर देते थे। आपने अनेक लम्बी तपस्याएँ की। जीवन मे तप और सयम की कठोर साधना करके आपने समाज के समक्ष एक आदर्श उपस्थित किया है। उनके उपदेश का भाव इस प्रकार है। सज्जनो प्रत्येक पुरुष का यह कर्तव्य है कि वह अपने जीवन को एक उन्नत जीवन बनाये। जिस पुरुष के अन्दर उन्नत तथा पवित्र भावनाएँ नही वह मनुष्य ससार मे भारस्वरूप है। श्रावक के बारह व्रत प्रसिद्ध हैं जिनका पालन करना प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है। इन व्रतों मे पाच अणु व्रत और चार गुण व्रत और चार शिक्षा व्रत होते है। पञ्चाणुव्रत ये हैं—अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। ये श्रावक के अणुव्रत इसलिए कहलाते हैं कि साधु की अपेक्षा श्रावक इन पाच व्रतो को अणुरूप मे अर्थात् आगार सहित पालते हैं।

सचमुच आपका दिव्य जीवन एक प्रज्वलित प्रचण्ड ज्योतिपुञ्ज ही था। आपने अपने महान सद्-गुणो से अपने जीवन को ज्योति-सम्पन्न बनाया और फिर इस प्रचण्ड प्रकाश को ससार भर मे फैलाकर

संसार को प्रकाशित और चमत्कृत करके आप स्वयं प्रकाश रूप में लीन हो गए। जैन समाज के इस ज्योतिर्धर पूज्य प्रभाव का भाग समाज में मालूम हुए १ वर्ष हो गए हैं। आपका प्राकर जिन शक्ति का अनुभव जैन समाज कर रहा है उसकी पूर्ति कभी नहीं हो सकती।

पूज्य श्रीरत्नचन्द्र जी महाराज की आत्मा और शरीर भले ही हमारे नेत्रों से ओझल हो गए हैं किन्तु जब जब वैशाख शुक्ला १५ आएगी तब-तब हम अन्तर में सूक्ष्म दृष्टि से उस पवित्र आत्मा के दर्शन करेंगे। आपकी विचारधारायें और जीवन ज्योति आज भी हमारा पथ प्रदर्शन कर रही है और भविष्य में भी करती रहेगी।

जब तक चमके चाँद सितारे, बहती गंगा यमुना धारा।
तब तक तेरा नाम रहेगा रटता यह सब संसारा॥

एक महकता हुआ व्यक्तित्व

कुमारी प्रवेश जैन

यो तो सभी मरण के राही,
एक रोज़ मर जाते हैं।
किन्तु धन्य वे, जो मर कर भी,
अमर नाम कर जाते हैं।।

+ + +

हे रत्न! तेरे ससार में प्रवेश पाते ही,
जैन-धम अपनी सुगन्धमय सौरभ फैलाता है,
मानव जाति को चकाचौंध कर इसी ओर ले आता है।।

तू सचमुच आकर्पण का पात्र,
तू सचमुच ससार का उल्लास।।

लावण्य, लीलामयी तेरी वाणी सुन, भव सागर से प्राणी तरे,
देख जीवन उच्च तेरा, पाप पथ से सब टरे।।

तू है अमृत का प्याला,
जिसे पिये नर हुआ मतवाला।।

अस्तेय औ ब्रह्मचर्य पालक, नाथ! मैं तुम को नमूं।
अपरिग्रह, सन्तोप धारक नाथ! मैं तुम को नमूं।।

हे महान ज्योतिर्मान किरण,
जन करे तेरा अनुकरण।।

पीडितो की सदा तुम हरण करते पीर थे
धन्य तव माता पिता और धन्य तुझ से वीर थे।

सचमुच शाश्वत जीवन तेरा,
और शाश्वत तेरी वाणी।

★

एक आदर्श व्यक्तित्व

कु. शकुन्तला जैन (ओसवाल) प्रथमवर्ष 'कला'

आज विभिन्न देशों जातियों और धर्मों में जो संघर्ष चल रहा है उसका मूल कारण यही है कि हम सबने सत्य को एक रूप में नहीं समझा है। हमारे विभिन्न दृष्टिकोणों ने सत्य के टुकड़े-टुकड़े कर दिये हैं और संसार के अज्ञानी प्राणी-जनों ने इन टुकड़ों को ही सत्य का वास्तव रूप समझ लिया है। आज के पण्डित और विद्वान न मालूम किस मार्ग पर और क्या सोचकर चल रहे हैं। पूर्ण सत्य के अभाव में सदा "हिंसा" पनपती है और अहिंसा का अभाव रहता है। जिस प्रकार नदी के प्रवाह को मर्यादित रखने के लिए दो किनारों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मानव के जीवन-प्रवाह को शुद्ध और सरल बनाने के लिये अहिंसा और सत्य रूपी दो किनारों की अत्यन्त आवश्यकता है किन्तु खेद है कि आज संसार में अधिकांश जन-समूह इन दोनों सद्गुणों से विमुख है। अहिंसा सत्य के अभाव में अन्य गुणों का पनपना असम्भव ही है। इन सद्गुणों के अभाव में मनुष्य का जीवन थोथा अथवा सुगन्ध रहित ही प्रतीत होता है।

भारतीय संस्कृति के मूल में भोग नहीं त्याग है। उसका दृष्टिकोण भौतिक-शक्ति पर केन्द्रित न रहकर आध्यात्मिक शक्ति की ओर झुक रहा है। त्याग तपस्या और वैराग्य को महानता देता रहा है। तन पर मन की और वासना पर संयम की विजय को लक्ष्य में रखकर चला है। जो इस दुर्लभ मानव-जन्म का सदुपयोग किया करते हैं तथा जो आध्यात्म-साधना के क्रमिक विकास द्वारा अपने सत्य लक्ष्य को प्राप्त कर लिया करते हैं, वही आदर्श मानव हैं।

ऐसे ही एक आदर्श महामानव जैन-धर्म के आधार-स्तम्भ प्रेरणा-केन्द्र श्रमण-संस्कृति के समुज्ज्वल नक्षत्र और आराध्य देव एक तपस्वी यशस्वी एवं मनस्वी सन्त श्री रत्नचन्द्र जी महाराज आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व आगरे में ही विद्यमान थे। जप-तप वैराग्य-विवेक आदि गुणों से मंज एवं निखर कर उनकी आत्मा खरा कुन्दन बन चुकी थी। तपस्वी और प्रचुर विद्वान होते हुए भी आप परम शान्त स्वभावी और निरभिमानी आत्म-साधक थे। आप का तप के साथ शान्ति का गुण तो मानो सोने में सुगन्ध वाली उक्ति को चरितार्थ कर रहा था। आप ज्ञान के सागर थे।

जैनागमों का गम्भीर चिन्तन एवं मनन किया था और अपनी आत्मा को संयम की शराण पर चढ़ा कर बाहर भीतर दोनों ओर से खरा बना लिया था यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी।

जिस महान ज्योति के ज्ञान के दिव्यालोक से यह धरातल आलोकित हुआ उस अनुपम रवि रश्मि का जन्म राजस्थान के जयपुर राज्य के तातीजा ग्राम में संवत् १ २ में भाद्र मास की कृष्ण चतुर्दशी को माता स्वरूपा देवी और पिता श्री गङ्गाराम जी की गोद में हुआ था। साधु-संगति के प्रभाव से

केवल ११ वर्ष की आयु में ही पटियाला राज्य के नाभा नगर में पूज्यपाद श्री हर्षचन्द्र जी महाराज से दीक्षित हुए।

गुरुदेव में प्रारम्भ से ही ज्ञान प्राप्त करने की बलवती जिज्ञासा थी। अतः निरन्तर आप ने धर्म और दर्शन-शास्त्र के गम्भीर तत्वों के साथ-साथ ज्योतिष, संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओं का भी गहन अध्ययन किया। आप सफल कवि भी थे। व अपने युग के विख्यात वक्ताओं और प्रखर प्रवक्ता थे।

उनकी रचनाएँ वैराग्य व आत्मरस से परिपूर्ण हैं। जन-जन के कल्याण के लिए गुरुदेव श्री फूल-चन्द्र जी महाराज ने पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि प्रान्तों में भ्रमण करके धर्मो-पदेश दिया।

श्रद्धेय गुरुदेव ने जैन-धर्म के महान सिद्धान्तों व नियमों का विस्तारपूर्वक विवेचन अपनी ओजस्वी वाणी में जन-कल्याण के लिये किया। वह दिव्य मूर्ति केवल उपदेशक ही नहीं वरन् उनमें स्वयं ढली हुई थी।

वर्तमान युग में जो बड़े-बड़े राष्ट्र एक दूसरे का विध्वंस करने के लिए विनाशकारी एटमिक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण एवं परीक्षण करने में प्रयत्नशील हैं, यदि वे इन महापुरुषों के उपदेशों का ग्रहण करें, उस एटमिक शक्ति का प्रयोग मानव-कल्याण के लिये करें, तो विश्व के समस्त प्राणी स्वतन्त्र एवं शान्ति पूर्वक अपने जीवन को श्रेष्ठतम, उच्चतम तथा महानतम बना सकते हैं और समस्त सुख-निधियों को सहज ही प्राप्त कर सकते हैं।

जीवन की सुन्दरी उषा का प्रत्येक किरण विन्यास बहुरंगी सन्ध्या में विलीन होता है। अतः जन-जीवन को आलोकित करने वाली वह दिव्य ज्योति भी संवत १९२? में वैशाख पूर्णिमा के दिन आगरा (लोहामण्डी-जैन-भवन) में संथारावस्था में विलीन हो गई।

हम ऐसे महापुरुषों की जीवन-ज्योति से यदि एक किरण भी ले लें, उनके पावन उपदेश सुधा-सिन्धु से एक बिन्दु भी ग्रहण करलें, तो यही हमारी उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि और पुनीत सेवा होगी।

★

श्री पूज्य रत्नचन्द्र जी महाराज

कु० सावित्री जैन कक्षा नवम

श्री पूज्य रत्नचन्द्र जी के पिता का शुभ नाम गंगाराम जी था। और माता का नाम सरूपा देवी था। गंगाराम जी का जन्म-स्थान पंजाब प्रान्त में सिवाय ग्राम के समीप तालीमा नामक ग्राम में हुआ था। उस ग्राम में गंगाराम जी चौधरी कहलाते थे। गाँव के सब लोग आदर भाव और विनय की दृष्टि से आपको देखते थे।

चौधरी गंगाराम जी की धर्मपत्नी श्रीमती सरूपा देवी थी जो एक उच्च कुल में पैदा हुई थी। नाम के अनुसार सौन्दर्य और शालीनता ने ग्राम की सभी स्त्रियों को जीत लिया था। आपके पति-व्रत का प्रभाव ग्राम की अन्य वधुओं पर खूब पड़ा था।

कुछ दिन बाद सरूपा देवी की कुक्षि से सं० १ ५ भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशी के दिन शुभ लग्न में रत्नों के समान आभा और चन्द्र द्युति को भी मात करते हुए पुत्र रत्न का जन्म हुआ। माता पिता ने अपनी कुल-रीति के अनुसार जन्मोत्सव किया और श्रेष्ठ परिजनों के आदेशानुसार पुत्र का नाम "रत्नचन्द्र" रखा।

काल बड़ा परिवर्तनशील है। प्रत्येक वस्तु अपने स्वभावानुसार कालवश परिवर्तित होती रहती है। यह मनोहर बालक दिनों-दिन वृद्धि को प्राप्त होने लगा। छोटे पन से ही यह हँसमुख तथा निर्भीक था। प्रत्येक स्त्री-पुरुष इन्हें खिलाने की चाह में रहता था। जन्म से तो सुन्दर थे ही लेकिन ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती जाती है वैसे ही शरीर में स्पष्टता आ जाती है। सब कोई कहते थे कि बालक बड़ा होनहार है। यह तो कोई वैभवशाली अनोखा या महात्मा। उन लोगों की भविष्यवाणी वास्तव में माननीय थी। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'

सुनते हैं कि जब ये दो वर्ष के थे तब एक बड़ी आश्चर्यकारी घटना हुई। ये बालभाव में अबोध बच्चे की तरह माँ के पास बैठे हुए खेल रहे थे। अचानक एक भयंकर बिच्छू निकल आया। इन्होंने भय से नहीं किन्तु निवारण की इच्छा से माँ का पल्ला खींच कर उंगली से इशारा किया "ऊँह ऊँह" माँ ने तुरन्त बालक की मर्जी उस तरफ को देखकर गले से लगा लिया।

यह पढ़ने में बहुत तेज थे। जब यह पढ़ते तो सब बालक इनके पास आ जाते थे। यह अपने माता-पिता की आज्ञा मानते थे तथा वह इनके पूर्ण भक्त थे।

इनकी एक घटना यह भी है कि जब यह १२ वर्ष के थे तो पिता की आज्ञा से यह वन में गायें लेकर चराने गए, वहाँ पर शेर ने अचानक आ घेरा। उस समय बड़े असमंजस में पड़ गए और गायों की रक्षा में अपने को असमर्थ पाकर अपने बचाव के लिए पास ही एक वृक्ष पर चढ़ गए। गायें शेर से

लडने लगी । लडते-लडते वह भाग गए । जब यह पेड से उतर कर ढोर की खोज मे गए तो न पाने पर वह हताश होने पर सोचने लगे कि पिता ने मुझे इनकी रक्षा के लिए भेजा था । मैं इनकी रक्षा न कर सका । हाँ, मैं कैसा कुपुत्र हूँ । जब मैं पिता के कथन को पूर्ण नहीं कर सका, तब मेरा जीवन व्यर्थ ही है । इस प्रकार उनके हृदय मे अनेक विचार आए कि अब मेरा घर जाना उचित नही है । यह सोच कर वे उसी समय नारनौल की ओर चल पडे ।

वहाँ जाकर इन्होने अनेक साधुओ को देखकर विचार किया कि मैं भी घर छोड कर साधु हो जाऊँ, यह बात उन्होंने अपने मन मे ठान ली थी । जब यह बात उनके माता पिता के पास पहुँची तो यह बहुत दु खी हुए । लेकिन उनके न मानने पर दीक्षा के लिए तैयार हुए । जब इनकी शुक्रवार के दिन दीक्षा का होना निश्चित हुआ । दीक्षा दिवस को अब सात दिन रह गए तो गृहस्थी वर्ग जन सात दिन तक वान बैठी । छटवे दिन महदी रचाई गई और रात्रि का जागरण किया गया । जब मनुष्य ससार को छोड रहा है प्रत्येक वस्तु उसके लिए हेय है । पुन सातवें दिन शहर मे जलस निकाला गया । कहते हैं कि जलूस इतना भारी था कि लोग अनुमान करते हैं कि आत्म-शक्ति का यह प्रथम ज्वलन्त उदाहरण था । हाथी के ऊपर बैठे हुए आप स्पष्ट जतला रहे थे कि अज्ञान रूपी हाथी को कुचल कर इसी तरह ससार मे नेतृत्व करूँगा । अन्त मे जलूस समाप्त हुआ । जनता एक पडाल मे आकर बैठ गई । सभी का हृदय हर्षोन्माद से भर रहा था । इधर शास्त्रोक्त रीति से उबटन, विलेपन आदि किया समाप्त होने पर हल्दी के शुभ चिन्हो से वस्त्र धारण कर रजोहरण तथा पात्रो समेत पडाल मे जाकर आपको गुरमहाराज के सम्मुख उपस्थित किया गया, सभी आवश्यक क्रिया होने पर जय ध्वनि के बीच महाराज जी ने केश लुञ्चन किया । इस प्रकार विक्रमाब्द १८६२ भाद्रपद शुक्ल ६ शुक्रवार को (करेमि भते) के पाठ से दीक्षा ग्रहण की ।

उन्होंने इसके बाद स्थान-स्थान पर भाषण दिया तथा शिक्षा का उपदेश दिया । इनकी मीठी वाणी का जनता के ऊपर बहुत ही प्रभाव पडा । समाज ने उनके नाम पर लडके एव लडकियो की शिक्षा प्राप्ति के लिए एक स्कूल खुल वाया, जिसका नाम "श्री रत्नमुनि जैन इन्टर कालेज" रत्न मुनि रोड के नाम से आगरे भर मे प्रसिद्ध है ।

वैशाख शुक्ला अष्टमी को स्वर्गवास से आठ दिन पूर्व । चतुर्विध श्री सघ की साक्षी से अन्तिम आलोचना और सबको क्षमापना करके एव जैन श्री सघ के लिए आत्म कल्याण का सन्देश देकर महाप्रयाण के लिए तैयार हुए एव वै० सु० १२ को यावज्जीवन का परिपूर्ण अनशन (सथारा) लेकर समाधि भाव के साथ वैशाख शुक्ला पूर्णिमा (वै० सु० १२) स० १९२१ को स्वर्गवास प्राप्त किया एव अन्तिम समाधि मे लीन हुए ।

★

भारतीय संस्कृति का सजग प्रहरी

श्रीमती सरला भदौरिया एम० ए० विद्यालंकार साहित्य-रत्न

भारतीय संस्कृति हृदय और बुद्धि की पूजा करने वाली उदार भावना और निर्मल ज्ञान के योग है जीवन में सुन्दरता का मंत्र बैठाकर संसार में मधुरता का प्रचार करने वाली है। भारतीय संस्कृति का अर्थ है धर्म ज्ञान और भक्ति की जीती जागती महिमा—शरीर बुद्धि और हृदय को सतत सेवा में लीन करने की महिमा। भारतीय संस्कृति का ध्येय है सान्त से अनन्त की ओर जाना अन्धकार से प्रकाश की ओर जाना भेद से अभेद की ओर जाना कीचड़ से कमल की ओर जाना विरोध से विवेक की ओर जाना और अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर जाना।

भारतीय संस्कृति के सजग प्रहरी हैं—सन्त एवं मननशील मुनि। मुनि चाहे किसी भी सम्प्रदाय का हो उसकी वाणी में भारतीय संस्कृति का ही स्वर मुखरित होता है। उसके विचार स्वच्छन्द पक्षी की तरह उन्मुक्त होकर असीम आकाश में विचरण करते हैं। वह बँध कर भी नहीं बँधता रुककर भी नहीं रुक सकता वह सतत गमनशील है। उसकी गति 'सत्यं शिवं सुन्दरं' का अन्वेषण करती है। भारतीय संस्कृति गतिशील है। अतः उसके प्रहरी भी गतिशील होने चाहिए। कुछ कल्पनानाथ बुद्धिमान मनुष्य किसी भी फल के लिए आग्रह नहीं करता। श्रीकृष्ण ने अन्त में अर्जुन को यह कह कर कि 'यथेच्छसि तथा कुरु' उसकी बुद्धि को महत्त्व दिया। इसी तरह मुनि भी अपने विचारों को प्रकट कर देते हैं चाहे उन्हें कोई सुने या न सुने। वह बार-बार कहते हैं – अपनी आत्मा का अपमान मत करो। अपनी बुद्धि का सदा मत खोओ।

गुरुप्रवर श्री एलचन्द्र जी भी भारत के उन मननशील मुनियों में से एक थे जिन्होंने 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' इस शाश्वत परम्परा के आधार पर ही स्वयं आत्मज्ञान की ज्योति अन्तर में प्रज्वलित कर जनता को भी उसी ज्योति से ज्योतिर्मय किया। आपने अन्धकारावृत मानवों को उबारा। सूर्य किरणों की जिस प्रकार सबको आवश्यकता होती है उसी प्रकार ज्ञान की किरण की भी सारे प्राणियों को आवश्यकता रहती है। ज्ञान का कुछ लोगों की जागीर बन जाना घोर अन्याय है। आपने इसका विरोध किया और दिया अमर सन्देश—मानव तू बढ़ चल सतत प्रकाश की ओर शाश्वत ज्योति की ओर।

आपने अपनी विचारधारा को जनता की बोली का माध्यम बना सर्वत्र प्रसारित किया। आपके विचार तलवार की धार से भी तीव्र थे। आपकी आवाज अटल हिमाचल से लेकर कन्याकुमारी तक जा टकराई। आपकी स्वच्छ लहरी मरुस्थल के मरुथली से प्रवाहित होकर भी सर्वत्र प्रसारित होती गई। आपने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त को अपनाया। मानव मानव समता की अध्यात्म नाड़ी को पकड़ा। बाह्य भेदों को दूर किया। मानव के कष्टों को देख आप ने एक तथा सर्व धर्म समान का नारा लगाया।

हृदय तन्त्री झनझना उठी तब आपने अपनी चिन्तन-धारा को गहन एव विराट बनाया। आपने जनता की श्रद्धा व भक्ति का मुख मोड़ा जो पण्डितो से हटकर साधु-चरणो मे आ गिरी।

इन सन्त वीर के चरणो मे गिरता रहता है काल स्वय। यह सब आपने अपनी प्रतिभाशालिनी बुद्धि या विवेक का सम्बल लेकर किया। आपका कीर्ति-वितान शीघ्र ही ऊँचा उठा और फिर सवत्र फैल गया।

जिन महान आत्माओं ने अपने जीवन को त्याग एव सयम की दीप्ति से दीपित किया, जिनकी रग-रग मे मानव-कल्याण का अजस्र स्रोत प्रवाहित होता रहा, उन्ही महान आत्माओ मे से एक पूज्यपाद गुरुप्रवर रत्नचन्द्र जी महाराज थे, जिनकी विशालता का कितना सुन्दर प्रमाण है। एक बार आपने जैसलमेर जाने की इच्छा प्रकट की। भक्त-जनो ने वहाँ न जाने की आपसे विनम्र प्राथना की क्यो कि वहाँ के पण्डितो मे ज्ञान-गव कूट-कूट कर भरा था, इसलिए भक्त गण अपमान की आशका से वहाँ आपको नही जाने देना चाहते थे, पर सन्त, जिसने निश्चय कर लिया उसका निश्चय नही बदला जा सकता। अपमान, प्रताडना, उपहास, दु खादि द्वन्द्वो के कारण कभी सन्त की गति रुक नही सकती। द्वन्द्व तो साधक के जीवन मे निखार लाते हैं। पूज्य गुरु जी ने उत्तर दिया—साधु कभी कत्तव्यच्युत नहीं हो सकता। केवल मैं ही नही, पर जिसके हृदय मे एक लघु कण भी शान्त एव समता सागर की धारा मे बहा हो, वह क्या ससार मे तिरस्कार से डर सकता है ? यही परीक्षा का दिन है। मुझे अवश्य वहाँ जाना चाहिये। वस्तुत कितना श्लाघनीय उत्तर था। निभय होकर आप वहाँ गये और वहाँ जाकर आपने अपने प्रवचनो का ऐसा क्षीर-निधि लहराया, जिसमे जनता, भेद-भाव को भूलकर, आनन्दमग्न हो, डुबकियाँ लगाने लगी। ऋषि कहते हैं—जो सबको अपने पास लेता है, उसके पास सर्व तीर्थ हैं।

सागरे सर्वतीर्थानि

इस प्रकार आपने जैन दशन का वाद्य बजाया। आपने सवज्ञ ज्ञान की प्याऊ खोल दी, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपनी ज्ञान-पिपासा सन्तों के समीप जाकर शान्त कर सकता है। वशिष्ठ ऋषि कहते है **"उपैमि चिकितुषेजनाय"** मेरी क्या भूल हो गई है यही पूछने के लिए मैं विद्वान आलोचक के पास जाता हूँ। समाज मे ऐसे महात्मा है, उनकी सलाह लेते रहो।

देव रोकडा सज्जनी

सज्जनो के पास साक्षात ईश्वर ही है।

पूज्य गुरु रतनचन्द्र जी साधना पथ के अविश्रान्त पथिक थे। कतिपय सीमित वस्त्रो मे सर्दी की सनसनाती हुई बर्फीली रातें अपने साधना के बल से हँसते हुए बिता डालते थे। कभी कम्पन नही, कभी कही स्खलन नही, एक अटल सैनानी की भाँति अपने कतव्य पथ पर अडिग हो कष्टमय माग पर चल कर साध्य की ओर बढते गये। अपनी तपस्या और प्रेम मे सन्त समाज को धारण करते हैं। **"सन्त तपसा भूमि धारयन्ति।"**

आप उस मिलन बिन्दु पर खड़े थे जहां एक ओर से त्याग दूसरी ओर से वैराग्य तीसरी ओर से साधना और चौथी ओर से सिद्धि आकर अपने अपने अस्तित्व को पूज्य गुरुदेव के चरणों में अर्पित करती थी। किंबहुना आप गुणों के सागर थे। क्या कोई समुद्र के जलबिन्दुओं की गणना कर सकता है? आपने अपने जीवन को ब्रह्मचर्य की आग में तपा कर कुन्दन के समान बनाया और उस आग में अनन्तकाल से आत्मा के साथ चिपटा हुआ कर्मफल जल कर भस्म हो गया। स्वार्थ का त्याग कर आपने परमार्थ का बाना पहना वासनाओं के घोर विष को दूर फेंका हंस की तरह समस्त दर्शनों के तत्वों के सार को ग्रहण किया।

इस प्रकार प्रेम से जगमगाता महात्मा जब समाज में खड़ा होता है तो सारा समाज जगमगाए बिना नहीं रह सकता। जनता उसके प्रभाव से प्रभावित होती है। जिस प्रकार कोई बड़ा वृक्ष धीरे-धीरे तपस्या में बढ़ता है उसमें फल-फूल आते हैं फिर हवा आती है और दशों दिशाओं में उसके बीज फैला देती है और चमन के चमन खड़े हो जाते हैं उसी प्रकार एक दिव्य भव्य सत्य का प्रयोग करने वाला व्यक्ति भी खड़ा रहता है उसके प्रबोध के बीज लाखों हृदयों में बढ़ते हैं फिर उसी प्रेम के लाखों उपासक एकत्र हो जाते हैं। क्योंकि मानव सत्यमय है उसकी आत्मा का नैसर्गिक स्वभाव जागृत होता है उसके हृदय में मंगल की आवाज सुनाई देती है। हृदय शुद्ध है प्रेम का चन्द्रमा चमक रहा है वासनाएँ समाप्त हैं मन एक है आसक्ति द्वेष मत्सर और अहंकार आदि का शमन हो चुका है उसी समय स्वर लहरी गूंज उठती है उस वाणी को सुन किसका हृदय आनन्द के सागर में हिलोरें लिए बिना रह सकता है? अन्तर-बाह्य एकता होनी चाहिये। जब तक काम-क्रोधादि के नगाड़े बजेंगे तब तक वह स्वर लहरी सुनाई नहीं देगी। अतः पहले हम बाह्य प्रवृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाना है। सन्त कमल के समान माया रूपी कीचड़ से लिप्त रहते हुए भी अलिप्त होते हैं। भारतीय संस्कृति में इन सन्तों के लिये अत्यन्त आदर की भावना है।

काल अनन्त है, ज्ञान भी अनन्त है। नए-नए ज्ञान का उदय हुआ और भारतीय संस्कृति सबसे पहले उसका सत्कार करने के लिये खड़ी रहेगी। यह महान-विभूतियाँ ही भारतीय संस्कृति की प्रहरी हैं, जब-जब भारतीय संस्कृति में परिवर्तन की आँधियाँ आती हैं प्रचण्ड क्रान्तियाँ होती हैं। ये जागरूक प्रहरी ही उन आघातों को झेलते हैं। इसी कारण भारतीय संस्कृति का देदीप्यमान दीप काल के प्रबल आघातों से मन्द भले ही पड़ जाए, पर वह बुझ नहीं सकता। परम्परागत सन्तों की विचार ज्योति से आज भी ज्योतिष्मान है। इसका श्रेय है इन सतत जागरूक प्रहरियों को।

सूर्य तो अस्त होकर अगले दिन फिर भी हमें दृष्टिगोचर होगा चन्द्रमा भी आकाश में पुनः दिखाई देगा। पर वह सत्पुरुषों में अग्रणी भद्र व पूज्यवर गुरुदेव एक बार गए हुवे पुनः हमारे नेत्रों का विषय न होंगे अर्थात् उनके दर्शन न होंगे। यद्यपि वह यश शरीर से अब भी विद्यमान हैं और आज उनकी शताब्दी मनाना तभी सफल है जब हम उनके गुणों में से किसी एक गुण का अंश मात्र भी ग्रहण कर सकें। बस इन्हीं अल्प शब्दों के साथ मैं भी जीवन रणाङ्गण में साहसिक योद्धा महान् भारतीय संस्कृति के सजग प्रहरी के पावन चरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती हूँ।

★

पूज्यवर गुरुदेव : एक पुण्य स्मरण

कुमारी सुषमा पाठक, कक्षा—१२

अवतार, पैगम्वर, मन्त्र दृष्टा आदि मे आद्या शक्ति विश्व जननी का प्रादुर्भाव इतने असाधारण रूप मे होता है कि वे हमको अति मानव जैसे प्रतीत होते हैं। प्राकृत मानव के साथ उनका कोई निकट का साम्य, कोई साम्य भूमिका देखने मे नही आती है। किसी विद्युत्पात की भाँति वे पृथ्वी पर आते हैं। मानव जीवन मे क्रान्तिकारी परिवतन करके एक शिल्पी की भाँति उनके जीवन मे काट-छाँट करके वे अदृश्य हो जाते हैं। परलोक प्रयाणोपरान्त उनके स्थान की पूर्ति असम्भव हो जाती है। ऐसी अवतार विभूति मेघमाला सदृश सम्पूण पृथ्वी पर अपनी शक्ति सिंचन कर जाती है। इस चैतन्य दृष्टि के पश्चात जीवन पुन शुष्क प्राय हो जाता है, शस्य-श्यामला भूमि मे दुर्भिक्ष फैल जाता है, इस दुर्भिक्ष से, त्रस्त मानव-जाति नवीन अमृत-वृष्टि के लिये आत हृदय से पुकारती है। इस पुकार को सुनकर जो नव्य-विभूति जन्म लेती है, वह विश्व-वन्दनीय, पूज्यनीय एव अनुकरणीय होती है।

ऐसी ही वन्दनीय विभूतियो मे से एक हैं पूज्य गुरुदेव रत्नचन्द्र जी महाराज जिनकी स्वर्गारोहण शताब्दी सम्वत् २०२१ मे वैसाखी पूर्णिमा के दिन मनाई जाएगी। पूज्यपाद गुरुदेव अमर भारतीय सस्कृति के उद्गाता एव सजग प्रहरी थे। उन्होने सवजन सुखाय का विशाल उद्देश्य अपने समक्ष रख कर अपना सवस्व मानव जाति के उद्धार के लिये समर्पित कर दिया।

जीवन-परिचय

भारतीय सस्कृति के महान अधिनेता श्री रत्नचन्द्र जी का जन्म सम्वत् १८५० मे जयपुर राज्य के तातीजा ग्राम मे हुआ था। आपके पिता श्री गगाराम जी तथा माता श्रीमती स्वरूपा देवी थी। इस तातीजा निवासी दम्पत्ति के और भी सतान थी परन्तु उनका सवसे छोटा और प्रिय पुत्र था—'रत्नचन्द्र'।

रत्नचन्द्र जी का जीवन सुखद और शान्त था। माता-पिता की स्नेह एव वात्सल्यमयी छाया प्राप्त थी। रूप और बुद्धि सम्पन्न होने के अतिरिक्त उनमे चिन्तन की अद्वितीय क्षमता भी विद्यमान थी।

अव तक आपन प्रकृति की उन्मुक्त सुषमा के ही दर्शन किए थे किन्तु यह तथ्य भी पूणत सत्य है कि जीवन की वास्तविकता का ज्ञान अनायास ही होता है। इसके अनुसार किशोर अवस्था मे एक जगल मे एक स्वस्थ एव सुन्दर बछडे पर सिंह आक्रमण के द्वारा उन्हे इस तथ्य का पूर्णरूपेण ज्ञान प्राप्त हुआ कि ससार नश्वर है और मृत्यु एक फाख्ते के समान मानव के ऊपर प्रतिक्षण मँडराती रहती है और क्षण भर मे उसे उदरस्थ कर लेती है। यही से आपके वैरागी जीवन का सूत्रपात हुआ और वह जन्म, जीवन और मरण पर विचार करते हुए सद्गुरु की खोज मे निकल पडे और इसी खोज मे नारनौल

नगरी पहुँचे। वहाँ आपने धर्म स्थानक में तपस्वी हरजीमल जी महाराज के दर्शन किए और उनके शिष्य हो गए। पितानुमति प्राप्त कर तथा माया मोह के बन्धन को तोड़कर तपस्वी हरजीमल जी द्वारा सम्वत् १८६२ में दीक्षित हुए।

रत्नचन्द्र जी में बाल्यकाल से ही ज्ञान प्राप्ति की उत्कट लालसा थी अत उस युग के विख्यात तत्ववेत्ता पण्डितप्रवर श्री लक्ष्मीचन्द्र जी महाराज की सेवा में दीर्घ काल तक रह कर धर्म दर्शन और ज्योतिष शास्त्र के गहन विषयों का अध्ययन और मनन किया और संस्कृत तथा प्राकृत जैसी प्राचीन भाषाओं में पाण्डित्य प्राप्त किया और तत्कालीन समाज में व्यवहृत होने वाली जन-भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार बहु भाषाओं के धनी थे।

धार्मिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी के रूप में

गुरु द्वारा ज्ञानार्जन करके तथा चिन्तन द्वारा परिपक्व होकर आपने अपने ज्ञान को सर्वजनहिताय जन समुदाय के समक्ष प्रस्तुत किया। और इस ज्ञान के द्वारा ही वह धर्म प्रचार में तत्पर हो गए। अपने प्रयत्न द्वारा धर्म के नाम पर होने वाली पशु-बलि का निषेध किया। सुरा की कुछ बूँदों से पाकिल हो वासना की झनकार में आसक्त रहने वाले मानव समुदाय को नव्य चेतना प्रदान कर सुरा-सुन्दरी के घोर को अवरुद्ध किया। आपका हृदय विवेकपूर्ण था तथा वाणी में ओज था। अत जो कुछ कहते वे साधिकार कहते थे। जिसके परिणामस्वरूप तत्कालीन समाज में एक नवीन क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित हुआ। गुरुवर रत्नचन्द्र जी के धर्म प्रचार के परिणामस्वरूप अनेक नवीन क्षेत्रों का निर्माण हुआ। आगरा स्थित लोहामण्डी हाथरस जलेसर हरदुआगंज आदि क्षेत्र आपके अथक परिश्रम के सुपरिणामस्वरूप हैं।

अध्यापक के रूप में

एक कुशल अध्यापक के रूप में आपने अनेक ज्ञान-जिज्ञासुओं की जिज्ञासा शान्त की। आपने अनेक श्रावकों साधु एवं साध्वियों को समय-समय पर शास्त्राध्ययन कराया। पंजाब के सुप्रसिद्ध सन्त पूज्य श्री अमरसिंह जी महाकवि नन्दलाल जी एवं आत्माराम जी आदि अनेक विद्वान आपकी शिष्य परम्परा के अन्तर्गत आते हैं।

भविष्यद्रष्टा

गुरुजी एक महान भविष्यद्रष्टा थे उनके चिन्तन-चक्षुओं के समक्ष शुभाशुभ भविष्य पूर्णत स्पष्ट प्रतिभासित होता था। आपने अपनी इसी क्षमता के आधार पर अपनी मृत्यु-तिथि "वैशाख शुक्ला १४ रविवार, दिन के दो बजे" घोषित कर दी थी जो पूर्णत सत्य सिद्ध हुई।

विशिष्ट गुणों के आगार

गुरुदेव रत्नचन्द्र जी अनेक गुणों के निधान थे। वह विनय की प्रतिमूर्ति थे। विनय गुण के कारण ही विशेष रूप से मनुष्यों द्वारा वन्दनीय हुए। वह सत्ता से पूर्णत निर्लिप्त थे। उनका विश्वास था कि मानव धर्म के द्वारा ही उच्च बन सकता है सत्ता द्वारा नहीं। इसीलिए उन्हें सत्ता से लगाव न था।

एक काव्यस्रष्टा के रूप में

पद रचना के द्वारा आपने जिन स्तुति, सती स्तवन, आत्मा सम्बन्ध वैराग्य, बारह भावना, बारह मासा आदि पर कुछ आध्यात्मिक पद लिखे हैं। कुछ छन्द बद्ध चरित भी हैं जिनमें "सुखानन्द मनोरमा चरित" सुन्दर एवं विस्तृत कृति है। इस प्रकार गुरुदेव की काव्य प्रतिभा भी सराहनीय है।

साहित्यस्रष्टा

श्री रत्नचन्द्र जी महाराज अपने समय के एक महान साहित्यस्रष्टा थे, जिनकी कृतियों ने उन्हें अमर बनाने में योगदान दिया। आपने अनेक ग्रन्थों की रचना अपनी बहुमुखी प्रतिभा के आधार पर की है। उनमें से प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—नव तत्त्व, मोक्ष मार्ग प्रकाश और गुण स्थान विवरण। यह रचनाएँ उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य की प्रतिनिधि कृतियाँ हैं।

उनके द्वारा प्रणीत चर्चा साहित्य उनकी प्रखर तर्क शक्ति की अभिव्यक्ति है।

अन्तिम सन्देश

मृत्यु सम्बन्धी भविष्यवाणी के अनुसार विक्रम संवत् १९२१ में वैशाख शुक्ला १२, बुधवार को संथारा ग्रहण किया और अपने भक्तों को निम्नोद्धृत अन्तिम सन्देश देते हुए इस नश्वर संसार को त्याग कर सदा-सदा के लिये अमर हो गए। उनका सन्देश था—"आप सब लोग धर्म की भावना करते रहना। अपनी श्रद्धा को शुद्ध और पवित्र रखना। अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म को जीवन में उतारते रहना। परस्पर प्रेम भाव से रहना। अपने धर्म, दर्शन और संस्कृति का प्रसार तथा प्रचार करते रहना। अपनी आत्मा को पावन और पवित्र रखने के लिये वीतराग मार्ग पर अग्रसर होते रहना। तुम अपने धर्म की रक्षा करना और धर्म तुम्हारी और तुम्हारी संस्कृति की रक्षा करेगा।"

ऐसे अमर सन्देश की दात्री अमर विभूति यद्यपि शरीर से हमारे मध्य नहीं है तथापि अपने विशाल कृतित्व एवं व्यक्तित्व से सदैव अमर रहेगी। ऐसी महान आत्मा के धारक पूज्यवर गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी युग-युगान्तर तक वन्दनीय, अनुकरणीय एवं स्मरणीय रहेंगे।

★

सामाजिक क्रांति में महिलाओं का योग

कु० उर्मिला रावत एम ए पी डी 'सरस्वती'

आज का युग क्रान्ति का है जिसका कार्य है पहले ध्वंस फिर निर्माण। हमारी विकृत धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्थाएँ प्रौढ़ शरीर में बाल्यकाल के आभूषण की भाँति कष्टदायक हो रही हैं तथा हम निर्णय नहीं कर पा रहे हैं कि आभूषण का निर्माण शरीर के अनुरूप हो अथवा शरीर का आभूषण के अनुसार। आज का युग जिसकी गति वेगवती सरिता के समान प्रवाहमान है उसका पीछे लौटना संभव नहीं है। अतः देशकाल और परिस्थिति के अनुकूल हमें हमारी प्राचीन समाज की व्यवस्थाओं में कुछ न कुछ परिवर्तन और संशोधन करना आवश्यक प्रतीत हो रहा है। इस क्रान्ति में विदुषी महिलाओं का उत्तरदायित्व और भी बढ़ गया है। क्योंकि पक्षाघात से पीड़ित तथा निस्पंद समाज के एक अंग महिला समाज में स्पन्दन करने के लिए विदुषी महिलाएँ ही समर्थ हो सकती हैं। इसके लिए विदुषी महिलाओं को सर्वप्रथम जगत में क्रान्ति का वातावरण उत्पन्न करना है जिससे समस्त महिला जगत सामाजिक क्रान्ति में योग दे सके।

यद्यपि पुरुष समाज में क्रान्ति लाने एवं कुरीतियों को दूर करने के लिए धाराप्रवाहिक प्रवाह में भाषण देता है सुधार की योजना बनाता है तथापि उस अवसर पर समाज की प्रकृति से अनभिज्ञ उसकी माँ बहिन और पत्नी के आँसू उसके जोश को गरम दूध पर डाले गए ठंडे छींटों के समान शान्त कर देते हैं। अतः सर्व प्रथम महिला जगत में क्रान्ति लाना आवश्यक है।

महिला जगत की अधोगति के प्रमुख कारण हैं रूढ़ धर्म में अन्धभक्ति और मिथ्या आदर्शवाद में आसक्ति। यद्यपि धर्म जीवन की उन्नति का प्रमुख साधन है परन्तु वही धर्म न्याय और सत्य के विकृत रूप को अपना लेने पर नष्ट करने का सर्वोत्तम अस्त्र बन जाता है। जिस धर्म ने सुकरात महात्मा गांधी और भक्त गुरुदेव रत्नचन्द्र जी महाराज जैसे सन्त महात्माओं की सृष्टि की उसी के विकृत रूप ने विष देने वाले एवं गोली चलाकर हत्या कर देने वाले निष्ठुरों को भी उत्पन्न किया।

पर्याप्त समय से भारतीय नारी को शास्त्रों से अपरिचित रखा जा रहा है। इस कारण उसके शरीर की रग-रग में इतनी धर्मभीरुता समा गई है कि वह शास्त्र के नाम से कहे गए किसी भी वाक्य से मना करके अपने सिर पाप का भार नहीं चढ़ाना चाहती। वृद्ध रोग वश जड़ धन हीना — जैसे सिद्धान्तों में उसकी अन्ध श्रद्धा है। किन्तु प्रत्येक सिद्धान्त का अपवाद होना भी आवश्यक है। यह उसके लघु मस्तिष्क की परिधि से बाहर का विषय है। पति की सहधर्मचारिणी होना उसका कर्तव्य है, परन्तु यदि पति सुरासेवी है कुपथगामी है उसका सुधार करना ही उसे सहधर्मचारिणी बना सकेगा। यह वह स्वप्न में भी नहीं विचार कर सकती है।

उसका आदर्शवाद भी सकीर्ण है, क्योकि उसे ज्ञात है कि यह युग के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। एक युग मे पतिव्रत का आदर्श सीता मे प्रकट हुआ तो दूसरे युग मे कुन्ती मे। शौर्य-प्रधान युग के आदर्श राम थे तो अहिंसा-प्रधान युग के महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर।

इस दृष्टिकोण के अनुसार स्त्रियो की विचारधारा मे परिवर्तन लाना आवश्यक है, जिससे कि वे अपनी समस्याओ को स्वय सुलझा सकें। क्योकि अभी तक भारतीय नारी अपने कष्टों को त्याग और तपस्या का रूप समझे बैठी है। इस कारण इस क्षेत्र मे क्रान्ति लाने के लिए विदुषी महिलाओ को आधुनिक समस्या से सम्बन्धित साहित्य का निर्माण करना चाहिए। तथा शिक्षा के प्रचार मे भी सहयोग देना चाहिए। श्रद्धेय मुनि श्री रत्नचन्द्र जी ने जिनकी पुण्य शताब्दी मनाने का आयोजन किया जा रहा है, अपने युग मे नारी शिक्षा पर बहुत अधिक बल दिया था। नारी जीवन के विकास के लिए उन्होंने अनेक प्रयत्न भी किए थे।

विदुषी महिलाओ को यह भी सोचना चाहिए, कि जिस पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से हमारी विदुषी महिलाएँ विलासप्रिय और गृह-कार्य से विमुख हो रही है, उसी शिक्षा को प्राप्त करके पश्चिमी देश की महिलाओ ने सगठित होकर अपने देश की सामाजिक क्रान्ति मे पूर्ण योग दिया था। साथ ही विलास की सामग्रियो मे जो धन नष्ट होता है, उसके सचय से विदुषी महिलाएँ अन्य बहिनो के कष्टो को दूर कर सकती है। साथ ही अशिक्षित अथवा अर्द्धशिक्षित महिलाएँ यदि रूढिग्रस्त हैं, तो विदुषी भी विदेशी कृत्रिमता की दासता से बँधी हुई हैं। अत जो स्वय बन्धन मे है, उससे दूसरे की मुक्ति की आशा एक दुराशा मात्र है। तथा स्वय भटके हुए व्यक्ति से अन्य पथभ्रष्ट को उचित मार्ग पर लाने की इच्छा रखना उपहास है।

इस क्रान्ति के युग मे विदुषी महिलाओ का कर्तव्य अपनी अन्य बहिनो को सन्मार्ग पर लाना ही सामाजिक क्रान्ति मे सहयोग देना है। इसके अतिरिक्त विदुषी महिला महाविद्यालय अथवा प्रशिक्षण महाविद्यालयो के कार्यो को अपने हाथ मे ले सकती हैं। नगर महापालिका की सदस्या बनकर अथवा अध्यक्षा (चेयरमैन) बनकर देश के स्वास्थ्य सुधार सम्बन्धी तरह-तरह के अन्य हितकारी कार्य कर सकती हैं। देश की वर्तमान सकटकालीन अवस्था मे सैनिक शिक्षा देने के लिए महिला सैनिक प्रशिक्षण केन्द्रो की स्थापना कर सकती हैं। क्योकि केवल पुरुषो से महिला केन्द्रो का सुप्रबन्ध होना कठिन है। स्त्रियो को गृह विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान और शिशुपालन की शिक्षा दे सकती हैं। इसके अतिरिक्त अपने बालको की शिक्षा का भार केवल स्कूल और गृह शिक्षक के ऊपर न छोड कर स्वय भी उन्हे शिक्षा देना तथा समाज की कुरीतियो को यथाशक्ति सुधारने का प्रयत्न करना, महिला समाजो की स्थापना करना स्त्रियों और बालको के लिए पुस्तकालय स्थापित करना, पत्रिका निकालना और ऐसे कार्य हैं, जिन्हे विदुषी महिलाएँ ही कर सकती हैं।

इस दृष्टिकोण से विदुषियो पर महान उत्तरदायित्व है, परन्तु हमे विश्वास है कि वह अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण सफलता से वहन कर लेंगी, क्योकि भारतीय नारी जहाँ एक ओर अबला जीवन नाम से सम्बोधित है, तो दूसरी ओर प्राचीन सस्कृति मे सरस्वती के रूप मे ज्ञान की अधिष्ठात्री, लक्ष्मी के रूप मे ऐश्वर्य की दात्री, भवानी के रूप मे शक्ति के रूप उसका उत्तरदायित्व चरम सीमा पर पहुँच चुका है। उसकी तुलना मे आज का उत्तरदायित्व कुछ भी नही है। अत वह पूर्णतया समर्थ है।

★

गुरुदेव का जीवन-परिचय

कु. सुन्दर जैन कक्षा ८ ब

भारतीय संस्कृति में सन्त जीवन बहुत ही पावन और पवित्र माना गया है। सन्त का जीवन त्याग वैराग्य और विवेक का जीवन होता है। जन-चेतना को सही दिशा की ओर ले जाना यह सन्त का मुख्य ध्येय होता है। वह अपने तप और जप से जिस शक्ति का अर्जन करता है उसे वह जन-कल्याण के लिए अर्पित कर देता है।

पूज्य गुरुदेव रत्नचन्द्र जी महाराज अपने युग के एक परम योगी सन्त थे। अपने अध्यात्म उपदेशों से उन्होंने अपने युग के जन-मानस को बदल डाला था। संक्षेप में गुरुदेव का जीवन-परिचय इस प्रकार से है।

जीवन रेखा

संवत् १८२ में भाद्रमास की कृष्णा चतुर्दशी के शुभ दिवस में एक ज्योतिर्मय आत्मा ने वीर भूमि राजस्थान को अपने दिव्य जन्म से ज्योतित किया। उस ज्योति का नाम था रत्न।

संवत् १८६२ में माघमास की शुक्ला षष्ठी के शुभ दिवस में ज्योतिर्मय रत्न ने जो अपने सुहावने बचपन को छोड़ कर मदमाती किशोर अवस्था में प्रवेश कर चुका था पिता गंगाराम जी और माता सरूपा देवी जी अपने पुत्र रत्न को दीक्षा दिला कर परम प्रसन्न थे।

कर्मक्षेत्र में पदार्पण

महापुरुषों का यह सहज स्वभाव होता है कि वे अपनी कठोर साधना के द्वारा जो कुछ विचार वैभव अर्जित करते हैं उसे समेट कर नहीं बैठते बल्कि उसे जन-जन के कल्याण के लिए सहर्ष समर्पित कर देते हैं। पण्डित मुनि श्री रत्नचन्द्र जी महाराज ने अपनी विशाल ज्ञान-राशि को पंजाब राजस्थान उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के जन-जीवन में महा मेघ के समान हजार-हजार धाराओं में बरस कर बिखेर दिया। बाँट दिया। पूज्यपाद अमरसिंह जी महाराज और मुनीश्वर विजयानन्द जी उनके सुशिक्षित शिक्षा-शिष्य रहे थे।

साहित्य-सर्जना

पूज्यपाद गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी महाराज अपने युग के विख्यात विराट और विशाल विद्वान थे। अभ्यास और अनुभव से परिपक्व उनकी अद्भुत प्रतिभा से अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। उनमें से बहुत से ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं। उनके द्वारा प्रणीत सर्वांग साहित्य उनकी प्रखर तर्क शक्ति की अभिव्यक्ति

शिष्यता मे एक वप तक माधु जीवन की शिक्षा ग्रहण की। आचार-शास्त्र का अध्ययन व साधक जीवन योग्य कुछ बातो के अभ्यास के पश्चात् गुरु ने रत्न की परीक्षा ली व सब प्रकार से उन्हे दीक्षा के योग्य समझ कर विक्रम सम्वत् १८६२ मे भाद्रपद शुक्ला ६ शुक्रवार के दिन उनको नारनौल नगर मे दीक्षा दी। उन्होने प्रेमपूर्वक दीक्षा ग्रहण की तथा दीक्षा के अवसर पर ही उनके पिता व माता तथा अन्य परिजनो ने उन्हे शुभाशीर्वाद प्रदान किया। अब रत्नचन्द्र, रत्नचन्द्र मुनि हो गए। इसके अतिरिक्त दीक्षा ग्रहण करते ही सयम व तप की साधना प्रारम्भ कर दी, क्योकि अपने तपस्वी गुरु से उन्हे तप की विशेष प्रेरणा मिली थी। तप, सयम व सेवा की साधना उन्होने मृत्युपर्यन्त निरन्तर की जो साधु जीवन के विशेष गुण है। तप, सयम, सेवा और विशेष अध्ययन मे परिपक्व होकर व अपने गुरु की आज्ञा से रत्न-मुनि जी ने धर्म-प्रचार प्रारम्भ कर दिया।

गुरुवर का आगम और दर्शनशास्त्र के ज्ञान के अतिरिक्त अन्य विषयो का भी परिज्ञान उच्चकोटि का था। वे भविष्य-दृष्टा, श्रद्धा की अमर ज्योति, विनम्रता की प्रतिमूर्ति व एक महान स्वरसाधक भी थे। विक्रम सम्वत् १९२१ मे वैशाख शुक्ला १२, बुद्धवार को उन्होने सथारा ग्रहण किया तथा वैशाखी पूर्णिमा, शनिवार के दिन, वह अद्भुत प्रकाश-पुञ्ज जो समस्त जन-जीवन को आलोकित कर रहे थे, सदैव के लिए विलीन हो गए। इस प्रकार गुरुवर श्री रत्नचन्द्र जी महाराज ने अपने नश्वर तन को त्याग कर अमर पद प्राप्त किया।

सीखा है मैने यह गाना

(कुमारी इन्दिरा नाहर)

गुरुदेव! तुम्हारे पावन पथ पर, यदि यह ससार चला होता!
तो, इस मानव जीवन का, निश्चय ही कल्याण हुआ होता॥

विश्व प्रेम की गगा बहती, यहाँ हमारे घर-घर मे।
स्नेह भाव की सरिता उठती, आज हमारे जीवन मे॥

जोश न ठडा होने पाए, कदम बढा कर चल रे।
मजिल तेरी सरल बनेगी, आज नही तो कल रे॥

गुरुदेव! तुम्हारे जीवन से, सीखा है मैंने यह गाना।
'जीवन सार्थक बना उसी का, जिस ने सीखा लेकर देना॥"

★ ★ ★

जीवन के कलाकार गुरुदेव रत्नचन्द्रजी

श्रीमती कान्ति सहगल एम० ए० बी० टी०

"जीवन क्या है ? मैं यह कार्य नहीं कर सकती मैं किस योग्य हूँ इस कार्य को तो बड़े-बड़े महान पुरुष भी नहीं कर पाये मैं किस खेत की मूली हूँ" आदि। जिन स्त्रियों एवं पुरुषों के यह भाव होते हैं वे उस कार्य को जिसे वे चाहते हैं कर भी नहीं पाते। कार्य करने से पूर्व ही उनकी अन्तरात्मा जवाब दे देती है साहस टूट जाता है कार्य करने का उत्साह क्षीण पड़ जाता है संघर्ष और उत्साह की प्रज्वलित अग्नि राख बन जाती है शायद हम भूल जाते हैं हमें ध्यान रखना चाहिए कि वास्तव मे जीवन क्या है ? जीवन पुष्पों की सेज नहीं है वरन् काँटों का जाल है वास्तव में जीवन परस्पर विरोधी तूफानों का संघर्ष है। जब तक अपने हाथ में उत्साह की कुल्हाड़ी लेकर हम इन काँटो को काटकर अपना रास्ता नहीं बना लेते आगे नहीं बढ़ सकते। संघर्ष व्यक्ति के जीवन मे बाधक नहीं सहायक है। संघर्ष के थपेड़ों में पला हुआ व्यक्ति लोहे की भाँति सुदृढ़ बन जाता है। कठिनाइयाँ आदमी को मजबूत और सुविधाएँ कमजोर बना देती हैं। पुष्प काँटो मे ही खिला करते हैं। संघर्ष के काँटो में पला हुआ व्यक्ति गुलाब के समान व्यक्तित्व वाला होता है जिस तरह गुलाब अपनी महक के कारण आपका हाथ अपनी ओर आकर्षित कर लेता है उसी प्रकार संघर्ष के बीच पला हुआ व्यक्ति अपनी महक के कारण आपको अपनी ओर खींच लेता है।

संघर्ष जीवन का प्राण है। चलना ही जीवन है और रुके होना मृत्यु। समय की इस दौड़ मे जो ताल ठोक कर आगे बढ़ते हैं, वे आगे बढ़ जाते हैं उनका जीवन उस बहते हुए झरने की भाँति है जो कि बीच मे अपने साथियों से मिल-मिल कर नदी बन कर जन-कल्याण करती हुई समुद्र में पहुँच जाती है जबकि गाँव का पोखर प्रवाहहीन होकर पड़ा-पड़ा सड़कर मच्छरों की जन्म-भूमि बनकर वातावरण को दूषित बना देता है। यह स्पष्ट है कि संघर्ष के भयंकर तूफान मे जो व्यक्ति स्थिर नहीं रह पाते वे गिर जाते हैं और जो इस तूफान को चीरते हुए आगे बढ़ते हैं वे पीछे रहे हुए व्यक्तियों के लिए प्रकाश-स्तम्भ बनते हैं संघर्ष मे असफलताएँ भी मिलती हैं किन्तु अन्त मे विजय अवश्य मिलती है। किसी ने ठीक कहा है।

"होश में आता है, इंसाँ ठोकरें खाने के बाद
रंग लाती है हिना पत्थर पे पिस जाने के बाद।

अब हमें यह निश्चित करना है कि वास्तव मे जीवन किस प्रकार का होना चाहिए अथवा जीवन का आदर्श-पथ क्या होना चाहिए। जीवन मे सदा सत्य के सम्मुख निडर होकर अनेकों कठिनाइयों का सामना करना ही वास्तविक जीवन है।

है। केवल वे लेखक ही नही थे, अपितु सफल कवि भी थे। सरस-सरल और स्फुट अगणित पद आज भी
जन-जन के कण्ठ में मुखरित होते रहते हैं।

जीवन की सान्ध्य-साधना

सुन्दरी उषा का प्रत्येक चरण-विन्यास रङ्गीली सन्ध्या में विलीन होता है। अथ के साथ-सा
इति लगी रहती है। संवत् १९२१ में वैशाखी पूर्णिमा के दिन जन जीवन को आलोकित करने वाला व
दिव्य आलोक विलीन हो गया। विवेक और वैराग्य का प्रखर भास्कर जो राजस्थान के क्षितिज प
उदय हुआ था, वह लोहामण्डी जैन भवन में अस्त हो गया। पूज्यपाद गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महारा
ने इस असार संसार को छोड़कर अमर पद प्राप्त किया।

* * *

गुरुदेव

(कुमारी शशि पूर्णिमा जैन)

गुरुदेव आपकी वाणी, ओ
क्या गरज मेघ की मानी, गुरुदेव
दमक रही थी ज्योति मुख पर, दिन-दिन बढ़ती जाए।
बोली की अमृत किरणों में सब को आनन्द आए॥
सब त्याग की है पुण्यवाणी॥ १॥

सिंह केसरी जैसे गुरुवर, गामो गाम विचरते।
जिन शासन का मार्ग बना, उपदेश दया का करते॥
दिए अभय करा कई प्राणी॥ २॥

देन प्रभू की तुम पर ऐसी, सबको प्यारे लगते।
जैन अजैन सब ही, सेवा आपकी करते॥
कई मान पंडित ज्ञानी॥ ३॥

जैन दिवाकर हिन्द सितारे, सभी आपको कहते।
लाल रतन न्यौछावर सबही, शीष चरणों में धरते॥
हो जाए सफल जिन्दगानी॥ ४॥

* * *

युग पुरुष श्री रत्नचन्द जी महाराज

कु० माया [illegible] (अ)

युग-पुरुष का जीवन उस सरिता के सदृश होता है जो उद्भासित होकर प्रवाहित होती हुई अनन्त सागर में विलीन हो जाती है। युग पुरुष भी प्रारम्भ में लघु तत्पश्चात् महान् तदुपरान्त धीरे धीरे अनन्त हो जाता है। उसकी वाणी में युग की वाणी, कर्म में युग के कर्म व चिन्तन में युग का चिन्तन बसता है।

इसी प्रकार के एक महान युग-पुरुष व जैन समाज की दिव्य विभूति 'श्री रत्नचन्द जी महाराज' थे। जिन्होंने जन-जीवन को अज्ञानान्धकार से विनष्ट करके ज्ञानालोक से आलोकित कर दिया। जिन्होंने जन-जीवन में संयम व तप के महत्त्वपूर्ण स्थान का बोध कराया तथा एक नवीन मोड़ ला दिया।

श्री रत्नचन्द जी के पिता श्री गंगाराम जी व माता सरूपा देवी ताथीजा ग्राम में रहने वाले गुर्जर राजपूत थे व समान स्वभाव के थे। धर्मप्रकृति व धर्म चर्चा में इनका अतीव प्रेम था। इनके अन्य भी कई पुत्र व पुत्रियाँ थीं परन्तु सबसे छोटे पुत्र रत्नचन्द बुद्धि में चतुर, रूप में सुन्दर व स्वभाव में मृदु थे। वे विक्रम सम्वत् १८[illegible]२ में भाद्र मास की कृष्णा चतुर्दशी के शुभ मुहूर्त में अवतीर्ण हुए।

रत्न संस्कारी बालक थे। उनमें विनय, विचारशीलता, धीरता, व्यवहारशीलता व मृदु वाणी आदि गुण कूट-कूट कर भरे गए थे। रत्न का जीवन सुखपूर्ण एवं शान्त था। उन्हें मातृ वात्सल्य, पितृ-स्नेह व भाई बहनों का अति प्रेम प्राप्त हुआ। वे खेलने के, पढ़ने व हँसने व गाने भी थे किन्तु साथ ही एक क्रिया अवश्य करते थे वह क्रिया थी—चिन्तन। वह प्रकृति में घटित परिवर्तनों को बड़े ध्यान से देखते थे तथा दीर्घकाल तक एक चित्त होकर विचारमग्न रहते थे। एक दिन जंगल में घूमते हुए उन्होंने देखा कि एक सिंह ने बछड़े को मार कर खा लिया। यही दारुण घटना रत्न के लिए बोध-पाठ बन गई। यह प्रथमावसर था जब रत्न ने क्रूर मृत्यु को भी देख लिया। वह गाम्भीर्य धारण करके जन्म, जीवन व मरण के अविराम चक्र के प्रति चिन्तन व मनन करने लगे तथा विचार करने के पश्चात् यह परिणाम निकाला कि यह क्रूर मृत्यु मेरे जीवन में भी आएगी और अवश्य आएगी। इस प्रकार उन्हें भव-विरक्ति का बीज प्राप्त हो गया।

रत्न के हृदय में गृह व परिवारीजनों के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो गई एवं उन्होंने उस गुरु का अन्वेषण प्रारम्भ कर दिया जो मृत्यु से उनकी रक्षा कर सके। इस प्रकार विचार करते हुए वे नारनौल नगर पहुँचे। वहाँ उस समय नारनौल नगर के धर्मस्थानक में तपस्वी हरजीमल जी विराजित थे। नित्यमेव उनके प्रवचन होते थे। उनके प्रवचन से उन्हें [illegible] एवं शान्ति का अनुभव हुआ। एक दिन अपने मन की बात गुरु से कही तथा गुरु ने भी दीक्षा देना स्वीकार कर लिया। तपस्वी हरजीमल जी की कृ-

शिष्यता [illegible] साधु जीवन की शिक्षा [illegible]। [illegible] साधक जीवन [illegible] कुछ वर्षों के अभ्यास के पश्चात् [illegible] योग्य समझ कर विक्रम सम्वत् १८६२ में [illegible] सुदी ५ [illegible] नागौर [illegible] दी। उन्होंने प्रेमपूर्वक दीक्षा ग्रहण की [illegible] परिजनों ने उन्हें शुभाशीर्वाद प्रदान किया। [illegible] ग्रहण करते ही संयम व तप की साधना [illegible] प्रेरणा मिली थी। तप, संयम व [illegible] विशेष गुण है। तप, संयम, [illegible] मुनि जी ने धर्म-प्रचार प्रारम्भ कर दिया।

गुरुवर का आगम और [illegible] उत्प्रवादि का था। वे भविष्य-द्रष्टा, श्रद्धा की अमर ज्योति, विनम्रता की प्रतिमूर्ति व महान [illegible] थे। विक्रम सम्वत् १६२१ में वैशाख सुदी १२, बुधवार को उन्होंने संथारा ग्रहण किया तथा वैशाखी पूर्णिमा, शनिवार के दिन, वह अद्भुत प्रकाश पुञ्ज जो समस्त जन-जीवन को आलोकित कर रहा था सदैव के लिए विलीन हो गया। इस प्रकार गुरुवर श्री रत्नचन्द्र जी महाराज ने अपने नश्वर तन का त्याग कर अमर पद प्राप्त किया।

सीखा है मैंने यह गाना

(कुमारी इन्दिरा नाहर)

गुरुदेव! तुम्हारे पावन पथ पर, यदि यह संसार चला होता!
तो, इस मानव जीवन का, निश्चय ही कल्याण हुआ होता॥

विश्व प्रेम की गंगा बहती, यहाँ हमारे घर-घर में।
स्नेह भाव की सरिता उठती, आज हमारे जीवन में॥

जोश न ठंडा होने पाए, कदम बढ़ा कर चल रे।
मंजिल तेरी सरल बनेगी, आज नहीं तो कल रे॥

गुरुदेव! तुम्हारे जीवन से, सीखा है मैंने यह गाना।
'जीवन साधक बना उसी का, जिस ने सीखा देकर देना॥"

* * *

जीवन के कलाकार गुरुदेव रत्नचन्द्रजी

श्रीमती कान्ति सहगल एम० ए० बी० टी

"जीवन क्या है ? मैं यह कार्य नहीं कर सकती मैं किस योग्य हूँ इस कार्य को तो बड़े-बड़े महान पुरुष भी नहीं कर पाये मैं किस खेत की मूली हूँ" आदि । जिन स्त्रियों एवं पुरुषों के यह भाव होते हैं वे उस कार्य को किये बिना चाहते हुए भी नहीं कर पाते । कार्य करने से पूर्व ही उनकी अन्तरात्मा जवाब दे देती है साहस टूट जाता है कार्य करने का उत्साह क्षीण पड़ जाता है संघर्ष और उत्साह की प्रज्वलित अग्नि राख बन जाती है शायद हम भूल जाते हैं हमें ध्यान रखना चाहिए कि वास्तव में जीवन क्या है ? जीवन पुष्पों की सेज नहीं है वरन् काँटों का ताज है वास्तव में जीवन परस्पर विरोधी तूफानों का संघर्ष है । जब तक अपने हाथ में उत्साह की कुल्हाड़ी लेकर हम इन काँटों को काटकर अपना रास्ता नहीं बना लेते आगे नहीं बढ़ सकते । संघर्ष व्यक्ति के जीवन में बाधक नहीं सहायक है । संघर्ष के थपेड़ों में पला हुआ व्यक्ति लोहे की भाँति मजबूत बन जाता है । कठिनाइयाँ आदमी को मजबूत और सुविधाएँ कमजोर बना देती हैं । पुष्प काँटों में ही खिला करते हैं । संघर्ष के काँटों में पला हुआ व्यक्ति गुलाब के समान व्यक्तित्व वाला होता है, जिस तरह गुलाब अपनी महक के कारण आपका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेता है उसी प्रकार संघर्ष के बीच पला हुआ व्यक्ति अपनी महक के कारण आपको अपनी ओर खींच लेता है।

संघर्ष जीवन का प्राण है । चलना ही जीवन है और रुके होना मृत्यु । संघर्ष की इस दौड़ में जो ताल ठोक कर आगे बढ़ते हैं वे आगे बढ़ जाते हैं उनका जीवन उस बहते हुए झरने की भाँति है, जो कि बीच में अपने साथियों से मिल-मिल कर नदी बन कर जन-कल्याण करती हुई समुद्र में पहुँच जाती है जबकि गाँव का पोखर प्रवाहहीन होकर पड़ा-पड़ा सड़कर मच्छरों की जन्म-भूमि बनकर वातावरण को दूषित बना देता है । अतः स्पष्ट है कि संघर्ष के भयंकर तूफान में जो व्यक्ति स्थिर नहीं रह पाते वे गिर जाते हैं, और जो इस तूफान को चीरते हुए आगे बढ़ते हैं वे पीछे रहे हुए व्यक्तियों के लिए प्रकाश-स्तम्भ बनते हैं, संघर्ष में असफलताएँ भी मिलती हैं किन्तु अन्त में विजय अवश्य मिलती है । किसी ने ठीक कहा है ।

'होश में आता है, इन्सां ठोकरें खाने के बाद
रंग लाती है हिना, पत्थर पे घिस जाने के बाद ।

अब हमें यह निश्चित करना है कि वास्तव में जीवन किस प्रकार का होना चाहिए, अथवा जीवन का आदर्श-पथ क्या होना चाहिए । जीवन में सदा सत्य के सम्मुख निडर होकर अनेकों कठिनाइयों का सामना करना ही वास्तविक जीवन है ।

वह मनुष्य क्या जो कि सदा अपनी भावनाओं एवं विचारों को दूसरे के प्रसन्न करने के हेतु अथवा चापलूसी करने मे ही नष्ट करे, गलत बात के आगे सिर भुकाएँ। सत्य रूपी शेर के सम्मुख ऐसा मनुष्य एक दुर्बल कुत्ते एव बिल्ली की भाँति है, जो कि दूसरों को खुश करता-करता प्रत्येक के सम्मुख आत्मसमर्पण करता हुआ एक दिन इस शरीर को त्याग कर चल बसता है। जीवन के अन्तिम क्षण तक उसकी भावनाएँ कुचली पडी रहती है, जिससे उसके मस्तिष्क का विकास न होने के कारण किसी प्रकार का सुधार न हो सकेगा।

कठोरता और मृदुता ही जीवन-पथ है। क्योंकि मानव जीवन मे इन दोनो का सगम अति आवश्यक है, एक के बिना दूसरा अपूर्ण है, वह जीवन भी क्या कि न मिलने मे रस, न बिछुडने मे रस। जीवन मे प्रेम की लचक भी होनी चाहिए न तो जीवन एक शेर की भाँति होना चाहिए जो कि सदा गुर्राते हुए मनुष्यो को भयभीत करे, न ही पत्थर की भाँति कठोर हो, जो दूसरे के दु खो पर प्रेम रूपी शीतल वारि डालने मे असमर्थ रहे, फिर मानव और दानव मे अन्तर ही क्या हुआ? जीवन बरसते हुए शोलो की भाँति बन जाता है, जिसकी अग्नि को शान्त करने के लिए पानी की बूद भी न मिले। महापुरुष के जीवन की विशेषता इसी मे है कि वह वज्र-सा कठोर हो और नवनीत सा मृदु, दोनो ही अपने अपने स्थान पर महत्त्व रखते है, एक के बिना दूसरे का महत्व आकना कठिन है, जैसे सुख का आलोचक है दुःख, पवित्रता की माप है मलिनता, उसी प्रकार कठोरता और मृदुता का मधुर मिश्रण ही महानता का प्रतीक है।

सच्चा आदर्शवादी पुरुष वह है जो कि ससार के भयकर से भयकर तूफान के सम्मुख अपने निर्धारित आदर्श पथ से विचलित न हो सके। मनुष्य को किसी कार्य को करने से पूर्व एक चित्रकार की भाँति ही होना चाहिए जो कि पूर्व कल्पना के आधार पर अमुक आकार को मूर्त रूप दे देता है, और कल्पना की भावभगिमा उसमे देखने लगता है। इसी प्रकार जीवन भी एक कला है, अत वह भी अपेक्षा करता है कि हमे उसे किस प्रकार का रूप देना चाहिए, लक्ष्य बाँध कर ही तीर फैंकना चाहिए। अत मानव जीवन का भी लक्ष्य केवल सग्रह करने के लिए नही है, वरन् सग्रह के साथ ही उसका वितरण भी समानता की दृष्टि से होना चाहिए। जो कुछ भी भोजन हमे मिलता है, उसी मे हमे अपने कुटुम्ब व समाज को साझीदार बनाना चाहिए, किसी भी परिवार मे एकाधिकार की सत्ता नही होनी चाहिए, वरन् उचित रूप से वितरण। यदि वह इस प्रकार नही चलता है, तो उसके लिए भगवान महावीर कहते हैं कि "सभव है कि किसी और को मोक्ष हो जाए, पर उसको तो कभी नही मिलेगी।"

"असविभागी नहु तस्स मोक्खो।"

प्रत्येक कार्य को सरस, सफल एव भद्र बनाने के लिए उसमे विश्वास, प्रेम और बुद्धि का पूर्ण मात्रा मे उपयोग करना चाहिए। और यह तीनो प्रकार के गुण ही वे गुण है जो सम्पूर्ण गुणो, वैभवो एव ऐश्वर्यो, सफलताओ के एक मात्र मूल कारण हैं। मानव सफलता के मूल मन्त्र को अपने जीवन मे प्राप्त करने मे तभी सफल हो सकेगा, जब कि वह अपने कर्म-क्षेत्र मे सरुचि भाग लेकर अपने पूर्ण उत्तरदायित्व को निभाने का प्रयत्न करेगा, वह भी रोती हुई एव मनहूस शक्ल लेकर नही वरन एक नवीन

उल्लास एवं प्रसन्न मुख को लेकर। ऐसे प्राणी सदा उस वीर की भाँति होते हैं जो कि अपने जीवन-क्षेत्र में अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी दो कदम आगे बढ़ने का प्रयत्न ही करते हैं यही उनकी वीरता का चिह्न है।

मानवता को दुर्बलता की ओर खींचने वाली भावना प्रसिद्धि पाने की है जीवन की साधना में साधक को पहले सिद्धि की आवश्यकता है जब सिद्धि प्राप्त हो जाती है तब प्रसिद्धि स्वयं ही पैरों पर लोटती है। यद्यपि प्रसिद्धि मानव छल और निष्कपटता से भी प्राप्त कर सकता है परन्तु वह अस्थायी रूप से ही मिलती है। स्थायी प्रसिद्धि सिद्ध होने पर ही प्राप्त हो सकती है। यह सिद्धि भी उसी प्राणी को प्राप्त हो सकती है जो कि स्वयं बुद्धि से कार्य लेता है वह दूसरे के नेत्रों के प्रकाश में न देख कर स्वयं के नेत्रों के प्रकाश से देखता है और अपनी समस्त शक्तियों को परहित पर निछावर कर देता है। "मैं" और "मेरा" की भावना के स्थान पर जहाँ 'हम' और 'हमारा' वही उसका जीवन सिद्धान्त है।

जीवन का रहस्य भी इसी में है जब कि वह अपने जीवन-क्षेत्र में अनेक प्रकार की बाधाओं एवं कष्टों को सहकर निर्झर की भाँति पत्थर से टकरा कर दुगना वेग प्राप्त करे अथवा उस नदी की भाँति जो कि अनेक पर्वतों को काटती हुई पूर्ण वेग से निरन्तर बढ़ती चली जाती है इसी प्रकार से जीवन में आने वाली अनेक विघ्न-बाधाएँ मनुष्य को उच्च पथ पर पहुँचाने में सहायक होती हैं।

वही प्राणी इस उच्च शिखर पर पहुँच सकता है अथवा जीवन की श्रेष्ठ कला को प्राप्त कर सकता है, जो कि संसार में भेद का त्याग दे और अभेद को अपना ले। वही उसे एकाग्रता एवं एकरसता का आनन्द प्राप्त होगा। ऐसी दशा में वह उस खरे सोने की भाँति बन जाता है जो कि दुगुनी आग में पड़ कर दमकता एवं चमकता है।

उसे जीवन में प्रतिष्ठा तभी प्राप्त होती है जब कि वह समाज की सेवा में तन मन धन से जुट जाता है, और जीवन-संघर्ष में पड़कर भी मस्तक नत करने की चेष्टा नहीं करता ऐसे प्राणी कीचड़ में फँसे हुए मच्छर की भाँति नहीं हैं वरन् रणक्षेत्र में आगे बढ़ने वाले हाथी के सदृश हैं।

दृढ़प्रतिज्ञ होना भी मनुष्य के चरित्र की विशेषता है। ऐसे प्राणी जिस वस्तु को हीन एवं बुरा समझ कर त्याग देते हैं वे उसे मृत्युपर्यन्त तक ही त्याग देते हैं। ऐसे प्राणी उन कुत्तों के समान नहीं होते जो थूके हुए एवं वमन किए हुए भोजन को फिर चाटें।

जब तक मनुष्य संसार में है अपने जीवन के क्षेत्र में उसे अपने जीवन के तत्वों को उचित रूप से इस संसार से ही प्राप्त करना है परन्तु वह शोषण-पोषणपूर्वक ही होना चाहिए भौंरे की भाँति एवं गाय की दूध जैसा। जिस प्रकार गाय को घास-फूस खिलाते-पिलाते हैं वही खिलाने-पिलाने वाले को दूध का रूप में देती है उसी प्रकार मनुष्य को भी अपनी जीवन यात्रा आनन्द-पूर्वक चलाते हुए समाज का शोषण जोंक की तरह न करके भौंरे की भाँति जो अपना रस-जीवन के रूप का रस इसी समाज से ग्रहण कर सके। इससे यह अभिप्राय नहीं है कि वह सदा नवनीत की भाँति मृदु एवं कोमल स्वभाव का ही बना रहे, उसे कुछ अंश तक कठोर बनने की भी आवश्यकता है जिसकी कठोरता नारियल की भाँति होनी चाहिए जो बाहर से सूखा नीरस एवं कठोर है परन्तु अन्दर से कोमल मधुर एवं रस से पूर्ण है।

यदि मनुष्य अपना अस्तित्व बनाये रखना चाहता है, तो उसे, जिन्दा रहने की कला भी सीखनी चाहिए। जीवन का लक्ष्य भी यही है कि संसार का अपने अस्तित्व का ज्ञान कराना। यद्यपि पशु-पक्षी भी संसार में अपना अस्तित्व रखते हैं, परन्तु दोनों में महान अन्तर है। मानव में आत्मत्याग, अहिंसा, प्रेम आदि विशेष गुण हैं, जो कि उसे समुचित वातावरण में ऊपर उठाने में सहायक होते हैं। क्योंकि वह संसार के समस्त जीवों के प्रति यही श्रेष्ठ भाव रखता है। जीवन की इस उच्च एवं श्रेष्ठ कला को अपना-कर ही, वह एक आदर्श उपस्थित करता है। यह जीवन की कला जिनको मिल गई, उनका इस जीवन में भी कल्याण है, और आगे भी कल्याण संभव है।

गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज जीवन-कला के एक सच्चे कलाकार थे। प्रखर त्याग और कठोर तपस्या के अतिरिक्त भी उनके जीवन-सागर में अगणित और अपरिमित गुण-रत्न भरे पड़े थे। उनके पावन जीवन की सबसे बड़ी विशेषता थी, कि उन्होंने योग और कला का सुन्दर समन्वय किया था। बुद्धि और हृदय के सन्तुलन की कला ही उनके जीवन की सबसे बड़ी कला थी। गुरुदेव कुसुम से भी अधिक कोमल थे और वज्र से भी अधिक कठोर थे। अपने लिए वे कठोर थे, और दूसरों के लिए मृदु एवं मधुर थे। पर दुःख देख कर वे द्रवित हो जाते थे और अपने कष्टों पर वे और भी अधिक कठोर और साहसी बन जाते थे। विचार और आचार के समन्वय की कला ही वस्तुतः उनके जीवन की सच्ची कला थी और इसी कला के वे कलाकार थे।

* * *

श्रद्धा के सुमन

(कुमारी तिलक सुन्दरी जैन)

कर रहे तुम को समर्पित, आज 'श्रद्धा-सुमन' सारे।
ज्योति-पुञ्ज दिनेश गुरुवर, रत्न मुनि नायक हमारे॥

आप की महिमा अगम है, क्या कोई बतला सका है।
इस सुविस्तृत व्योम का, क्या पार कोई पा सका है॥

आप थे सच्चे मुनि और, आप थे अध्यात्म-नेता।
आप थे सुप्रसिद्ध वक्ता, और ग्रन्थों के प्रणेता॥

जन-जीवन के प्राण तुम थे, दीन जन के थे सहारे।
कर रहे तुम को समर्पित, आज 'श्रद्धा-सुमन' सारे॥

* * *

मानवतावादी सन्त गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज

श्रीमती जगदम्बा शर्मा बी ए बी टी०

जिस वस्तु को हम 'विश्व' के नाम से पुकारते हैं वह वास्तव में असंख्य जीव जन्तुओं पशु-पक्षियों एवं मानवों की समष्टि ही है। और मानव शरीर मन व आत्मा की समष्टि है। इसके विचारों के सदा दो पहलू होते हैं—एक अच्छाई दूसरा बुराई। अच्छाई वस्तु का धर्म है और बुराई—अधर्म। जिस युग के मानव समाज में कल्याणार्थ कार्य हुए वहाँ मानव मानवतावादी बना और जहाँ मानव ने 'आपस मेल हुआ है न देखें क्यूं' की उक्ति को चरितार्थ किया वहाँ निरी दानवता का ही परिचय मिला।

अब हमारे समक्ष यह प्रश्न है कि आखिर यह मानवता है क्या? तो हम केवल यही कहेंगे कि 'मानव का धर्म ही मानवता है' और जब मानव अपने धर्म से च्युत हो जाता है तो वह दानवता का रूप धारण कर लेता है। अंग्रेजी लेखक टैरेन्स ने मानवता की परिभाषा इस प्रकार की है—

I m a man and thing human ca be f indiff ence t me hence I lo my country bett then m family but I lov better then my Co nt y

आज का मानव व्यक्तिगत भोग-विलास में लिप्त है। वह विलासिता में ही मानवता की खोज करता है किन्तु मानवता है कहाँ? इसे वह विलासिता के आवरण में छिपे रहने के कारण किंचित मात्र भी नहीं जान पाता। सच कहें तो मानवता है—'उच्च विचार व उच्च आचरण' में। अपने उच्च विचारों को जब व्यावहारिक रूप दिया जायगा तभी मानवता आ सकती अन्यथा नहीं। प्रश्न यह उठता है कि उच्च विचार होते हुए भी मानव उच्च आचरण में क्यों नहीं ला पाता? कारण यह है कि संसार में मनुष्यों की तीन श्रेणियाँ हैं—अधम मध्यम तथा उत्तम। आचार्य भर्तृहरि ने कहा है—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति।

हम ऐसा कह सकते हैं कि वे पुरुष जो विघ्न के भय से कार्य आरम्भ नहीं करते वे अधम हैं, जो साहस करके कार्य आरम्भ तो कर देते हैं परन्तु बाधाओं के आ जाने पर प्रयत्न-विमुख हो जाते हैं—व मध्यम पुरुष और जो बाधाएं एवं संकट आने पर भी कर्तव्य से पीछे नहीं हटते अटल चट्टान की भाँति डटे रहते हैं वे उत्तम पुरुष हैं। अतः मानव को कभी भी आपत्ति एवं संकट में घबराना नहीं चाहिए। यही तो एकमात्र मानव को परखने की कसौटी है। उसे अपने शरीर, मन एवं आत्मा को सन्तुलित रखना चाहिए क्योंकि वह मनुष्य है उसमें सोचने समझने की अपूर्व शक्ति है अन्यथा वह पशु ही न होता।

भगवान महावीर के विचारानुसार—'अप्पा सो परमप्पा'—अर्थात मानव ईश्वर है, ब्रह्म सिद्ध है, बुद्ध है, यदि वह अपने आप को पहचान ले, सँवार ले, साफ कर ले और पूर्ण बना ले तो मानवता का केन्द्र बन जाता है। मानवता का केन्द्र वस्तुतः आत्मा है, शरीर नहीं। अतः 'मानव जीव संसार में प्रत्येक प्राणी के लिए सुख और शान्ति की स्थापना हेतु है, व्यक्तिगत भोग-लिप्सा में रहने के लिए नहीं। मानव जीवन का चरम ध्येय त्याग है, भोग नहीं, प्रेम है घृणा नहीं। भोग-लि का ध्येय मनुष्य के लिये सदैव घातक रहा है, घातक है और घातक रहेगा।

आज मानव, मानवता को न अपनाकर उसके विनाश पर तुला है। इस कारण समाज की आ में व्यक्तिगत स्वार्थ का घुन बुरी तरह से मानवता को खोखला करता जा रहा है। आज समाज में घृ एवं द्वेष के काँटे इतनी अपरिमित मात्रा में बिखरे हुए हैं कि भू-पृष्ठ का कोई भी कोना इससे अछ नहीं रहा। इन द्वेष कंटकों के छिदने से आज मानव समाज के पैर भूमि पर नहीं पड़ते, वह पैर प ही उछलने लगता है और आकाश में उड़ने का पूर्ण प्रयत्न कर रहा है, विनाशकारी दैत्यों का सा करने में प्रवृत है। सम्भवतः इसी कारण हमें आज समाज में मानवता के स्थान पर दानवता दृष्टि हो रही है।

आज विश्व में एक प्रकार का कोलाहल-सा मचा हुआ है। आए दिन युद्धों की विभीषिका मानव समाज के प्राण सूखे जा रहे हैं। इसका क्या कारण है? इसका एक मात्र कारण है—'मानव अपने धर्म को भूलना।' जिसका कारण संसार में सामाजिक सन्तुलन का अभाव है। आज समाज में विशेष प्रकार के सन्तुलन की आवश्यकता है, जिसके द्वारा विश्व में शान्ति एवं व्यवस्था का साम्रा स्थापित हो सकता है। यह सन्तुलन तभी स्थापित हो सकता है, जब मानव मानवतावादी बने और क क्रोध, मद व लोभ के चोले को उतार कर प्रेम, अहिंसा, सत्य, त्याग, कर्त्तव्यपरायणता आदि सद्गुणो धारण करे। अतः आज मानव को हिंसा, घृणा, तृष्णा, वासना व भोग-विलास के गरल को त्याग अहिंसा, सत्य, दया, करुणा, कर्त्तव्य, निष्ठा रूपी अमृत के पान करने की आवश्यकता है। तभी मा मानवतावादी कहला सकने का अधिकारी होगा।

'परिवर्तन ही प्रकृति का नियम है' तभी संसार में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं रह पाती। प्रकृति नियमानुसार ही आज मानव ढल गया है और सदा सुख या सदा दुःख में रहना अच्छा नहीं लगत **'चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च।'** 'मैं नहीं चाहता चिर सुख, मैं नहीं चाहता चिर दु यही उक्ति चरितार्थ होती है। ऐतिहासिक वृत्त का अध्ययन करने से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते कि जब भी मानव ने अपने धैर्य को त्यागा तभी समाज में अशान्ति, अव्यवस्था एवं विप्लव का नृत्य हुअ जैन शास्त्रों का अध्ययन करने से भी ज्ञात होता है कि दुःखो में सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करने से मा जीवन का निर्माण नहीं हो पाता। मनुष्य जब सुख और दुःख के गज से नाप कर अपने जीवन को सम लेता है और उसी गज से जब वह संसार को नापता है तो उसकी मनुष्यता विशाल और विराट धारण कर लेती है। मानव का यही विराट रूप मानवता कहलाता है। गुरुदेव श्री रत्न चन्द्र जी ने इ मानवता का उपदेश और सन्देश अपने युग की जनता को दिया था।

अब हमारे सम्मुख एक ज्वलन्त प्रश्न चायना दीवार की भाँति आकर खड़ा हो गया है कि मा

मानवता-प्रिय होते हुए भी दानवता को क्यों अपनाए हुए है ? इसका यही एक सहज सा उत्तर है कि 'मानव अपनी परिस्थितियों का दास है' और अपनी परिस्थितियों के वशीभूत होकर ही वह दानवता का ताण्डव नृत्य करता है। या ऐसा कहेंगे कि मानवता के पथ से च्युत होता है। परिस्थितियाँ शक्तिशाली हैं, वे ही मानव को बनाती हैं एवं बिगाड़ती हैं। इसके विपरीत अग्रेज दार्शनिक कार्लाइल ने लिखा है—

Man is the architect of his own circumstances. अतः मनुष्य अपनी परिस्थितियों का स्वयं निर्माता है। यदि मनुष्य दुखों में तंग आकर अपने धैर्य को खो बैठता है तो वह बुरी परिस्थितियों का निर्माता बन जाता है और यदि वह दुखों में अपने धैर्य को न खोये तो वह अच्छी परिस्थितियों का सृजनकर्ता बनता है। इसी कारण हम यह समझते हैं कि मनुष्य ही सब कुछ है। शक्तिशाली मनुष्य परिस्थितियों को अपने नियन्त्रण में रखता है प्रतिकूल को भी अनुकूल बनाता है और उसका स्वरूप जैसा चाहता है बनाने में सक्षम होता है। अतः पुरुष परिस्थितियों का दास नहीं स्वामी है। मानवता मनुष्य का धर्म है जिसको उसे किसी भी मूल्य पर त्यागना नहीं चाहिए। मनुष्य का धर्म को त्यागना ही दानवता का परिचय देना है। जैन धर्म के संस्थापक श्री महावीर स्वामी और उनके अनुयायियों का यही कहना है कि मानव स्वयं ही अपने भाग्य का विधाता है। अनन्त शक्तियों का केन्द्र है विश्व का विजेता है। मानव एक मात्र 'स्व' में ही सीमित रहने के लिए नहीं है उसकी महत्ता परार्थ वृत्ति के विकास में ही है। अतएव मानव को प्राणी मात्र के सुख शान्ति तथा कल्याण के लिए हृदय-वीणा के प्रत्येक तार का प्रतिक्षण झंकृत करते रहना चाहिये तभी वह विश्व को जीत सकेगा और तब ही उसके जीवन की सार्थकता होगी।

आज मानव व्यवहार में दानवता बढ़ने का एक मात्र कारण और है। और वह है उसकी अनन्त इच्छाएं। 'चाह' ने उसके जीवन को दूभर बना दिया है। एक चाह या आवश्यकता पूर्ण नहीं होती कि दूसरी आ खड़ी होती है। इसी चाह को पूर्ण करने के लिये बरबस मनुष्य को स्वार्थी बनना पड़ता है— यदि वह स्वार्थी नहीं बनेगा तो उसकी इच्छाएँ अपूर्ण रहेंगी और उसे सन्तुष्टि नहीं मिलेगी। इस कारण मनुष्य के लिए श्रेष्ठ यही है कि वह अपनी चाह को कम करे। जब तक संसार के मिथ्या भोगों की चाह है तब तक मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता। जितनी चाह बढ़ती है उतना ही दुखों का विस्तार होता है परन्तु ज्यों-ज्यों चाह पूर्ण होती है त्यों-त्यों चाह बढ़ती है। चाह पूर्ण नहीं होती तो दुख होता है। दुख से दूर रहने के लिये चाह रूपी आग में विषय रूपी घी की आहुति न देकर सन्तोष का शीतल जल छिड़कें तो वह बुझ जायगी और अनायास ही भीतर की मानवता जाग उठेगी। भीतर की मानवता जागी कि निश्चय ही हम मानव कहाने के अधिकारी बन जायेंगे।

वास्तव में धन्य वे ही पुरुष हैं जो विषय सुख से वंचित हैं। विषय की चिन्ता छूटे बिना सच्चे सुख का चिन्तन हो ही नहीं सकता। साधारण मानव विषय सुख से अपने आत्मा के संस्कारों के कारण शीघ्र ही विमुख नहीं हो पाता। तभी तो मानव और महामानव की कृति एवं उक्ति में महान अन्तर होता है। मानव का जीवन मात्र है एक गुनी कृति और कई गुनी उक्ति और कभी-कभी केवल उक्ति ही उक्ति। परन्तु दूसरी ओर महामानव का जीवन मन्त्र होता है महान कृति और अल्प उक्ति। और कभी केवल कृति ही कृति। उक्ति और कृति में अभेद साधना ही महत्ता का प्रथम लक्षण है।

धन्य भाग्य हम भारत के जहाँ समय-समय पर युगप्रवर भक्त व मुनिवर श्री रत्नचन्द्र जी महाराज

भगवान महावीर के विचारानुसार—'अप्पा सो परमप्पा'— अर्थात मानव ईश्वर है, ब्रह्म है, सिद्ध है, बुद्ध है, यदि वह अपने आप को पहचान ले, [illegible] पूर्ण बना ले तो वह मानवता का केन्द्र बन जाता है। मानवता का केन्द्र वस्तुतः आत्मा है, शरीर नहीं। अतः 'मानव जीवन' संसार में प्रत्येक प्राणी के लिए सुख और शान्ति की स्थापना हेतु है, व्यक्तिगत भोग-लिप्सा में डूबे रहने के लिए नहीं। मानव जीवन का चरम ध्येय त्याग है, भोग नहीं, प्रेम है घृणा नहीं। भोग-लिप्सा का ध्येय मनुष्य के लिये सदैव घातक रहा है, घातक है और घातक रहेगा।

आज मानव, मानवता को न अपनाकर उसके विनाश पर तुला है। इस कारण समाज की आत्मा में व्यक्तिगत स्वार्थ का घुन बुरी तरह से मानवता को खोखला करता जा रहा है। आज समाज में घृणा एवं द्वेष के कांटे इतनी अपरिमित मात्रा में बिखरे हुए हैं कि भू-पृष्ठ का कोई भी कोना इनसे अछूता नहीं रहा। इन द्वेष कंटकों के छिदने से आज मानव समाज का पैर भूमि पर नहीं पड़ता, वह पैर धरते ही उछलने लगता है और आकाश में उड़ने का पूर्ण प्रयत्न कर रहा है, विनाशकारी दैत्यों का सा नृत्य करने में प्रवृत्त है। सम्भवतः इसी कारण हम आज समाज में मानवता के स्थान पर दानवता दृष्टिगत हो रही है।

आज विश्व में एक प्रकार का कोलाहल सा मचा हुआ है। आए दिन युद्धों की विभीषिका से मानव समाज के प्राण सूखे जा रहे हैं। इसका क्या कारण है? इसका एक मात्र कारण है—'मानव का अपने धर्म को भूलना।' जिसका कारण संसार में सामाजिक सन्तुलन का अभाव है। आज समाज में एक विशेष प्रकार के सन्तुलन की आवश्यकता है, जिसके द्वारा विश्व में शान्ति एवं व्यवस्था का साम्राज्य स्थापित हो सकता है। यह सन्तुलन तभी स्थापित हो सकता है, जब मानव मानवतावादी बने और काम, क्रोध, मद व लोभ के चोले को उतार कर प्रेम, अहिंसा, सत्य, त्याग, कर्त्तव्यपरायणता आदि सद्गुणों को धारण करे। अतः आज मानव को हिंसा, घृणा, तृष्णा, वासना व भोग-विलास के गरल को त्याग कर अहिंसा, सत्य, दया, करुणा, कर्त्तव्य, निष्ठा रूपी अमृत के पान करने की आवश्यकता है। तभी मानव मानवतावादी कहला सकने का अधिकारी होगा।

'परिवर्त्तन ही प्रकृति का नियम है' तभी संसार में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं रह पाती। प्रकृति के नियमानुसार ही आज मानव ढल गया है और सदा सुख या सदा दुःख में रहना अच्छा नहीं लगता। **'चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च।'** 'मैं नहीं चाहता चिर सुख, मैं नहीं चाहता चिर दुःख' यही उक्ति चरितार्थ होती है। ऐतिहासिक वृत्त का अध्ययन करने से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जब भी मानव ने अपने धैर्य को त्यागा तभी समाज में अशान्ति, अव्यवस्था एवं विप्लव का नृत्य हुआ। जैन शास्त्रों का अध्ययन करने से भी ज्ञात होता है कि दुःखों में सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करने से मानव जीवन का निर्माण नहीं हो पाता। मनुष्य जब सुख और दुःख के गज से नाप कर अपने जीवन को समझ लेता है और उसी गज से जब वह संसार को नापता है तो उसकी मनुष्यता विशाल और विराट रूप धारण कर लेती है। मानव का यही विराट रूप मानवता कहलाता है। गुरुदेव श्री रत्न चन्द्र जी ने इसी मानवता का उपदेश और सन्देश अपने युग की जनता को दिया था।

अब हमारे सम्मुख एक ज्वलन्त प्रश्न चायना दीवार की भाँति आकर खड़ा हो गया है कि मानव

मानवता-प्रिय होते हुए भी दानवता को क्यों अपनाए हुए है ? इसका यही एक सहज सा उत्तर है कि 'मानव अपनी परिस्थितियों का दास है' और अपनी परिस्थितियों के वशीभूत होकर ही वह दानवता का ताण्डव नृत्य करता है। या ऐसा कहूँ कि मानवता के पथ से च्युत होता है। परिस्थितियाँ शक्तिशाली हैं वे ही मानव को बनाती हैं एवं बिगाड़ती हैं। इसके विपरीत अंग्रेज दार्शनिक कार्लाइल ने लिखा है—

Man is the architect of his own circumstances. अतः मनुष्य अपनी परिस्थितियों का स्वयं निर्माता है। यदि मनुष्य दुःखों में तंग आकर अपने धैर्य को खो बैठता है तो वह बुरी परिस्थितियों का निर्माता बन जाता है और यदि वह दुःखों में अपने धैर्य को न छोड़े तो वह अच्छी परिस्थितियों का सृजनकर्ता बनता है। इसी कारण हम कह सकते हैं कि मनुष्य ही सब कुछ है। शक्तिशाली मनुष्य परिस्थितियों को अपने नियन्त्रण में रखता है प्रतिकूल को भी अनुकूल बनाता है और उसका स्वरूप जैसा चाहता है बनाने में सफल होता है। अतः पुरुष परिस्थितियों का दास नहीं स्वामी है। मानवता मनुष्य का धन है जिसका उसे किसी भी मूल्य पर त्यागना नहीं चाहिए। मनुष्य का धन को त्यागना ही दानवता का परिचय देना है। जैन धर्म के संस्थापक श्री महावीर स्वामी और उनके अनुयायियों का यही कहना है कि मानव स्वयं ही अपने भाग्य का विधाता है। अनन्त शक्तियों का केन्द्र है विश्व का विजेता है। मानव एक मात्र 'स्व' में ही सीमित रहने के लिए नहीं है उसकी महत्ता परार्थ वृत्ति के विकास में ही है। अतएव मानव को प्राणी मात्र के सुख शान्ति तथा कल्याण के लिये हृदय-वीणा के प्रत्येक तार को प्रतिक्षण झंकृत करते रहना चाहिये तभी वह विश्व को जीत सकेगा और तब ही उसके जीवन की सार्थकता होगी।

आज मानव व्यवहार में दानवता बढ़ने का एक मात्र कारण और है। और वह है उसकी अनन्त इच्छाएँ। 'चाह' ने उसके जीवन को दूभर बना दिया है। एक चाह या आवश्यकता पूर्ण नहीं होती कि दूसरी आ खड़ी होती है। इसी चाह को पूर्ण करने के लिये बरबस मनुष्य को स्वार्थी बनना पड़ता है— यदि वह स्वार्थी नहीं बनेगा तो उसकी इच्छाएँ अपूर्ण रहेंगी और उसे सन्तुष्टि नहीं मिलेगी। इस कारण मनुष्य के लिए श्रेष्ठ यही है कि वह अपनी चाह को कम करे। जब तक संसार के मिथ्या भावों की चाह है तब तक मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता। जितनी चाह बढ़ती है उतना ही दुःखों का विस्तार होता है परन्तु ज्यों ज्यों चाह पूर्ण होती है त्यों-त्यों चाह बढ़ती है। चाह पूर्ण नहीं होती तो दुःख होता है। दुःख से दूर रहने के लिये चाह रूपी आग में विषय रूपी घी की आहुति न देकर सन्तोष का शीतल जल छिड़क दें तो वह बुझ जायगी और अनायास ही भीतर की मानवता जाग उठेगी। भीतर की मानवता जागी कि निश्चय ही हम मानव महान के अधिकारी बन जायेंगे।

वास्तव में धन्य वे ही पुरुष हैं जो विषय सुख से वंचित हैं। विषय की चिन्ता छूटे बिना सच्चे सुख का चिन्तन हो ही नहीं सकता। साधारण मानव विषय सुख से अपने आजन्मा के संस्कारों के कारण शीघ्र ही विमुख नहीं हो पाता। तभी तो मानव और महामानव की कृति एवं उक्ति में महान अन्तर होता है। मानव का जीवन मन्त्र है एक दुनी कृति और कई गुनी उक्ति और कभी-कभी केवल उक्ति ही उक्ति। परन्तु दूसरी ओर महामानव का जीवन मन्त्र होता है महान कृति और अल्प उक्ति। और कभी केवल कृति ही कृति। उक्ति और कृति में अभेद साधना ही महत्ता का प्रथम लक्षण है।

धन्य भाग्य हम भारत के जहाँ समय-समय पर गुरुप्रवर भर्द्धेय मुनिवर श्री रत्नचन्द्र जी महाराज

जसे महामुनिया न जन्म लेकर हम मानवता का गान पाठ सिखाया। हम सब उनके बताए मार्ग पर अग्रसर हो, तो हमारा महाभाग्य है। गुरुदेव ने अपने पावन और पवित्र जीवन में जान-जनता को यही शिक्षा और दीक्षा दी थी कि मनुष्य को कभी भी स्वार्थ नहीं होना चाहिए। अपने सुख में दूसरों का भी साझीदार करो। दूसरे के हितों का सदा ध्यान रखो। जैसा व्यवहार हम दूसरों से अपने लिए चाहते हैं वैसा हम भी तो दूसरों के प्रति करना चाहिए। मानव कितना भी ज्ञान, विज्ञान और कला सीख ले परन्तु यदि उसमें मानवता नहीं आई है तो वस्तुतः वह मानव के आकार में दानव ही है। गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज ने दिव्य उपदेशों को जब तक हम अपने जीवन व आचरण पर नहीं उतारेंगे, तब तक जीवन में सच्ची शान्ति, सुख और आनन्द हमें अधिगत नहीं हो सकता।

* * *

रत्न प्रकाश

सुरेखा कुमारी जैन

स्वरूपा के नन्द वन्दनीय जैन आनन के।
वरम करम के काज ऐसी जिन धारी है।।
जग में जनारदन के तुल्य भये शीलवान।
ध्यान नित करत धरत दया शीश भारी है।।

मोहन खुले हैं भाग्य ऐसे नर-नारिन के।
क्रिय जिन दश मुनी वानी अति प्यारी है।।
शारद के प्यारे सखा शील के दुलार।
भरि चरनन तिहारे सब्य वन्दना हमारी है।।

बालक थे ये गंगाराम जमीदार के।
ऐसे गुरु 'रत्न' पर हम बलिहारी हैं।।
सत्य और अहिंसा के उपासक गुरु रत्न थे।
जिनकी प्रिय वानी सुनते सभी नर-नारी हैं।।

विश्व में है ये प्रथम प्रखर तीव्र ज्योती के।
जिनको यहाँ थे प्रिय सभी जीवधारी हैं।।
जैनों के निर्माणकर्त्ता गुरु रत्न चन्द्र को।
हम सब समर्पित करते अपनी श्रद्धांजलि हैं।।

* * *

संसार करे शत-शत प्रणाम

महासती श्री सरला देवी

इस परिवर्तनशील संसार में अनेकों मनुष्य जन्म लेते हैं और अनेकों मरते हैं। कौन किसको याद करता है? पर कुछ महापुरुष ऐसे होते हैं जिनकी स्मृति युग-युगान्तर तक अमिट बनी रहती है। वह जीवन में कभी भी भुलाए नहीं जाते। जिनके लिए कहा है—भूलने वाले भुलाने पर भी याद आते हैं।

ऐसा क्यों होता है? तो कहना पड़ेगा कि उनके जीवन की विशेषताओं का इतना प्रबल Attraction होता है जो मानस पटल पर सदैव प्रभाव डालता रहता है। श्रमण संस्कृति के उद्गाता आचार्य प्रवर श्री रत्नचन्द्र जी महाराज की मधुर स्मृति आज पूरे सौ सालों के पश्चात् भी जन-जन के हृदय में समाविष्ट है। अच्छा अब इतिहास के पन्ने उलटिये और देखिए कि महापुरुषों का महामहिम व्यक्तित्व क्या है? उनके जीवन की विशेषताओं का संस्मरण चित्रपट की भांति हमारी दृष्टि के सामने आ जाएगा।

संसार के किसी भी महान् व्यक्ति को लीजिए, उसकी कठिन साधना और क्रिया में लीन होने के कारण उसकी शक्ति का इतना अधिक विस्तार हुआ कि वह विश्व को हिला सका और इष्ट प्राप्त करने में सफल हुआ। प्रत्येक मनुष्य का अपना-अपना व्यक्तित्व होता है। कोटि-कोटि मनुष्यों की भीड़ में भी वह अपने निराले व्यक्तित्व के कारण पहचान लिया जाएगा। हाँ तो जिन पुण्यात्मा की हम पुण्य शताब्दी मना रहे हैं वे श्रेष्ठ आचार-विचार के आराधक थे और थे प्रबल संयम-साधना के उपासक। जितनी उन्होंने उत्कृष्ट क्रिया साधना को अपनाया वह स्वर्णाक्षरों में अंकित है। मानव चला जाता है पर स्मृतियाँ युग-युगान्तर तक बनी रहती हैं। कहते हैं—

बिछुड़ जाएँगे इस रंगी मेले पर कभी न भूलेंगे महापुरुष अकेले। एक कवि ने कहा है—

जिन्दगी ऐसी बना जिन्दा रहे दिल शाद तू।
न हो दुनिया में तो दुनिया को आए याद तू॥

गुरुदेव का उद्घोष था कि जीवन-लक्ष्य पहचानो। मनुष्य से बढ़ कर संसार में कुछ नहीं है। अनेक महापुरुषों के लोकोत्तर चरित्र से यही स्पष्ट होता है कि मनुष्य के लिए कुछ भी दुष्कर-दुष्प्राप्य नहीं है। बुद्ध और गांधी की सांस्कृतिक विजय से यह सिद्ध होता है कि एक मनुष्य जन-समुदाय पर आचार-विचारों से शासन कर सकता है। गुरुदेव का आदेश था—सत्य-अहिंसा त्याग—आदि जीवन के सिद्धान्त हैं। इसी के आधार पर मानव सभ्यता का विकास होता है। कबीर का कथन है—

मिलती। वे पण्डितो के पण्डित थे, ज्ञानियो मे ज्ञानी थे, तपस्वियो मे तपस्वी थे और योगियो मे योगी थे। तर्क करने मे उन्हे आनन्द आता था, परन्तु कुतर्क उन्हे पसन्द न था। उनके जीवन के कण-कण में श्रद्धा रम चुकी थी, किन्तु अन्ध श्रद्धा से वे बहुत दूर थे। तर्क और श्रद्धा मे समन्वय उन्होने साधा था। श्रद्धा से वे अनुप्राणित थे। फिर भी तर्क की सीमा का उन्हे परिज्ञान था, और श्रद्धा की गहराई का उन्हे परिबोध था। यही कारण है कि तर्क कुतर्क बन कर उन्हे आकाश मे उडा नहीं सका, और श्रद्धा अन्ध श्रद्धा बनकर ससार के महासागर की गहराई म डुबो नही सकी। तर्क से उन्होंने प्रकाशमय पथ प्राप्त किया और श्रद्धा का सबल लेकर वे अपने लक्ष्य की ओर बढते रहे। गुरुदेव ससार को स्वर्ग का सन्देश देने नही आए थे, बल्कि इस ससार को ही स्वर्ग बनाने के लिए धराधाम पर अवतरित हुए थे। उन्होने अपने युग की जनता को कहा था

सदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

महापुरुष अपने जीवन की साधना से स्वय को भी ऊँचा उठाते हैं, और दूसरो को कल्याण का मार्ग बताते हैं। पूज्य गुरुदेव ने अपने युग की जनता को बहुत कुछ दिया था। उनका जीवन एक बहु-मुखी जीवन था। वे अपने युग के प्रसिद्ध साहित्यकारी थे। उनकी कृतियो मे धर्म, दर्शन और सस्कृति के उदात्त भावो का सुन्दर विश्लेषण होता है। मोक्ष-मार्ग प्रकाश, नवतत्वावबोध और गुणस्थान-विवरण तथा प्रश्नोत्तर-माला जैसे गम्भीर ग्रन्थो की आपने रचना की। तर्क और वितर्क मे भी आपकी प्रतिभा खूब चमकी। तेरापन्थ मत-चर्चा, दिगम्बर मत चर्चा और मूर्ति-पूजा के विरोध मे आपने अनेक बार चर्चाएँ की। कविता के क्षेत्र मे भी गुरुदेव ने अनेक सुन्दर कृतियो की रचना की। अत गुरुदेव ने दोनों प्रकार की साधनाएँ की—आध्यात्मिक और साहित्य सम्बन्धी।

गुरुदेव का व्यक्तित्व जितना ऊँचा था, उनका कृतित्व भी उतना ही अधिक विशाल और व्यापक था। उनके व्यक्तित्व से उन का कृतित्व चमका और उनके कृतित्व से उनका व्यक्तित्व दमका। अत गुरुदेव का व्यक्तित्व और कृतित्व बहुमुखी, विशाल, व्यापक, उदात्त एव उदार था।

★

गुरुदेव एक दिव्य झलक

सीता देवी जैन

गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी महाराज अपने युग के कोलाहलपूर्ण तथा अशान्त वातावरण में ज्ञान की आत्मसम्मान मशाल लेकर अवतरित हुए। समाज के झरोखे पालने में झूलते हुए जीवन के गुलाबी वर्षों को पार किया। किशोरावस्था के अन्तिम चरण पर पहुँचते ही थे कि ज्ञान की दिव्य रोशनी उनके हृदय-पटल को स्पर्श कर गई। विवेक जागृत हुआ। एक दिन वह वे जंगल में गाय चराने जा रहे थे कि अचानक एक बाघ ने एक गाय पर आक्रमण कर दिया इससे पूर्व कि शेर आक्रमण करे गुरुदेव एक पेड़ पर चढ़ गए और देखा कि उनकी गायों में से एक गाय शेर के आक्रमण से घायल हो कालकवलित हो गई है। गुरुदेव इस दृश्य को देखकर द्रवीभूत हुए। संसार में जीवन की निस्सारता को देख वैराग्य की नन्ही लहरें उनके हृदय-सागर में तरंगित हो उठीं। वैराग्य का रंग उनके हृदय और मस्तिष्क पर गहरा होता चला गया और अवस्था यहाँ तक पहुँची कि उन्होंने जीवन का वास्तविक अर्थ जैन साधु के वेष में ही केन्द्रित समझा और वे अन्त में जैन भिक्षु बन गए। एक सफल कलाकार की भाँति मनुष्य जीवन के विभिन्न पहलुओं का मनोवैज्ञानिक रूप से सूक्ष्म निरीक्षण किया बुराइयों और अच्छाइयों का भी एक सफल शोधक की भाँति विश्लेषण किया और मनुष्य के समक्ष अपनी दिव्य वाणी के माध्यम से मनुष्य की अवस्था का दिग्दर्शन कराया।

गुरुदेव वाणी के धनी थे। उनकी वाणी मनुष्य के हृदय पर मर्मभेदी आघात करती थी। इसलिए नहीं कि वे मानव-भावनाओं पर कुठाराघात करें बल्कि इसलिए कि जो बुराइयाँ मानव के अन्तर्मन में प्रवेश कर चुकी थीं उनकी सत्ता हमेशा के लिए मिटा दें। उनकी वाणी में ओज टपकता था। तेज निरन्तर प्रवाहित होता था और प्राणियों के प्राणों में संचार को दुगनी कर देने की शक्ति निहित थी जिसने उनके व्याख्यान को एक बार सुन लिया वह हमेशा के लिए उनके बतलाए हुए मार्ग पर चला।

समय ने करवट बदली और गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज भारत-भूमि के कोने-कोने में घूमे। जनता के सोये हुए पुरुषार्थ को चुनौती दी। उनकी भावनाओं की निर्झरिणी में सजीवता के अछूते प्रवाह को प्रवाहित किया। मानव के करुण क्रन्दन ने उनके हृदय की भावनाओं को झकझोर दिया। उन्होंने मानव के आँसुओं को अपने ज्ञान के श्वेत वस्त्र से पोंछा। उनके विलपते हुए हृदय अपनी छाती से लगा लिए। वह युग पुरुष आगे बढ़ा। भगवान महावीर के महान् सिद्धान्तों का नवीन पुट देकर प्रतिपादन किया। अहिंसा और अनेकान्त के गम्भीर सिद्धान्तों का विपुल बनाया। विभिन्न दार्शनिक तथ्यों को जनता के समक्ष गम्भीर शैली में मूर्त रूप प्रदान किया।

कविता के कोमल भाव स्वर उनकी हृदय वाटिका में गूँजने लगे। उनके गुंजन स्वर उनकी

जीवन एक परिचय

विजय मुनि

युग-पुरुषों का जीवन सरिता के उस उद्गम स्रोत के समान होता है जो आरम्भ में तो लघु और छोटा होता है किन्तु आगे बढ़कर अन्य जल-स्रोतों का सहयोग पाकर विशाल और विराट होकर अन्त में सागर में पहुँचकर असीम और अनन्त हो जाता है। युग-पुरुष भी आरम्भ में लघु, फिर विराट और अन्त में अनन्त हो जाता है। क्यों कि उसकी वाणी में युग की वाणी बोलती है, उसके कर्म में युग का कर्म क्रियाशील बनता है और उसके चिन्तन में युग का चिन्तन चलता है। अतः युग-पुरुष अपने युग का प्रतिनिधित्व करता है, जनता का नेतृत्व करता है।

यहाँ पर मैं एक ऐसे ही युग-पुरुष का जीवन-परिचय दे रहा हूँ जिसने अपने युग के जन-जीवन को नया विचार, नयी वाणी और नया कर्म दिया। जिसने अपने युग की जनता को भोग-मार्ग से हटा कर योग-मार्ग पर लगाया, जिसने जन-मन के अज्ञान को मिटा कर ज्ञान का विमल प्रकाश दिया और जिसने जन-जीवन में संयम और तप की ज्योति जगा दी। वह युग-पुरुष कौन थे? वे थे—गुरुदेव श्रद्धेय रत्नचन्द्र जी महाराज।

जन्म-भूमि

वीर भूमि राजस्थान के जयपुर राज्य में एक तातीजा ग्राम था जिसमें गुर्जर राजपूतों की काफी आबादी थी। इतिहासकारों की दृष्टि में गुर्जर राजपूत गुर्जर प्रतिहार क्षत्रिय के वंशज हैं। राजस्थान में आज भी इन लोगों की काफी संख्या है। किसी युग में उत्तरी भारत और पूर्वी भारत के कुछ भागों में इनका विशाल साम्राज्य था। परन्तु सातवीं सदी के बाद निरन्तर अरबों का और मुगलों का आक्रमण होते रहने से अपनी सुरक्षा के लिए ये लोग बहुत बड़ी संख्या में राजस्थान में आकर आबाद हो गए। गुर्जर राजपूत स्वभावतः ही शूर वीर, धीर और गम्भीर होते हैं।

माता और पिता

गंगाराम जी तातीजा ग्राम के रहने वाले गुर्जर राजपूत थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम था—सरूपा देवी। पति और पत्नी दोनों सरल स्वभाव के थे। सन्तों की संगति में विशेष अभिरुचि रखते थे। सन्त-सतियों का जब कभी योग मिलता तो धर्म-कथा सुनने अवश्य पहुँचते थे। धर्म-चर्चा में उन्हें विशेष रस था।

गंगाराम जी और सरूपा देवी के अन्य भी कई पुत्र और पुत्रियाँ थे। परन्तु इनका सबसे छोटा और सबसे प्यारा पुत्र था—रत्नचन्द्र। बुद्धि में चतुर, रूप में सुन्दर और स्वभाव में मधुर। 'रत्न' का जन्म विक्रम संवत् १८२ में माघ मास की कृष्णा चतुर्दशी के शुभ मुहूर्त में हुआ था।

बाल्य-काल

रत्नचन्द्र का जीवन सुखद और शान्त था। माता का वात्सल्य, पिता का स्नेह और अपने ग बडे भाई-बहिनो का प्रेम उसे खूब मिला था। रूप और बुद्धि की विशेषता के कारण ग्राम के अन्य लोग भी उसकी प्रशसा करते थे। चारो ओर से उसे आदर मिलता था। रत्न सस्कारी बालक था। अत उसमे विनय, विचार-शीलता, मधुर वाणी और व्यवहार-शीलता आदि गुण खूब विकसित हुए थे। एक गुण उसमे विशिष्ट था—चिन्तन करने का। जीवन की हर घटना पर वह विचार और चिंतन करता था। अपने साथियो के साथ मे खेल-कूद भी करता था, परन्तु उसकी प्रकृति की गम्भीरता व्यक्त हुए बिना न रहती थी। वह खेलता-कूदता भी था, नाचता-गाता भी था, हँसता-हँसाता भी था और रूठता-मचलता भी था। बाल-स्वभाव-सुलभ यह सब कुछ होने पर भी उसकी प्रकृति की एक विलक्षणता थी—चिन्तन और मनन। प्रकृति के परिवर्तनो की घटनाओ को वह बडे ध्यान मे देखा करता था, और उन पर घटो विचार करता रहता था।

मृत्यु का दर्शन

रत्नचन्द्र अभी किशोर अवस्था मे ही था। एक दिन उसने अपनी आँखो से मृत्यु का साक्षात्कार कर लिया। उसने देखा, कि जगल मे घूमते-फिरते एक सुन्दर स्वस्थ गोवत्स (बछडे) पर एक क्रूर सिंह ने सहसा आक्रमण कर दिया। कुछ ही क्षणो मे उसे मार कर खा गया। उक्त दारुण घटना रत्नचन्द्र के लिए एक बोध-पाठ बन गई। अभी तक उसने जीवन की सुषमा ही देखी थी। आज जीवन के विपरीत भाव क्रूर मृत्यु को भी देख लिया।

वह जन्म, जीवन और मरण पर विचार करने लगा। यह जन्म अज्ञात है। यह जीवन सुन्दर है परन्तु यह मृत्यु क्या है ? यह बहुत क्रूर है। भयकर है। वह गम्भीर होकर जन्म, जीवन और मरण के क्रम पर चिन्तन और मनन करने लगा। विचार किया—यह ससार कितना क्रूर है ! यहाँ एक जीवन दूसरे जीवन का भक्ष्य है ! यह ससार विचित्र है, अद्भुत है। यह मृत्यु जिसे बछडे के जीवन मे, मैंने देखा है, क्या कभी मेरे जीवन में भी आएगी ? अन्दर से आवाज आई—अवश्य, अवश्य ही। रत्न को भव की विरक्ति का बीज मिल गया।

गुरु की खोज

रत्न अपने घर नहीं लौटा। वह उस गुरु की खोज मे निकल पडा, जो उसे मृत्यु के क्रूर पजो से बचा सके। उसने सोचा—माता से दुलार मिल सकता है, पिता से प्यार मिल सकता है, और परिवार एव परिजन से सम्मान मिल सकता है, किन्तु क्रूर मृत्यु से सरक्षण—इन सब से नही मिल सकता। वह मिलेगा, उस गुरु से जो स्वय मृत्युञ्जयी है। मृत्यु को जीतने के मार्ग पर चल रहा है। वह गुरु कौन है ? कहाँ पर मिलेगा ? रत्न इन्ही विकल्पो पर विचार करता-करता, सोचता-सोचता, नारनौल नगर पहुँच गया—जहाँ उसका अपना कोई परिचित नही था।

तपस्वी हरजीमल जी

जो खोजता है, वह पा लेता है। द्वार उसी के लिए खुलते है, जो खटखटाता है। रत्नचन्द्र,

जिसकी खोज में था वह गुरु उसे मिल गया। उस समय नारनौल नगर के धर्म-स्थानक में तपस्वी हरजीमल जी महाराज विराजित थे। रोज उनके प्रवचन होते थे। श्रोताओं की भीड़ में रत्न भी जा बैठा। तपस्वी जी के प्रवचन को सुनकर उसको शान्ति और सन्तोष मिला। विवेक और वैराग्य की अमृत वर्षा से रत्न को बड़ा आनन्द मिला। वह जिस वस्तु की खोज में था वह वस्तु उसे मिल गई।

एक दिन अवसर पाकर उसने अपने मन की बात गुरु के चरणों में रखी। बोला—गुरुदेव मैं भी आपके स्वीकृत पथ का राही बनना चाहता हूँ। क्या आप मुझे अपने चरणों में शिष्यरूप में स्वीकार करेंगे। गुरु ने शिष्य की योग्यता और तीव्रभावना को देख कर कहा—स्वीकार तो मैं कर लूंगा परन्तु अपने माता और पिता की अनुमति लेना तेरा काम होगा। गुरु की स्वीकृति पाकर रत्न परम प्रसन्न हो गया।

दीक्षा की अनुमति

राही को राह मिल ही जाती है। हेर-फेर हो भी जाए, यह भी सम्भव है। किन्तु राह न मिले यह कभी सम्भव नहीं। संसार के अन्य बन्धनों को तोड़ना आसान है पर माता की ममता का बन्धन तोड़ना सरल नहीं है। माता की आँखों का खारा पानी बड़ी ताकत रखता है। किन्तु मेघकुमार और अतिमुक्त कुमार जैसे दृढ़ संकल्पी बालकों के लिए माता की ममता का बन्धन भी बन्धन नहीं रहता। रत्नचन्द्र की राह में दिक्कतें बहुत थी पर उनके मनोबल ने सब पर विजय प्राप्त की। पिता को सहज समझा दिया किन्तु माता को बड़ा देर में समझा पाया। माता और पिता दोनों की ओर से उसे दीक्षा लेने की अनुमति मिल गई।

आगार से अनगार

तपस्वी हरजीमलजी महाराज की सेवा में एक वर्ष तक साधु जीवन की शिक्षा ग्रहण की। आचार शास्त्र का अध्ययन किया। साधक-जीवन के योग्य मुख्य बातों का अभ्यास किया। जब गुरु ने हर प्रकार से आप के जीवन की परीक्षा कर ली और आप को हर तरह से दीक्षा के योग्य पाया तो विक्रम संवत् १९९२ में नारनौल नगर में आप को दीक्षा दे दी। अब रत्न चन्द्र गृहस्थ से रत्नचन्द्र मुनि हो गए। दीक्षा के अवसर पर आपके माता और पिता तथा अन्य परिजन भी वहाँ उपस्थित थे। दृश्य परम मधुर था।

संयम और तप

दीक्षा ग्रहण करते ही रत्न मुनि ने संयम और तप की साधना प्रारम्भ कर दी। संयमी जीवन में वे सदा जागृत रहते थे। छोटी-छोटी सी बातों में भी अपने संयम का ध्यान रखते थे। विवेक से चलते विवेक से खाते, विवेक से बैठते विवेक से बोलते किंबहुना अपना हर काम विवेक से करते थे। संयम के साथ तप की भी साधना प्रारम्भ की। क्योंकि अपने तपस्वी गुरु से उन्हें तप की विशेष प्रेरणा मिली थी। तप और संयम के साथ-साथ अपने गुरु की सेवा भी उनके जीवन का लक्ष्य बन गया। तप संयम और सेवा—ये तीनों साधु-जीवन के विशेष गुण हैं जिनकी साधना उनकी निरन्तर थी।

विशेष अध्ययन

अपने दीक्षा गुरु से अध्ययन करने के बाद उन्हें विशेष अध्ययन करने की भावना जगी। गुरु ने

भी अपने शिष्य की तीव्र-जिज्ञासा को देख कर आगरा की सम्प्रदाय में तात्कालीन विद्वान और प्रख्यात पण्डित श्रद्धेय लक्ष्मीचन्द्र जी महाराज से रत्नमुनि को नियमित रूप से अध्ययन कराने की प्रार्थना की, जिसको उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। योग्य शिष्य को सुयोग्य गुरु मिल गया। रत्नमुनि जी ने अपनी पैनी बुद्धि से, प्रखर प्रतिभा से और स्मरणपूर्ण मेधा शक्ति से अल्पकाल में ही अपने कठोर परिश्रम से संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश जैसी प्राचीन भाषाओं को सीख लिया। आगम, दर्शन, साहित्य और ज्योतिष आदि शास्त्र का विशेष अध्ययन कर लिया।

धर्म-प्रचार

तप, संयम, सेवा और विशेष अध्ययन से परिपक्व होकर, अपने गुरु की आज्ञा लेकर रत्नमुनिजी ने धर्म प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया। जन-जीवन में नैतिक जागरण, धर्म-भावना और संस्कृति का खूब प्रचार और प्रसार किया। पण्डित मुनि रत्नचन्द्र जी महाराज ने अपनी विमल ज्ञान-गरिमा को पंजाब, राजस्थान, मध्य प्रदेश और विशेषत उत्तर प्रदेश के जन-जीवन में महामेघ के समान हजार-हजार धाराओं में बरस कर बिखेर दिया। आपने अनेक स्थानों पर शास्त्र-चर्चा भी की। लश्कर और जयपुर की शास्त्र-चर्चा आपकी प्रसिद्ध है। लश्कर में मूर्ति-पूजा पर रत्न विजय जी से और जयपुर में दया-दान पर पूज्य जीतमल जी से, आपने गम्भीर शास्त्र-चर्चा की थी। दोनों में आपकी प्रतिभा प्रखर थी।

नवीन क्षेत्र

आप के धर्म प्रचार के परिणामस्वरूप अनेक नवीन क्षेत्र बने। आगरा में लोहामंडी और फिर हाथरस, जलेसर, हरदुआगंज, लश्कर तथा जमुना पार में बडौत, बिनौली, एलम, दोघट एवं लिसाढ-परा सोली आदि अनेक क्षेत्र आप के दीर्घकालीन परिश्रम के प्रतिफल हैं। यहाँ के लोगों में आप के प्रति विशेष भक्ति और धर्ममय अनुराग था। लोहामंडी पर आपकी विशेष कृपा थी।

अध्यापन

आपने अपने जीवन-काल में, अनेक श्रावक और श्राविकों को तथा साधु और साध्वियों को समय-समय पर शास्त्रों का अध्यापन कराया था। पंजाब के प्रसिद्ध सन्त पूज्यपाद अमर सिंह जी महाराज और आत्माराम जी महाराज—जो बाद में मूर्तिपूजक परम्परा में सूरीश्वर विजयानन्द जी के नाम से प्रसिद्ध हुए—आप के सुप्रसिद्ध विद्या-शिष्य रह चुके थे। इनके सिवा भी कंवरसेन जी महाराज, विनयचन्द्र जी महाराज और चतुरभुज जी महाराज आदि अनेक सन्तों ने आप से अध्ययन किया था।

साहित्य-रचना

आपने अनेक आगमों के मूल पाठ और उनके टब्बों को लिखा था। आपके अक्षर बहुत सुन्दर-सुवाच्य थे। जैन सन्तों की यह एक विशिष्ट कला रही है। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा विरचित नवतत्त्व, मोक्ष-मार्ग-प्रकाश और गुण-स्थान-विवरण उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य को प्रकट करते हैं। उनका चर्चा-साहित्य उनकी प्रखर तर्कशक्ति की अभिव्यक्ति है। आप केवल लेखक ही नहीं थे, अपितु सफल कवि भी थे। आपने सगर चरित्र और सुखानन्द मनोरमा आदि चरित्रों की रचना की। आपके द्वारा रचित अनेकविध स्फुट अध्यात्म-पद आज भी जनकंठों से मुखरित होते रहते हैं।

श्री एस एस जैन संघ के अध्यक्ष

श्री रामगोपाल जैन

भी अपने शिष्य की तीव्र-जिज्ञासा को देख कर अपने ही सम्प्रदाय के तत्कालीन विद्वान और प्रखर पण्डित श्रद्धेय लक्ष्मीचन्द्र जी महाराज से रत्नमुनि को विशेष रूप से अध्ययन कराने की प्रार्थना की, जिसको उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। योग्य शिष्य को सुयोग्य गुरु मिल गया। रत्नमुनि जी ने अपनी पैनी बुद्धि से, प्रखर प्रतिभा से और तर्कपूर्ण मेधा शक्ति से अल्पकाल में ही अपने कठोर परिश्रम से सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश जैसी प्राचीन भाषाओं को सीख लिया। आगम, दर्शन, साहित्य और ज्योतिष आदि शास्त्र का विशेष अध्ययन कर लिया।

धर्म-प्रचार

तप, सयम, सेवा और विशेष अध्ययन से परिपक्व होकर, अपने गुरु की आज्ञा लेकर रत्नमुनिजी ने धर्म प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया। जन-जीवन में नैतिक जागरण, धर्म-भावना और सस्कृति का खूब प्रचार और प्रसार किया। पण्डित मुनि रत्नचन्द्र जी महाराज ने अपनी विमल ज्ञान-राशि को पजाब, राजस्थान, मध्य प्रदेश और विशेषत उत्तर प्रदेश के जन-जीवन में महामेघ के समान हजार-हजार धाराओं में बरस कर बिखेर दिया। आपने अनेक स्थानों पर शास्त्र-चर्चा भी की। लश्कर और जयपुर की शास्त्र-चर्चा आपकी प्रसिद्ध हैं। लश्कर में मूर्ति-पूजा पर रत्न विजय जी से और जयपुर में दया-दान पर पूज्य जीतमल जी से, आपने गम्भीर शास्त्र-चर्चा की थी। तर्क में आपकी प्रतिभा प्रखर थी।

नवीन क्षेत्र

आप के धर्म-प्रचार के परिणामस्वरूप अनेक नवीन क्षेत्र बने। आगरा में लोहामडी और फिर हाथरस, जलेसर, हरदुआगज, लश्कर तथा जमुना पार में बडौत, बिनौली, एलम, दोघट एव लिसाढ-परासोली आदि अनेक क्षेत्र आप के दीर्घकालीन परिश्रम के प्रतिफल हैं। यहाँ के लोगों में आप के प्रति विशेष भक्ति और धर्ममय अनुराग था। लोहामडी पर आपकी विशेष कृपा थी।

अध्यापन

आपने अपने जीवन-काल में, अनेक श्रावक और श्रावको को तथा साधु और साध्वियो को समय-समय पर शास्त्रो का अध्यापन कराया था। पजाब के प्रसिद्ध सन्त पूज्यपाद अमर सिंह जी महाराज और आत्माराम जी महाराज—जो बाद में मूर्तिपूजक परम्परा में सूरीश्वर विजयानन्द जी के नाम से प्रसिद्ध हुए—आप के सुप्रसिद्ध विद्या-शिष्य रह चुके थे। इनके सिवा भी कवरसेन जी महाराज, विनयचन्द्र जी महाराज और चतुरभुज जी महाराज आदि अनेक सन्तो ने आप से अध्ययन किया था।

साहित्य-रचना

आपने अनेक आगमों के मूल पाठ और उनके टब्बो को लिखा था। आपके अक्षर बहुत सुन्दर-सुवाच्य थे। जैन सन्तो की यह एक विशिष्ट कला रही है। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा विरचित नवतत्त्व, मोक्ष-मार्ग-प्रकाश और गुण-स्थान-विवरण उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य को प्रकट करते हैं। उनका चर्चा-साहित्य उनकी प्रखर तर्कशक्ति की अभिव्यक्ति है। आप केवल लेखक ही नही थे, अपितु सफल कवि भी थे। आपने सगर चरित्र और सुखानन्द मनोरमा आदि चरित्रो की रचना की। आपके द्वारा रचित अनेकविध स्फुट अध्यात्म-पद आज भी जनकठो से मुखरित होते रहते हैं।

श्री एस एस जैन संघ के अध्यक्ष

श्री रामगोपाल जैन

शास्त्र-चर्चा

आपने अपने युग में बहुत-सी शास्त्र-चर्चा की थी जिसमें—अजमेर में संवत् १९१७ में रत्नविजय जी से मूर्ति-पूजा पर की थी और जयपुर में संवत् १९१ में तेरापन्थ के आचार्य पूज्य जीतमल जी से दया और दान पर की। उसके सिवा तत्कालीन बहुत से यतियों से और आगरा में एक ईसाई पादरी से भी ईश्वर के कर्तृत्व पर आपने शास्त्र-चर्चा की थी।

अन्तिम साधना

सुनहरी उषा का प्रतीक अरुण-विन्यास बहुरंगी सन्ध्या में विलीन होता है। जन्म के साथ इति लगी रहती है। विक्रम संवत् १९२१ में वैशाखी पूर्णिमा के दिन जन जीवन को आलोकित करने वाला वह दिव्य आलोक विलीन हो गया। विवेक और वैराग्य का प्रखर भास्कर—जो राजस्थान के क्षितिज पर उदय हुआ था वह उत्तर प्रदेश के अस्ताचल पर अस्त हो गया। लोहामंडी के जैन भवन में संथारा की साधना विधिवत् पूर्ण करके पूज्यपाद श्रद्धेय गुरुदेव रत्नचन्द्र जी महाराज ने इस असार संसार को छोड़कर अमर पद प्राप्त किया।

अन्तिम सन्देश

आपने अपने भक्तों को अन्तिम सन्देश देते हुए कहा था। आप सब लोग धर्म की साधना करते रहना। अपनी श्रद्धा को शुद्ध और पवित्र रखना। अहिंसा संयम और तप रूप धर्म को जीवन में उतारने का प्रयत्न करना। परस्पर प्रेम-भाव के साथ रहना। अपने धर्म दर्शन और संस्कृति का प्रसार तथा प्रचार करते रहना। अपनी आत्मा को पावन और पवित्र रखने के लिए वीतराग-मार्ग पर अग्रसर होते रहना। तुम अपने धर्म की रक्षा करना और वह धर्म तुम्हारे जीवन की और तुम्हारी संस्कृति की रक्षा करेगा।

* * *

गुरुवर ! रत्नचन्द्र गुणधाम

(रानी जैन बी ए)

गुरुवर ! रत्न चन्द्र गुण-धाम विश्व में छाई कीर्ति ललाम।
वीर के पथ पर चल तुम दिखाया जैन धर्म का नाम॥

नहीं साधक कोई तब तुल्य गुणों का था तुममें बाहुल्य
प्राप्त कर मानव तन तूने बनाया जीवन को बहुमूल्य॥

धन्य है शान्ति क्षमा आगार धन्य तेरा जीवन व्यापार।
धन्य वो उत्कट साधना तेरी धन्य है धन्य तुम्हें अनगार॥

वाणी सदा थी अमृत की धार, शुद्ध संयम से तेरा प्यार।
चमक थी आननमय से पूर्ण गुरुवर तेरा था दीदार॥

* * *

गुरुदेव रत्नचन्द्र जी महाराज का परिचय

वीरेन्द्रसिंह एम० ए० इतिहास राजनीति

प्रत्येक युग में किसी न किसी दिव्य पुरुष का जन्म होता ही है जो अपनी महानता से अपनी दिव्यता से समाज को राष्ट्र को और संसार को जगमगा देता है। वह अपने युग के गले-सड़े और मिटे-पिटे विस्वाद विचार और आचार में क्रान्ति करता है। वह असत्य से तब तक लड़ता रहता है जब तक उसके तन में प्राण-शक्ति है मन में तेज है वचन में ओजस है। महापुरुष वही होता है, जो समाज को विकृति से हटाकर संस्कृति की ओर ले जाता है उसका गन्तव्य पथ कितना ही दुर्गम क्यों न हो? उसमें इतना तीव्र अध्यवसाय होता है कि उसके लिए दुर्गम भी सुगम बन जाता है। रास्ते के शूल भी फूल बन जाते हैं। लोग भले ही निंदा करें या प्रशंसा उसकी तनिक भी चिन्ता उसे नहीं होती। वह जन-जीवन का अनुसरण नहीं करता। जन-चेतना स्वयं ही उसका अनुसरण करती है। क्योंकि वह जो कुछ सोचता है जन-कल्याण के लिए, वह जो कुछ बोलता है जन-सुख के लिए, वह जो कुछ करता है जन-मंगल के लिए।

स्थानकवासी समाज में समय-समय पर अनेक युग-पुरुष हो चुके हैं। समाज को उन्होंने नया कर्म दिया नयी वाणी दी और नया विचार दिया। यदि उन युग-पुरुषों ने समाज को यह संबल न दिया होता तो समाज कभी का छिन्न-भिन्न हो गया होता। समाज के एकमात्र आधार वे ही युग पुरुष होते हैं जो समय आने पर अपने प्राणों की आहुति देकर समाज को आलोक प्रदान करते हैं। वे ज्योतिर्मय युग-पुरुष धन्य हैं जो समाज को पतन के महागर्त से बचा कर उत्थान के महामार्ग पर ले जाते हैं।

स्थानकवासी समाज के युग-पुरुषों की इसी परम्परा में मेधावी गुरुदेव रत्नचन्द्र जी महाराज थे जिन्होंने समाज को नया विचार, नया चिन्तन और नयी वाणी दी। वस्तु तत्व को सोचने-समझने और परखने का नया तरीका एवं नया ढंग दिया। अन्धविश्वास में फँसे हुए मानव को नया मार्ग दिखाया। समाज के कल्याण के लिए जो कुछ भी किया जाना उचित था वह सब उन्होंने किया।

आज समाज में ऐसा कौन व्यक्ति है जो गुरुदेव और उनके कार्यों से परिचित न हो। श्रद्धेय गुरुदेव का जन्म संवत् १८५ में जयपुर राज्य के तातीजा ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम गंगाराम जी और माता का नाम सरूपा देवी था। माता का दुलार और पिता का स्नेह आपको खूब खुलकर मिला। बचपन से ही आप बड़े साहसी थे। दुख और कठिनाइयों से आप कभी भयभीत नहीं होते थे। यही कारण था कि बड़ी से बड़ी मुसीबतों को सहज में ही पार कर लेते थे। वीरता और कष्ट सहिष्णुता आपके पैतृक गुण थे। बाल्यकाल से ही आपका झुकाव आध्यात्मिकता की ओर था। अतः साधु संगम में आपको अपार आनन्द की अनुभूति होती थी। फलस्वरूप सन् १ ६२ में जब

कुछ श्रद्धा के मोती

प्रेमनाथ जैन

कहाँ जा बसे हो, ओ गुरुदेव आओ।
भँवर में है किश्ती, किनारे लगाओ ॥

कभी मैं गगन के सितारों से पूछूँ—
तुम्हें मैं तुम्हारी समाधि पै ढूँढूँ,
हुए सौ बरस अब तो दर्शन दिखाओ।
भँवर में है किश्ती किनारे लगाओ ॥१॥

हमारा जलज नैन मूँदे खड़े हैं—
सरोवर के जल बीच सोए पड़े हैं,
ओ दिनकर! हमारे उन्हें आ जगाओ।
भँवर में है किश्ती किनारे लगाओ ॥२॥

सुना है प्रभो! लाखों पतितों को तारे—
क्या उनसे विकट हैं करम दुख हमारे?
इन कर्मों के बन्धन से मुझको छुड़ाओ।
भँवर में है किश्ती किनारे लगाओ ॥३॥

शताब्दी शुभ घड़ी गर आई न होती—
चढ़ाते नयन कैसे श्रद्धा के मोती,
हम शिष्यों पै गुरुवर! दया-दृष्टि लाओ।
भँवर में है किश्ती किनारे लगाओ ॥४॥

☆

गुरुदेव रत्नचन्द्र जी महाराज का परिचय

धीरेन्द्रसिंह एम ए इतिहास राजनीति

प्रत्येक युग में किसी न किसी दिव्य पुरुष का जन्म होता ही है जो अपनी महानता से अपनी दिव्यता से समाज को राष्ट्र को और संसार को जगमगा देता है। वह अपने युग के सड़े-गले और पिसे-पिटे विश्वास विचार और आचार में क्रान्ति करता है। वह असत्य से तब तक लड़ता रहता है जब तक उसके तन में प्राण-शक्ति है मन में तेज है वचन में ओजस है। महापुरुष वही होता है, जो समाज को विकृति से हटाकर संस्कृति की ओर ले जाता है उसका गन्तव्य पथ कितना ही दुर्गम क्यों न हो? उसमें इतना तीव्र अध्यवसाय होता है कि उसके लिए दुर्गम भी सुगम बन जाता है। पथ के शूल भी फूल बन जाते हैं। लोग भले ही निन्दा करें या प्रशंसा उसको तनिक भी चिन्ता नहीं होती। वह जन-जीवन का अनुसरण नहीं करता। जन-चेतना स्वयं ही उसका अनुसरण करती है। क्योंकि वह जो कुछ सोचता है जन-कल्याण के लिए, वह जो कुछ बोलता है जन-सुख के लिए, वह जो कुछ करता है जन-मंगल के लिए।

स्थानकवासी समाज में समय-समय पर अनेक युग-पुरुष हो चुके हैं। समाज को उन्होंने नया जन्म दिया नयी वाणी दी और नया विचार दिया। यदि उन युग-पुरुषों ने समाज का यह सबल न किया होता तो समाज कभी का छिन्न-भिन्न हो गया होता। समाज के एकमात्र आधार वे ही युग पुरुष होते हैं जो समय आने पर अपने प्राणों की आहुति देकर समाज को आलोक प्रदान करते हैं। वे ज्योतिर्मय युग-पुरुष धन्य हैं जो समाज को पतन के महागर्त से बचा कर उत्थान के महामार्ग पर ले जाते हैं।

स्थानकवासी समाज के युग-पुरुषों की उसी परम्परा में अंतिम गुरुदेव रत्नचन्द्र जी महाराज थे जिन्होंने समाज को नया विचार, नया चिन्तन और नयी वाणी दी। वस्तु तत्त्व को सोचने-समझने और परखने का नया तरीका एवं नया ढंग दिया। अन्धविश्वास में फँसे हुए मानव को नया मार्ग दिखाया। समाज के कल्याण के लिए जो कुछ भी किया जाना उचित था वह सब उन्होंने किया।

आज समाज में ऐसा कौन व्यक्ति है जो गुरुदेव और उनके कार्यों से परिचित न हो। गुरुदेव का जन्म संवत् १ ५ में जयपुर राज्य के तातीजा ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम गंगाराम जी और माता का नाम सरूपा देवी था। माता का दुलार और पिता का स्नेह आपको खूब जमकर मिला। बचपन से ही आप बड़े साहसी थे। दुःख और कठिनाइयों से आप कभी भयभीत नहीं होते थे। यही कारण था कि बड़ी से बड़ी मुसीबतों को सहज में ही पार कर लेते थे। वीरता और कष्ट सहिष्णुता आपके पैतृक गुण थे। बाल्यकाल से ही आपका झुकाव आध्यात्मिकता की ओर था। साधु सन्तों में आपको अपार आनन्द की अनुभूति होती थी। फलस्वरूप सन् १ ६२ में वह

महान सन्त

देवेन्द्र कुमार जैन

ओ युग के महान सन्त
करता हूँ तुझको मैं नमस्कार

तेरी पावन पुण्य स्मृति मे,
करता हूँ तुझको मैं नमस्कार।

तूने है जन-जन मे किया चमत्कार,
ओ युग के महान सत,
करता हूँ मैं तुझको नमस्कार।

तू जैन न था, जन का था,
जन को तूने जैन किया,
जिस धरा पर तूने कदम धरा,
तेरा ही गुण गान हुआ।

ओ युग के महान सत,
करता हूँ मैं तुझको नमस्कार।

एक युग पूव तू आया था,
पथ भ्रष्ट हुए मानव को,
मार्ग दिखाने आया था,
श्री वीर के सन्देश बताने आया था।

आ युग के महान सन्त,
करता हूँ मैं तुझको नमस्कार।

☆

गुरुदेव श्री रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ एवं रत्न-ज्योति के प्रतिमासम्पन्न
कला एवं सज्जा निर्देशक

श्री श्रवण कुमार जैन

पूज्य गुरुदेव के श्री चरणों में

भवन कुमार जैन

स्फटिक मणि-सा उज्ज्वल निर्मल
शुभ्र रहा गुरु का जीवन।
था भूमिमान बहु समाधान
कैसा होता जीवन-पावन।

पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज अपने युग की अमर विभूति थे। उन्होंने अपने जीवन को मानव-कल्याण के लिए अर्पित कर दिया था। त्याग व तपस्या के पथ पर चलकर ज्ञान व आत्मा के पुंजीभूत प्रकाश-स्तम्भ पूज्य गुरुदेव दया क्षमा करुणा प्रेम सरलता व मुदिता के आगार थे। पूज्य गुरुदेव का जीवन शरद चन्द्रिका से पूरित निर्मल आकाश-सा महान व वंदनीय था।

बाल्यकाल से ही पूज्य गुरुदेव लौकिकता के प्रति उदासीन भाव रखते थे। यद्यपि माता-पिता की सेवा करना घर के काम-काज में हाथ बटाना तथा संगी-साथियों के प्रति स्नेहपूर्ण अपनत्व भाव रखना आदि कुछ ऐसे गुण थे जिनसे उनका बाल्य जीवन अलंकृत था परन्तु जीवन के प्रति उनके मन में इतना मोह न था कि वे आत्मा की आवाज भी न सुन पाते।

पूज्य गुरुदेव ने जीवन को गहराइयों में बैठकर निरखा व परखा था। उनके लिए जीवन स्वप्न मात्र था। जीवन की उलझी गुत्थियों को सुलझाने में वह सिद्धहस्त थे। जीवन के गुरु-गम्भीर रहस्य गुरुदेव की सरल वाणी पा मृदुल-मधुर बन गए थे। जीवन में समर्पण आता था और समर्पण में सार्वनिष्ठा का बाना धारण कर लिया था। त्याग और तपस्या ने जीवन को निर्मलता दी थी। गुरुदेव सच्चे अर्थों में गुरुदेव थे।

जीवन के साथ-साथ गुरुदेव ने मृत्यु के साक्षात् दर्शन किए थे। यह भी एक घटना थी जो निश्चय ही ईश्वर की प्रेरणा से घटित हुई थी। पूज्य गुरुदेव बैलों की जोड़ी की देखभाल करते-करते वन में पहुँच गए। यमराज शेर के रूप में प्रस्तुत थे। अपनी पेट की भूख मिटाने के लिए उस शेर ने बैलों के जीवन की निर्दयतापूर्वक बलि ले ली। सम्भवत यही घटना उनके जीवन को नया मोड़ देने वाली थी।

पूज्य गुरुदेव अपने गुरुवर उग्र तपस्वी श्री हरजीमल जी महाराज के श्रीचरणों में बैठकर आध्यात्मिक ज्ञान अर्जित करने लगे। शरीर की बनती-मिटती रेखाएँ धीरे-धीरे आत्मा के आलोक की उज्ज्वलता में डूबने लगी और महावीर स्वामी की मोहनी मूर्ति हृदय-मन्दिर में प्रतिष्ठित होने लगी।

तपस्या ने पूज्य गुरुदेव के ज्ञान-चक्षुओं को ज्योति दी और वह आत्म-कल्याण के साथ मानव-कल्याण का पथ प्रशस्त करने लगे ।

मनुष्य के धार्मिक विश्वास न एक दिन मे बनते न एक दिन मे मिटते । उनकी जडें बडी गहरी होती है । इन धार्मिक विश्वासो की रक्षा के लिए मनुष्य, राष्ट्र और यहाँ तक कि विश्व मरने-मिटने पर उतर आता है । कहने का अभिप्राय यह है कि धार्मिक विश्वासो को किसी नयी दिशा मे मोड देना कोई सरल सहज कार्य नही होता । पूज्य गुरुदेव ने ऐसे ही कष्टसाध्य कार्य का सरल बनाने का बीडा उठाया, उन्होंने आगरा, हाथरस, जलेसर, टूण्डलागज, एलम, दोघट, सिनाट, सैनपुर, परासौली आदि अनेक क्षेत्रों को प्रतिबोधित किया तथा उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा देहली प्रान्त मे विहार किया । अपने चरण कमल की पावन रज से पूज्य गुरुदेव ने लोहामण्डी का भी उद्धार किया । पूज्यपाद अमर मुनिजी के शब्दो मे—

> धन्य था वह दिन जब गुरु,
> आप लोहामण्डी पधारे ।
> सिन्धु से मिथ्यात्व विष के,
> भव्य मति प्राणी उबारे !
>
> नैश तिमिराच्छन्न पथ मे,
> आप बनकर सूर्य आए ।
> सत्य और असत्य क्या है,
> भेद सब अणु-अणु दिखाए ।

हम आगरा लोहामडी वासी गुरुदेव के बडे प्रिय थे, उन्होने अपनी तपस्या का प्रसाद यहाँ के निवासियो को दिल खोलकर बाँटा था । धन्य थे वे लोग, जिन्होने उनके दर्शन किए थे और जिन्होंने उनके प्रसाद का पुण्य प्राप्त किया था । धन्य हैं वे लोग, जिन्होंने धर्म की उस मशाल को प्रज्वलित बनाए रखने मे सहयोग दिया है, जो मानव-कल्याण के लिए बनाई गई थी । धन्य हैं वे लोग, जो आज उनके द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलकर अपना कल्याण करते है ।

गुरुदेव शरीर से आज इस ससार मे नही हैं, किन्तु धर्म के अलौकिक आलोक के रूप मे ससार का भौतिक तम हटाने वाले प्रभु के रूप मे उनका अस्तित्व आज भी बना हुआ है । वह अपने भक्तो के मनोरथ पूर्ण करते हैं । सकटो से बचाते है और लौकिक व पारलौकिक समानता प्रदान करते हैं ।

पूज्य गुरुदेव की महानता का इससे बडा और क्या उदाहरण हो सकता है कि पूज्य गुरुदेव के प्रति श्रद्धा-भाव रखने वाले भक्तो की सख्या आकाश मे जगमगाते तारो की भाँति भारत के कोने-कोने मे फैली हुई है और उनकी श्रद्धा कभी बुझी नही वरन् श्रद्धा को सदैव प्रसाद मिला । कीर्तिमुनि जी के शब्दो मे—

> पूज्यपाद गुरु रत्नचन्द्र की
> महिमा अगम अपार रही ।

किस प्रकार सीमित शब्दों में,
भला किसी से जाय कही।
अन्तहीन नभ का जैसे
कोई छोर नहीं पा सकता है।
इसी तरह गुरुवर की महिमा
कौन भला पा सकता है।

इन शब्दों के भाव जानते व मानते हुए भी पूज्य गुरुदेव को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना सूर्य को दीपक दिखाना है और ईश्वरीय व्यक्तित्व मानवीय कामनाओं के इच्छुक नहीं होते। पूर्ण भक्ति-श्रद्धा के साथ पूज्य गुरुदेव के श्री चरणों में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ तथा महावीर स्वामी से प्रार्थना करता हूँ कि उनके चरण कमल की पावन सुरभि से सदा मन का मधुप गुंजता रहे। पूज्य गुरुदेव के प्रति निर्मल भक्ति व स्वार्थहीन श्रद्धा भाव बना रहे। मैं सदैव यह प्रार्थना करता हूँ—

हे रत्न चन्द्रजी महाराज हमें यह वर दो! हमें यह वर दो—तुम हो मल्लाह इस टूटी नइया के इस टूटी नइया के भव सागर से क्षेम पार इसे कर दो हे रत्नचन्द्र जी महाराज—

* * *

समकित रत्न प्रदान कर,
दी मिथ्या को हार।
रत्नचन्द्र गुरु देव का
है म्हाँ पर उपकार॥

★

तुम्हारे क़दमों में

मुनि श्री कीर्तिचन्द्र जी "मशहूर"

गुरुदेव हमारे राहनुमा बन करके यहाँ पर आए थे ।
गुरुदेव जमाने की खातिर पैगामे-हक़ीक़त लाए थे ॥
मजमूअए-औसाफ थे, उनके पास से इल्म की दौलत थी ।
गुरुदेव की पाकीजा हस्ती दुनियाँ को बाइसे-रहमत थी ॥
कर दिया उन्होंने आशनाए-राजे-वहदत दुनिया को ।
और करके इनायत कर डाला शनासाए-तरीयत दुनिया को ॥
दुनिया को सबक पढ़ाया था गुरुदेव ने पाक मुहब्बत का ।
आलम को शैदाई बना डाला उन्होंने ही आदमीयत का ॥

शैतानियत के जुल्मो से गुरुदेव ने सबको बचाया था ।
और जहने-आदमीयत से पर्दाए-ऊवाम उठाया था ॥
गुरुदेव नया ऐहसास और बीदारी जगाने आए थे ।
गुरुदेव सदाक़त का नगमा दुनियाँ को सुनाने आए थे ॥
परचार सदाक़तो उल्फत का कर डाला सारे जमाने मे ।
था कौमी दर्द निहाँ उनके दिल के हर एक तराने मे ॥
तहारत के थे सरचश्मा वोह गुरुवर इखलास के मखजन थे ।
तौहीद के सगम थे गुरुवर वोह मुहब्बत के मआदन थे ॥

भर दिया वेखिजा बहारों से गुरुदेव ने क़ौमी गुलिस्ताँ को ।
ताहश्र नहीं हम भूलेंगे गुरुदेव तेरे इस ऐहसा को ॥
आलाओ अदना की भेद भरी दीवारें गिराने आए थे ।
दुनिया को बाहमी उल्फत का अमृत वोह पिलाने आए थे ॥
गुरुदेव सिदक मुजस्सिम थे और इखलाक के थे बानी ।
ढूँढे से नही मिल सकता कही गुरुदेव का दुनिया मे सानी ॥
थी हक़ की इबादत सिखलाई गुरुदेव ने अहले-दुनिया को ।
रास्ती की राह थी बतलाई गुरुदेव ने अहले-दुनिया को ॥

श्री एस एस जैन संघ के प्रधानमन्त्री

श्री पदमकुमार जैन

हमको तहज़ीबे-नाजी का बाग़ाजो पौदा बनाया है।
इसने वहदते कौमी का एक रस्ता हमें दिखलाया है॥
गुरुवर ने बयाए-सदाक़त से बज़्मे-दुनिया को किया रोशन।
गुरुवर ने बनाया इन्सां के हर दिल को मुहब्बत का मसकिन॥
मशहूर तुम्हारी ज़िन्दगानी मशहूर तुम्हारी है बानी।
मशहूर तुम्हारी सन्नत है मशहूर सदाक़त इन्सानी॥
बस तेरी बताई राहों से इन्सान को मंज़िल मिलती है।
बस तेरी बताई ज़िन्दगानी सन्नत के साँचे में ढलती है॥

बस इसके सिवा क्या पेश करे "मशहूर" तुम्हारे क़दमों में।
ये बागे-सखुन के पेशेनज़र कुछ गुल हैं तुम्हारे क़दमों में॥

★

गुरु-महिमा

कविवर मोहनलाल मकरन्द

उपकार के हेतु शरीर धरी
गुरु नैन पड़ी सबको दरसायो।
सब मोह जंजाल निवारि के
ज्ञान की दान दे चित्त जगायो।

तुम जीवन-रंक को रत्न मिल्यो
तिमि घोर मे चन्द्र छटा छिटकायो।
रही करुणा मधुरी पै सदा
तन दान दै जन्म पुनीत बनायो।

★

चमकता सूर्य : दमकता जीवन

मुनि हेम

भारतीय सस्कृति के पुरातन पृष्ठ जव उद्घाटित होकर हमारे सम्मुख आते हैं, तो हमे स्पष्टतया ज्ञान होता है कि जब-जब सस्कृति मे विकृति आई, जनता तप एव त्यागमय नैतिक अनुष्ठानो को छोड़-कर जब-जब इन्द्रिय-पोपण रूप भोगो की ओर दौड़ी। अभ्युदयशील जीवनस्पर्शी महत्त्वपूण मर्यादाओ का जब-जब जनता ने उलघन किया, जनता ने जब-जब सदमर्यादाओ को छोडकर कुरीतियो एव विनाशक रूढियो को अपनाया, धर्म के नाम पर जब-जब अधर्म का बोलवाला हुआ, अत्याचार, दुराचार और पापाचार की जब-जब काली घटाएँ सब ठौर चहुँओर छाइ और जब-जब धमध्वजी कहलाने वाले तथा कथित दभियो ने पाखड-जाल फैलाकर जनता को गुमराह करना चाहा, तब-तब त्रस्त जनता की कातर पुकार पर किसी न किसी महापुरुष का भारत मा की गोद मे आना हुआ, अवतरण हुआ, जिसको प्राप्त कर जनता आनन्दित, उल्लसित और हर्ष-विभोर हो उठी। जिनके द्वारा जनता का कल्याण हुआ, उद्धार हुआ, अधर्म हटा, धम की स्थापना हुई। जनता ने उन महापुरुषो को नि सकोच होकर अपना पथ-प्रदर्शक चुना और उन्ही का दृढ अवलम्बन लेकर एक दिन जीवन की सफलता प्राप्त की।

ये उद्धारक महापुरुष किसी भी जाति या देश के क्यो न हो, किसी भी सम्प्रदाय अथवा वश के क्यो न हो, उनका तो एकमात्र अटल सिद्धान्त—"आत्मवत् सवभूतेपु" ही हुआ करता है। वे सभी के हुआ करते हैं और सब उनके। अन्तरहृदय मे तो उनके इतनी उज्ज्वल उदार एव विशाल स्नेह-धारा प्रवाहमान होती है कि उनमे मेरे तेरे की भेदभरी द्वैत भावनाओ का विपय कलुप होता ही नही, उनके निमल दुग्ध-से धवल मानस मे विपमता नही, अपितु समता एव प्राणिमात्र के प्रति ममता ही निवास किया करती है। उन महापुरुषो के मन, वचन और कर्म तीनो ही स्वहित के साथ-साथ पर-हित मे ही सलग्न रहा करते हैं। कथनी और करणी उनकी एक ही हुआ करती है। उसमे अन्तर तो कथमपि कदापि पडा ही नही करता।

उन्ही युग पुरुष महापुरुषो की उतम श्रेणी मे सन्त-रत्न परमपुरुष श्रद्धेय पूज्य प्रवर श्री रत्नचन्द्र जी महाराज का नाम भी अग्रगण्य रूप मे लिया जा सकता है। वह राजस्थान जिसको वीर-भूमि के रूप मे सर्वोपरि गौरवपूण उच्चस्थान प्राप्त है, वह राजस्थान जहाँ अनेक-अनेक धम तथा कमवीरो ने जन्म लेकर उसके भाल को ऊँचा किया, उन्नत किया, और उसके गौरव को बढ़ाया , उसी राजस्थान मे जयपुर राज्यान्तगत तातीजा नामक ग्राम मे माता स्वरूपा देवी एव पिता गगाराम जी के घर मे बालक रतनकुमार ने जन्म लिया और उस जन्म-भूमि के गौरव को चार चाँद लगा दिए।

धन्य वह घडी! धन्य वह दिन! जिस शुभ दिन और शुभ घडी मे जन्म लिया। पुण्यवान वह

माता और भाग्यशाली वह तात जिनके घर का दीपक बना वह तेजस्वी बालक। पवित्र है वह भूमि जिसकी स्वर्ण-धूलि में खेला-कूदा वह बाल रत्न। पुत्र-रत्न को पाकर माता-पिता के हर्ष का पार न रहा। हर्ष हो भी क्यों न! कुशल नीतिकार ने भी तो उनकी हाँ में हाँ मिला दी—

> शर्वरी-दीपकश्चन्द्रः
> प्रभाते दीपको रविः।
> त्रैलोक्ये दीपको धर्मः
> सत्पुत्रः कुल-दीपकः॥

अर्थात् रात्रि का दीपक चन्द्रमा दिन का दीपक दिनकर त्रैलोक्य का दीपक धर्म तथा उत्तम पुत्र कुल-दीपक होता है।

तो उस शिशु रत्न की सुन्दर आकृति और उत्तम प्रकृति पर सब ही तो मुग्ध थे। यह बात सत्य है कि बच्चे के वर्तमान अन्तर हृदय के संस्कार ही भावी जीवन के निर्माता होते हैं। प्रातःकालीन उषा की यह प्रस्फुटित आभा ही सूर्योदय होने की द्योतक होती है। माता-पिता आदि समस्त परिवार की ओर से बालक रत्न को मुक्त हृदय से मधुर-मधुर प्यार मिला दुलार मिला धर्म का नैतिक संस्कार मिला। शुक्ल पक्ष की द्वितीया के चन्द्र के सदृश बालक रत्न दिन-प्रतिदिन विकसित होने लगे। उनके उत्तम मधुर व्यवहार से सभी जन प्रसन्न व खुश थे। बाल-अवस्था में प्रायः प्रकृति की ओर से स्वभाव तो सरल मिलता ही है। महात्मा ईसा तो यहाँ तक कहते हैं कि— 'यदि तुम्हें ईश्वर के दर्शन करने हैं तो एक नन्हे शिशु के दर्शन कर लो। ईश्वर में और उसमें कोई भेद नहीं अन्तर नहीं।

तातीजा निवासी भी अपने भाग्य की हजार-हजार बार सराहना करते थे उस दिव्य भव्य-आत्मा बालक रत्न को पाकर। बालक रत्न के सद्व्यवहार तथा शरीर पर पड़े अनेक उत्तम लक्षणों को देख कर कुछ सयाने लक्षण-वेत्ताओं ने यह अनुमान पहले ही लगा लिया था कि यह तेजस्वी बालक भविष्य में एक महान युग-पुरुष बनेगा। यह मात्र एक घर का दीपक ही नहीं अपितु हजार-हजार बल्कि लाख-लाख घरों का दीपक बनेगा। धर्मवीर बनकर धर्म-ध्वज को देश के कोने-कोने में लहराएगा फहराएगा। सूर्य के समान स्वयं भी चमकेगा-दमकेगा तथा संसार को भी अपनी ज्ञान-ज्योति से जगमगायेगा। सदा चार की भीनी सुगंध से स्वयं भी सुवासित होगा तथा उस सौरभ से अनेक-अनेक जीवन को भी सुरभित करेगा। और एक दिन उनका अनुमान सोलह आने सत्य ही निकला।

तन छोटा किन्तु मन बड़ा ही विशाल था—बालक रत्न का। उनके मानस महोदधि में मनन-चिन्तन की बड़ी-बड़ी लहरें लहराने लगीं तरंगें उठने लगीं। वस्तुतः वह महान् आत्मा थे। तब भला वह संसार की मोहाकीर्ण अंधी गलियों में कहाँ अटकने और भटकनेवाले थे। शिशु अवस्था का हास अभी किशोरावस्था में पनपा ही था कि पूर्व जन्म के अन्तर मन में सुप्त त्याग-वैराग्य के आध्यात्मिक संस्कार जागृत होकर बाहर आने लगे। सच है— भेड़ बकरियों में वनराज सिंह तभी तक सम्मिलित होकर रह सकता है जब तक कि उसे स्वयं अपना भान नहीं होता ज्ञान नहीं हो पाता। निज भान होते ही वह—विशाल गहन वन का एकाधिपति होकर सर्वतन्त्र स्वतन्त्र निर्भय हो विचरण करता है। बालक

उनका हृदय द्रवित हो उठता था। वे उपकारी सन्त थे। महापुरुषो की जिन्दगी ही उपकार के लिए होती है।

"महापुरुषों को होता है, हमेशा प्यार दुखियों का,
उन्हें ही तो सताता है, हमेशा प्यार दुखियो का॥

परोपकाराय सता विभूतय—के अनुसार गुरुदेव का जीवन था। महापुरुष ससार म लेते हैं कम और देते हैं अधिक। पूज्य गुरुदेव ने भी समाज से लिया कनभर और समाज को उन्होंने दिया मनभर। वे तो हमेशा ज्ञान-सम रस उदार हृदय से लुटाते ही लुटाते रहे सब जन-हिताय सब जन-सुखाय।

काल की गति विचित्र है। यह तो अबाध रूप मे अपना कार्य करता ही रहता है। इस जगतीतल पर आज तक ऐसा कोई भी व्यक्ति या प्राणी नही आया जो जन्मा हो, किन्तु मरण को प्राप्त न हुआ हो? 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु' यह अटल सिद्धान्त है।

सूय प्रात उदय होता है तो साय को अस्त भी हो जाता है। फूल खिलता है तो अन्त मे मुर्झाता भी है। अस्तु वह महापुरुष भी एक दिन उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध नगर लोहामडी आगरा मे अमरलोक के वासी बने। महापुरुषो का माग निराला होता है, इस दुनियां से। गुरुदेव की विशेषता यह रही कि—सूर्य तो हमेशा पूर्व मे उदय होता है और अस्त पश्चिम मे। पर वह सूर्य तो पश्चिम राजस्थान मे उदय हुआ और पूव मे जाकर अस्त हुआ। गुरुदेव ने अपनी साधना से दिव्य अमरलोक प्राप्त कर लिया। उनके जीवन की मरता, अमरता मे परिणत होगई। भले ही गुरुदेव की भौतिक देह आज नही रही, परन्तु उनका अध्यात्म शरीर पहले भी था, आज भी है और भविष्य मे भी रहेगा।

* * *

गुरु देव हमारे राहनुमां,
बनकर के यहाँ पर आए थे।
गुरुदेव जमाने की खातिर,
पैग़ामे हक़ीक़त लाए थे॥

★

श्री एस एस जैन सघ के कोषाध्यक्ष

श्री जगन्नाथ प्रसाद जैन

रत्न को भी तो इसी प्रकार सयम के नदन वन का स्वामी होकर विचरण करना था न। अतएव उनके मन मे भी आध्यात्मिक विकास की शान्तिमूलक भावनाए जागृत हो उठी। सासारिक सुख-वैभव से नाता तोडने तथा स्व-कल्याण और पर-कल्याण से नाता जोडने के लिए नित्य निरतर प्रगति की ओर उनके नन्हे चरण प्रगति करने लगे।

फलत अपनी त्याग-वैराग्यपूर्ण आन्तरिक पवित्र भावनाओ को मूर्तरूप देने के लिए, अब बालक को सच्चे सद्गुरु की खोज थी। टोह थी। जो सच्चे हृदय से खोजता है, वह एक दिन अपने अभीष्ट को अवश्य प्राप्त कर ही लिया करता है—"जिन खोजा तिन पाइया" के अनुसार बालक रत्न की यह खोज भी पूर्ण हुई। जिन सद्गुरु की उन्हे तलाश थी वे त्यागी, तपस्वी, ज्ञानी और ध्यानी सन्त मिल ही गए। वह थे—आचार्य पूज्य चरण आदर्श सयमी श्रद्धेय श्री हरजीमलजी महाराज। जिनके पावन चरणो मे रहकर बाल रत्न ने साधु-चर्चा की विधि का कठिन विधान पढा, अनुभव किया और उस पर चलने के लिए अपने मन को मजबूत बनाया। उधर गुरुवर ने भी शिष्य का भली प्रकार से निरीक्षण किया, परीक्षण किया। अच्छी तरह से जांचा और परखा। गुरु ने जाना कि यह बच्चा तरण हार है। शिष्य ने गुरु को माना कि ये वास्तव मे तारण-हार है। इस प्रकार एक दूसरे की कसौटी पर खरे उतरे। परीक्षा मे दोनो सफल है, उत्तीर्ण हैं। अस्तु एक दिन—

पटियाला राज्यान्तगत नारनौल नामक प्रसिद्ध नगर म विक्रम स० १८६२ भाद्रपद शुक्ला छठ के शुभ दिन इस नन्हीं तरुणाई मे ही बालक रत्न ने दुष्कर आध्यात्मिक साधना का उत्कृष्ट-पथ अपना ही तो लिया। माता-पिता की सहर्ष आज्ञा प्राप्त करके ऊचे भावो से श्रद्धेय आचार्य श्री हरजीमलजी महाराज के पावन चरणो मे साधु जीवन स्वीकार किया और दीक्षा ग्रहण की। बन गए अब रत्नकुमार से सन्त रत्न वे मुनि रत्न। सयम-पथ के सच्चे पथिक। दृढता और सचाई के साथ सयम साधना की कठोर आराधना चालू की।

इधर सयम-साधना हो रही है, उधर उनके मानस म ज्ञानाजन की प्रबल जिज्ञासा भी पैदा हुई, जिसको प्राप्त कर सयम मे चमक पैदा होती है। उनकी बुद्धि बडी तीव्र थी और उनकी प्रतिभा भी अति-विशाल थी। गुरुदेव के चरणो मे बैठकर उन्होंने विनम्र भाव मे बहुत कुछ सीखा, बहुत कुछ ज्ञान-अजन किया। लेकिन ज्ञान की तो कोई थाह है ही नही। वह तो असीम है। अनन्त है। मुनि रत्न की ज्ञान-पिपासा अभी शान्त न हुई थी। उनकी प्रबल अभिलाषा थी कि किसी प्रकाण्ड विद्वान से दार्शनिक, गम्भीर एव विशिष्ट अध्ययन किया जाए। फलत उनकी इच्छा पूर्ण हुई। उस युग के उच्च कोटि के तत्ववेत्ता विद्वान महामुनि पडित श्री लक्ष्मीचन्द्र जी महाराज के सान्निध्य मे रहने का उनको स्वर्ण अवसर मिल ही गया। उनके चरणों मे रहकर भिन्न-भिन्न दर्शनो का गहरा अध्ययन किया। जैन आगमो का तथा अन्य ग्रन्थो का गभीर चिन्तन किया। ज्योतिष जैसे गहन विषयो का अनुशीलन-परिशीलन किया। सस्कृत और प्राकृत जैसी गभीर गिरा पर पूर्ण आधिपत्य प्राप्त किया। सन्त रत्न मुनि अब ज्ञान के अथाह सागर बन गए। प्रखर विद्वान हो गए। सयम और ज्ञान दोनो मे ही उन्होंने उच्च स्थान प्राप्त किया। विशाल ज्ञान के साथ-साथ उनका उत्कृष्ट चरित्र बल भी तत्कालीन समाज मे आदर्श उदाहरण था। सन्त के जीवन की महिमा ही सयम से है। उसका जीवन

ही संयम से बँधा हुआ होता है। जिस प्रकार सितार के तार सितार की खूँटी पर बँधकर ही मधुर स्वर, मधुर तान और मधुर झनकार उत्पन्न करते हैं परन्तु वही तार खूँटी से खुल जाने पर, पृथक हो जाने पर किसी भी स्वर को उत्पन्न करने में असमर्थ रहता है। इसी प्रकार सन्त जन का जीवन भी यदि संयम की खूँटी से बँधा हुआ रहता है, तो उनसे भी सद्गुण एवं सदाचार की मधुर झनकार निकलती है मधुर-मधुर भीनी भीनी उत्तम आचरण की महक इधर-उधर फैलती है, जिसके द्वारा प्रत्येक मानव आनन्दविभोर हो उठता है।

गुरुदेव की वाणी में जादू था। वे जिस ओर भी निकल गए, जनता उनकी तपःपूत अमृतवाणी से अति प्रभावित हुई। हमेशा जनता उनके चरणों में सब कुछ अर्पण करने को तैयार रही। उन महापुरुषों की वाणी में इतना चमत्कारिक प्रभाव था कि जनता का हृदय परिवर्तन करने में उन्हें कुछ भी विलम्ब न लगा करता था। उत्तर प्रदेश में अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जो आज भी आपकी चमत्कारिक पवित्र वाणी की राम कहानी कह रहे हैं।

अग्रवाल लोहिया समाज को तो विशुद्ध जैनत्व के संस्कार देने वाले एकमात्र महापुरुष आप ही थे। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश के सम्मुख अंधकार टिक नहीं सकता उसी प्रकार गुरुदेव के ज्ञान सूर्य के सामने अज्ञान तथा मिथ्यात्व का अन्धकार भी भला कहाँ टिक सकता था? वास्तव में गुरुदेव ज्ञान के तो दिनकर ही थे। उनकी चमत्कारपूर्ण वाणी का तथा पवित्र जिन्दगी के आदर्श का यदि वैभव देखना है तो आइये चलिए लोहामंडी आगरे में जहाँ उनकी पुण्य-स्मृति में अनेक अनेक विशाल संस्थाएँ स्थापित हैं और वे उच्चस्तर पर चल रही हैं। एक दोहा भी मुझे याद आ रहा है जो जैन-भवन लोहामंडी की भित्ति पर अंकित है—

समकित रतन प्रदान कर दी मिथ्या की टार।
रतनचन्द गुरुदेव का, है यहाँ पर उपकार॥

उत्तर प्रदेश राजस्थान मध्य प्रदेश तथा पंजाब प्रान्त में गुरुदेव ने काफी विचरण-संचरण किया और जब तब सर्वत्र जिनवाणी की अमोघ वर्षा की। सत्य का सिंहनाद किया। अनेक साम्प्रदायिक पण्डितों एवं सन्तो-मुनियों से बहुत से स्थानों पर आपकी जोरदार तथा महत्वपूर्ण शास्त्र-चर्चाएँ भी हुई जिनमें आप सर्वत्र विजयी रहे। आपकी प्रखर पाण्डित्यपूर्ण तर्कणा शैली के समक्ष अन्त में सभी को झुकना पड़ता था। गुरुदेव ने अनेक ज्ञान-पिपासुओं को ज्ञान-दान देकर उनकी पिपासा शान्त की। उन्हें भी अपने ही समान योग्य विद्वान बनाया। ज्ञान-दान में पूज्य गुरुदेव ने कभी द्वैत-भाव नहीं रखा मन में भी संकीर्णता नहीं आने दी। आपके प्रमुख विद्यार्थियों में पंजाब के महामुनिराज आचार्य श्री अमरसिंह जी महाराज तथा विजयानन्द जी सूरीश्वर का नाम विशेष रूप से लिया जाता है।

गुरुदेव की साधना महान थी। संयम की राह पर जब से चले तब से अन्तिम घड़ियों तक एक ही चादर से काम लिया चाहे कितनी ही भयंकर सर्दी क्यों न हो। एक की समाप्ति पर दूसरी ग्रहण करते थे। यह भी वास्तव में उनका बहुत बड़ा त्याग था। वे संयम की डगर पर नित्य-निरन्तर आगे बढ़ते रहे साधना के क्षेत्र में अथ से इति तक दृढ़ता एवं मुस्तैदी के साथ अग्रसर ही रहे। दीन-दुखी को देखकर

उनका हृदय द्रवित हो उठता था। वे उपकारी सन्त थे। महापुरुषों की जिन्दगी ही उपकार के लिए होती है।

> "महापुरुषों को होता है, हमेशा प्यार दुनियाँ का
> उन्हें ही तो सताता है, हमेशा प्यार दुनियाँ का॥

परोपकाराय सतां विभूतयः—के अनुसार गुरुदेव का जीवन था। महापुरुष संसार से लेते हैं कम और देते है अधिक। पूज्य गुरुदेव ने भी समाज से लिया कणभर और समाज को उन्होंने दिया मनभर। वे तो हमेशा ज्ञान-रस का उदार हृदय से लुटाते ही लुटाते रहे सब जन-हिताय सब जन-सुखाय।

काल की गति विचित्र है। यह तो अबाध रूप से अपना कार्य करता ही रहता है। इस जगतीतल पर आज तक ऐसा कोई भी व्यक्ति या प्राणी नहीं आया जो जन्मा हो, किन्तु मरण को प्राप्त न हुआ हो? 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु' यह अटल सिद्धान्त है।

सूर्य प्रातः उदय होता है तो सायं को अस्त भी हो जाता है। फूल खिलता है तो अन्त में मुर्झाना भी है। अस्तु वह महापुरुष भी एक दिन उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध नगर लोहामंडी आगरा में अमरलोक के वासी बने। महापुरुषों का मार्ग निराला होता है, इस दुनियाँ से। गुरुदेव की विशेषता यह रही कि—सूर्य तो हमेशा पूर्व में उदय होता है और अस्त पश्चिम में। पर वह सूर्य तो पश्चिम राजस्थान में उदय हुआ और पूर्व में जाकर अस्त हुआ। गुरुदेव ने अपनी साधना से दिव्य अमरलोक प्राप्त कर लिया। उनके जीवन की मरता, अमरता में परिणत होगई। भले ही गुरुदेव की भौतिक देह आज नहीं रही, परन्तु उनका अध्यात्म शरीर पहले भी था, आज भी है और भविष्य में भी रहेगा।

* * *

> गुरु देव हमारे राहनुमां,
> बनकर के यहाँ पर आए थे।
> गुरुदेव जमाने की खातिर,
> पैग़ामे हक़ीक़त लाए थे॥

★

श्री एस एस जैन संघ के कोषाध्यक्ष

श्री जगन्नाथ प्रसाद जैन

गुरुदेव के आध्यात्मिक पद्य

एक समीक्षा

मुनि श्री कीर्तिचन्द्र जी 'यश'

सन्त साहित्य

भारतीय साहित्य की नाना धाराओं में सन्त साहित्य की धारा वह ओजस्विनी पावन धारा है जिसका स्थान भारतीय साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व-साहित्य में भी सर्वोपरि है। कौन ऐसा पाठक है जिसका सन्त-साहित्य से परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष कुछ न कुछ परिचय न हो? और भारतीय साहित्य के इतिहास में तो एक युग ऐसा भी आया था जिस युग में सन-तन-सर्वत्र सन्त साहित्य का ही बोल बाला था।

अध्यात्म गेय गीत

सन्त साहित्य की यह धारा जब अध्यात्मवाद के कगारों से छू कर चलती है तब तो इसमें वह अद्भुत चमत्कार समाहित हो जाता है कि बस देखते ही बनता है। और जब यह अध्यात्म साहित्य पद्य एवं गेय गीतों के रूप में हो तब तो और भी कमाल हो जाता है। कबीर के फक्कड़पन के अलमस्त गीत सूर के कृष्ण वात्सल्य से सिक्त गीत मीरा के दर्द भरे कृष्ण समर्पण गीत तथा स्वामी आनन्दघन और स्वामी चिदानन्द के आध्यात्मिक गीत आज भी जन-मानस को उद्वेलित एवं आप्लावित करने की सामर्थ्य रखते हैं।

गुरुदेव एक अध्यात्म कवि

इसी सन्त युग के उत्तरार्द्ध में अर्थात् आज से एक शताब्दी पूर्व परम श्रद्धेय पूज्य प्रवर गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी महाराज भी एक ऐसे ही आध्यात्मिक सन्त रत्न हो चुके हैं जिन की गणना उच्च कोटि के आध्यात्मिक कवियों में की जा सकती है। गुरुदेव उस युग के एक जाने-माने-पहिचाने सिद्धहस्त अध्यात्म कवि थे जिन के आध्यात्मिक गीतों की धूम जन-जन-मानस मची हुई थी। क्या उत्तर प्रदेश क्या पंजाब क्या मालवा क्या राजस्थान सभी जगह गुरुदेव के अध्यात्म गीतों को श्रद्धा की दृष्टि से देखा और प्रेमपूर्वक गाया जाता था। भारत भर के अनेक-अनेक जैन भण्डारों में गुरुदेव द्वारा रचित पद्यों के लिखित पन्ने उपलब्ध होते हैं। इसी से सिद्ध है कि गुरुदेव उस समय के एक लोकप्रिय अध्यात्म कवि थे।

गुरुदेव का साहित्य

यह खेद का विषय है कि गुरुदेव का सम्पूर्ण पद्य-साहित्य आज कहीं भी उपलब्ध नहीं है। वह यत्र तत्र भण्डारों में अथवा सन्त-सतियों के पास बिखरा पड़ा है। फिर भी कुछ पद्यों से गुरुदेव के

गुरुदेव के आध्यात्मिक पद्य

एक समीक्षा

मुनि श्री कीर्तिचन्द्र जी 'यश'

सन्त साहित्य

भारतीय साहित्य की नाना धाराओं में सन्त साहित्य की धारा वह ओजस्विनी पावन धारा है जिसका स्थान भारतीय साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व-साहित्य में भी सर्वोपरि है। कौन ऐसा पाठक है जिसका सन्त-साहित्य से परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष कुछ न कुछ परिचय न हो? और भारतीय साहित्य के इतिहास में तो एक युग ऐसा भी आया था जिस युग में सब-तब-सर्वत्र सन्त साहित्य का ही बोल बाला था।

अध्यात्म गेय गीत

सन्त साहित्य की यह धारा जब अध्यात्मवाद के कगारों से छू कर चलती है तब तो इसमें वह अद्भुत चमत्कार समाहित हो जाता है कि बस देखते ही बनता है। और जब वह अध्यात्म साहित्य पद्य एवं गेय गीतों के रूप में हो तब तो और भी कमाल हो जाता है। कबीर के फक्कड़पन के अलमस्त गीत सूर के कृष्ण वात्सल्य से सिक्त गीत मीरा के दर्द भरे कृष्ण समर्पण गीत तथा स्वामी आनन्दघन और स्वामी चिदानन्द के आध्यात्मिक गीत आज भी जन-मानस को उद्वेलित एवं आप्लावित करने की सामर्थ्य रखते हैं।

गुरुदेव एक अध्यात्म कवि

उसी सन्त युग के उत्तरार्द्ध में अर्थात् आज से एक शताब्दी पूर्व परम श्रद्धेय पूज्य प्रवर गुरुदेव श्री रत्नचन्दजी महाराज भी एक ऐसे ही आध्यात्मिक सन्त रत्न हो चुके हैं जिन की गणना उच्च कोटि के आध्यात्मिक कवियों में की जा सकती है। गुरुदेव उस युग के एक जाने-माने-पहिचाने सिद्धहस्त अध्यात्म कवि थे जिन के आध्यात्मिक गीतों की धूम सब-तब-सर्वत्र मची हुई थी। क्या उत्तर प्रदेश क्या पंजाब क्या मालवा क्या राजस्थान सभी जगह गुरुदेव के अध्यात्म गीतों को बड़ा ही रुचि से देखा और प्रेमपूर्वक गाया जाता था। भारत भर के अनेक-अनेक जैन भण्डारों में गुरुदेव द्वारा रचित पद्यों के लिखित पन्ने उपलब्ध होते हैं। इसी से सिद्ध है कि गुरुदेव उस समय के एक लोकप्रिय अध्यात्म कवि थे।

गुरुदेव का साहित्य

यह खेद का विषय है कि गुरुदेव का सम्पूर्ण पद्य-साहित्य आज कहीं भी उपलब्ध नहीं है। वह यत्र तत्र भण्डारों में अथवा सन्त-सतियों के पास बिखरा पड़ा है। फिर भी कुछ पद्यों में गुरुदेव के

[illegible] पद निर्मित साहित्य [illegible] सामग्री की [illegible] हुई है। [illegible] यह शुभ परिणाम है कि [illegible] के आधार पर [illegible]।

समीक्षा

गुरुदेव के [illegible] आध्यात्मिक पदावलि [illegible] पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है।

१—भक्तिमूलक पद्य

२—वैराग्यमूलक पद्य

३—आचारमूलक पद्य

४—चरित्रमूलक पद्य

५—उपदेशमूलक पद्य

भक्तिमूलक पद्य

इस वर्ग मे गुरुदेव के वे आध्यात्मिक पद्य आते हैं, जो स्तुतिपरक हैं। चौबीस तीर्थंकरों मे से भगवान ऋषभदेव, भगवान शान्तिनाथ, भगवान नेमिनाथ तथा महाविदेह क्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकर भगवान सुजात-प्रभु की स्तुतियां प्रमुख हैं। इन स्तुतियों में भक्ति-रस अपने पूर्ण रूप मे निखर कर सामने आया है। साथ ही गुरुदेव का आगम सम्मत आध्यात्मिक रूप भी इन स्तुतियों में प्रतिभासित होता है।

आदिनाथ स्तुति

आदिनाथ स्तुति मे गुरुदेव विनयावनत हो अर्ज करते हैं कि भगवन्! अब सब कुछ छोड़ कर सेवक ने एक मात्र आप की ही शरण ली है। अतएव मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप सेवक पर कृपा करके उसे भव-सागर पार उतारेंगे ही। (१)

इसी प्रकार दूसरी आदिनाथ स्तुति मे गुरुदेव ने भगवान ऋषभदेव के वर्षीतप के पारणे का प्रसग इतने मार्मिक ढग से स्वाभाविक चित्रण के साथ वर्णन किया है, कि मानो घटना साक्षात् पाठक के ही सम्मुख घट रही है—ऐसा प्रतिभासित होता है। (२)

शान्तिनाथ स्तुति

शान्तिनाथ स्तुति मे गुरुदेव सोलहवें तीर्थंकर भगवान शान्तिनाथ का गुण कीर्तन करते हुए, जन्म मरण का दुःख दूर करने की भावना लेकर उनकी चरण शरण मे आते हैं। (३)

प्रातः स्मरणीय शांतिनाथ स्तोत्र मे गुरुदेव भगवान शांतिनाथ की महिमा का वर्णन करते हुए कहते है—ऐ भव्य भक्तजनो! प्रातः उठते ही हर घड़ी भगवान श्री शांतिनाथ का सुमरण करो। जो शुद्ध भावो मे भगवान शांतिनाथ का ध्यान करता है उसके कोटि-कोटि जन्मों के सभी संचित संकट क्षणमात्र में ही कट जाया करते हैं। (४)

रचित एव लिखित साहित्य तथा जीवन चरित्र विषयक सामग्री की खोजबीन हुई है। इन्ही अन्वेषणा का यह शुभ परिणाम है कि गुरुदेव का कुछ साहित्य प्रकाश मे आ गया है। इसी प्रकाशित पद्य साहित्य के आधार पर ही गुरुदेव के कुछ आध्यात्मिक पद्य साहित्य की समीक्षा यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

समीक्षा

गुरुदेव के प्रकाशित आध्यात्मिक पद्यसाहित्य को मुख्यतया पाँच वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है।

१—भक्तिमूलक पद्य

२—वैराग्यमूलक पद्य

३—आचारमूलक पद्य

४—चरित्रमूलक पद्य

५—उपदेशमूलक पद्य

भक्तिमूलक पद्य

इस वर्ग मे गुरुदेव के वे आध्यात्मिक पद्य आते हैं, जो स्तुतिपरक है। चौबीस तीर्थंकरो में से भगवान ऋषभदेव, भगवान शान्तिनाथ, भगवान नेमनाथ तथा महाविदेह क्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकर भगवान सुजात-प्रभु की स्तुतियाँ प्रमुख है। इन स्तुतियो मे भक्ति-रस अपने पूर्ण रूप मे निखर कर सामने आया है। साथ ही गुरुदेव का आगम सम्मत आध्यात्मिक रूप भी इन स्तुतियो में प्रतिभासित होता है।

आदिनाथ स्तुति

आदिनाथ स्तुति म गुरुदेव विनयावनत हो अरज करते है कि भगवन् ! अब सब कुछ छोड कर मैंने एक मात्र आप की ही शरण ली है। अतएव मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप सेवक पर कृपा करके उसे भव-सागर पार उतारेंगे ही। (१)

इसी प्रकार दूसरी आदिनाथ स्तुति मे गुरुदेव ने भगवान ऋषभदेव के वर्षीतप के पारणे का प्रसग इतने मार्मिक ढग से स्वाभाविक चित्रण के साथ वर्णन किया है, कि मानो घटना साक्षात् पाठक के ही सम्मुख घट रही है—ऐसा प्रतिभासित होता है। (२)

शान्तिनाथ स्तुति

शान्तिनाथ स्तुति मे गुरुदेव सोलहवें तीर्थंकर भगवान शान्तिनाथ का गुण कीर्तन करते हुए, जन्म मरण का दुख दूर करने की भावना लेकर उनकी चरण शरण मे आते हैं। (३)

प्रात स्मरणीय शान्तिनाथ स्तोत्र मे गुरुदेव भगवान शान्तिनाथ की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं—ऐ भव्य भक्तजनो ! प्रात उठते ही हर घडी भगवान श्री शान्तिनाथ का सुमरण करो। जो शुद्ध भावो से भगवान शान्तिनाथ का ध्यान करता है, उसके कोटि-कोटि जन्मो के सभी सचित सकट क्षणमात्र मे ही कट जाया करते है। (४)

करणी कुलक

करणी कुलक अर्थात् सामायिक संवर पौषधादिक धर्माराधन का फल नामक कविता में गुरुदेव ने विविध तप-जपों के फल का शास्त्रसम्मत निरूपण किया है। जैसा कि एक प्रतिपूर्ण पौषध करने से २७७७ करोड़ ७७ लाख ७७ हजार ७७७ पल्योपम तक देव आयु का पुण्य प्राप्त करे और इतनी ही नरक-आयु के बन्धन को तोड़े। कविता के प्रारम्भ में गुरुदेव कहते हैं दुर्लभ मानव जन्म मिला और पुण्य से सद्गुरु का संयोग भी मिला। अतएव अब ऐसी करणी करो कि जिससे कर्म बन्धन का रोग जड़ से ही मिट जाय। (१४)

सम्यक्त्व श्रावण

इस पद्य में गुरुदेव ने बड़ा ही सुन्दर रूपक बाँधा है। सम्यक्त्व को श्रावण की उपमा देते हुए कहा है अब मेरे सम्यक्त्व श्रावण आ गया है। जिनवर भाषित ज्ञानघटा रूपी श्रावण बड़ा ही सुहावना है। मिथ्यात्व रूपी ग्रीष्म का ताप मिट गया है। अनुभव रूपी शीतल पवन चलने लगा है। ऊँची ध्वनि से गुरुजन रूपी मेघ-गर्जना होने लगी है? जिससे भविजन-चित्त रूपी मोर हर्ष से मस्त हो गए हैं। निजगुण रूपी विद्युत् चमकने लगी है। ज्ञान रूपी नीर झमाझम बरस रहा है। तप-जप रूपी नदियाँ हृदय में जोर शोर से चलने लगी हैं। जिन्होंने ममता रूपी दाह को समाप्त कर दिया है। सम्यक्त्वी श्रोता रूपी वृक्ष हरे भरे हुए। मुनिजन रूपी पक्ष जिन में रम गए। आक और जवास के भाँति मिथ्यात्वी सूख कर नष्ट होने लगे। अन्त में गुरुदेव कहते हैं—जिस अमृत रूपी जिनवाणी ने मुक्ति-मार्ग दर्शाया है मैं उसकी शरण प्राप्त करता हूँ। (१५)

सम्यक्त्व

अन्त में सम्यक्त्व नामक पद्य में गुरुदेव कहते हैं—जिन्होंने निर्मल शुद्ध सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया है, फिर उन को कुछ भी कमी नहीं रही है। जिन्होंने निरंजन देव निर्ग्रन्थ गुरु दया धर्म पर विश्वास किया उन्हीं महान् भव्य जनों को सम्यक्त्व का लाभ मिला। जिस प्रकार अंक के बिना सभी शून्य नासिका के बिना शरीर, जीव के बिना रूप ज्ञान के बिना काया व्यर्थ है उसी प्रकार सम्यक्त्व के बिना सब साधनाएँ व्यर्थ हैं। (१६)

चारित्रमूलक पद्य

चारित्रमूलक पद्यों में सगर चक्रवर्ती का चौढालिया इलायची कुंवर का चौढालिया सोलह सतियों की लावणी श्री नेमनाथ जी श्री नेमिजिनन्द तथा अणगार और सुमता नारी गुरुदेव की प्रमुख रचनाएँ हैं।

सगर चक्रवर्ती का चौढालिया

जिसमें चार ढालों में सम्राट् सगर चक्री के साठ हजार पुत्रों का मरण देवी द्वारा सगर को सान्त्वना और प्रतिबोध सगर का वैराग्य आदि प्रमुख घटनाएँ बड़ी ही सुन्दरता के साथ गुरुदेव ने चित्रित की है। पंच परमेष्ठी को नमन करते हुए गुरुदेव उत्तराध्ययन सूत्र का हवाला देते हुए सगरराय का चरित्र आरम्भ करते हैं। (१७)

है। पतंग अपना ही [illegible] जला जाता है। अरे [illegible] मानव! तू [illegible] कामभोग के भ्रमर का [illegible] यह जहर [illegible] गया [illegible] ? [illegible] (९)

सुन्दर काया

सुन्दर काया में अध्यात्म दृष्टि [illegible] आत्मा [illegible] हुए गुरुदेव कहते हैं कि इस काया में सात समुद्र हैं जिनमें कोई मीठा है तो कोई खारा है। मनभ्रमर (आत्मा) इस [illegible] है। इसी काया में चोर रहते हैं। चोर पंचेन्द्रियाँ हैं। [illegible] मन्दिर (काया) [illegible] गिर गया और मिट्टी में मिट्टी मिल गई। (१०)

जीवन की क्षणभंगुरता

जीवन की क्षणभंगुरता नामक पद्य में गुरुदेव [illegible] हुए कहते हैं—इस प्राण का कुछ भी भरोसा नहीं है। क्या पता यह किस समय आ जाये? यह ऐसा शिकारी है कि न बालक को देखता है न जवान को। यह तो सभी को [illegible] की तरह शिकार निगलता ही जा रहा है। इस पद्य में गुरुदेव ने महलों में [illegible] हुए, शादी होते हुए, रोगी का [illegible] हुए, बैठे भोजन जीमते हुए, नृत्य करते हुए, नट नाचते हुए, आदि व्यक्तियों के सुन्दर-सुन्दर उदाहरण देकर जीवन की नश्वरता और काल की अनिवार्यता का बड़ा ही सुन्दर प्रतिपादन किया है। (११)

आचारमूलक पद्य

तृतीय वर्ग में गुरुदेव के आचारमूलक पद्य आते हैं जिनमें से केवल तीन-चार पद्यों की ही समीक्षा यहाँ की जाती है। आचारमूलक गीतों में गुरुदेव ने साधु तथा श्रावक की मर्यादाओं का सुन्दर निरूपण किया है। जप तप आदि धर्माराधन का शास्त्र-सम्मत फल बतलाया है। तथा सम्यक्त्व की महत्ता पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला है। वे पद्य निम्न हैं —

साधु गुण-माला

साधु गुण माला गीत जिसमें अध्यात्म साधक, सच्चे सन्त के आचार का वर्णन है, गुरुदेव कहते हैं कि सच्ची साधुता का मार्ग बड़ा ही कठिन है। वह तो खाँडे की धार पर चलना है। यह मेरे नहीं अपितु केवली भगवान के वचन हैं। परन्तु जो इस साधना के मार्ग पर चल पड़ता है वह इतना पवित्र एवं पूज्य हो जाता है कि उसकी सेवा करने वाले को नव निधियाँ, बारह सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। साथ ही जो साधु-गुणों का कीर्तन करता है उसके कर्मों की निर्जरा होती है। (१२)

श्रावक धर्म

इस श्रावक धर्म नामक पद्य में श्रावक के धर्म का वर्णन है। गुरुदेव कहते हैं कि भगवान जिनेन्द्र देव ने श्रावक की करणी इस प्रकार कही है—उसके सम्यक्त्व मूलक मुख्य बारह व्रत होते हैं, वह मैंने सद्गुरु के मुख से आगम सूत्र रूप जिस प्रकार श्रवण की है, उसी प्रकार उस पर अपने पद्यबद्ध विचार रखूँगा। अन्त में ऐसे बारह व्रत धारक श्रावक आनन्द आदि का उदाहरण देते हुए गुरुदेव ने कहा कि वे सब श्रावक धर्म का आराधन करके भवनिधि पार उतर गए। (१३)

फरमाते हैं—पथिक ! इस समय तो मुनिवृन्द में धन्ना अणगार का ही नाम सर्वोत्कृष्ट रूप से लिया जा सकता है।

गुरुदेव कहते हैं—हे मुनीश्वर धन्ना अणगार ! मैं तुम पर वारी जाता हूँ। आपने काकन्दी नगर में जन्म लेकर भगवान् वीर की शरण स्वीकार की और अपना जीवन को सफल बनाया। हे मुने ! धन्य है आपकी करणी—जिसे स्वयं वीर प्रभु ने अपने श्री मुख से बखाना। (२२)

सुमता नारी

इस वर्ग का अन्तिम गीत सुमता नारी है। जिसमें गुरुदेव ने सुमता (सद्बुद्धि) नारी के मुख से चैतन्य को शरण कराई है। इसमें सुमता की चैतन्य से साथ रखने की प्रार्थना बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णन की है। गुरुदेव कहते हैं—सुमता चैतन्य से प्रार्थना करती है कि एक प्रार्थना हमारी भी सुन लो। हाथ जोड़ कर कहती हूँ कि मैं तो आपके चरणों की दासी हूँ। आपके वियोग में बड़ा दुःख पा रही हूँ। यदि आप मुझे सान्निध्य रखेंगे तो एक दिन अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर लेंगे। (२३)

उपदेशमूलक पद

अन्तिम पाँचवें वर्ग में गुरुदेव के उपदेशमूलक पदों का नाम आता है, जिनमें मानव भव सीख सुगुरु की मान सतगुरु मत भूलो सप्त बोल दुर्लभ सप्त दुर्व्यसन निषेध सत्य धर्म की घोषणा करने वाले, तथा शिक्षाप्रद दोहे, इन विशिष्ट पदों का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है।

मानव भव

मानव भव शीर्षक पद में जीव को सम्बोधित करते हुए इस नर भव चिन्तामणि रत्न को यों ही व्यर्थ न खो देने की चेतावनी गुरुदेव ने दी है। जो इस का व्यर्थ खो देता है वह अपने आत्मगुणों से वंचित रह जाता है। संसार-सुख तो मधु बिन्दु के समान है जिन्हें त्यागना ही अभीष्ट है। हे भव्य जीव ! तू सद्गुरु के इस सदुपदेश को एक क्षण भी मत भूल। (२४)

सीख सुगुरु की मान

इस गीत में सद्गुरु की शिक्षा मान लेने का उपदेश गुरुदेव ने दिया है। इस जीव को सम्बोधित करते हुए गुरुदेव कहते हैं कि देख ऐ आत्मा ! तूने नरकादि चार गतियों में सद्गुरु शिक्षा के अभाव में क्या-क्या दुःख नहीं उठाए ? तू अनन्त-अनन्त काल से चौरासी के चक्कर में भटकता ही रहा। अतएव तू सद्गुरु की शिक्षा मान और इस संसार सागर से पार हो जा। (२५)

सतगुरु मत भूलो

प्रस्तुत पद में सद्गुरु की महत्ता दर्शाते हुए गुरुदेव कहते हैं—हृदय में बोधि-बीज का वपन करने वाले सद्गुरुदेव को एक घड़ी मत भूलो। राजा संप्रति एवं राजा प्रदेशी का उदाहरण देते हुए गुरुदेव कहते हैं कि वे नरेश सद्गुरु की कृपा एवं सदुपदेश से ही भव-सागर तिर गए। अतएव यदि मुक्ति नगर पहुँचने की इच्छा है तो सद्गुरु चरणों का सेवन करो। (२६)

इलायची कुवर का चौढालिया

इसी प्रकार इलायची कुवर के चौढालिये में चार गेय पद्य हैं। इनमें इलायचीकुवर का चरित्र है। इलायची कुवर एक बहुत बड़े सेठ का पुत्र है। वह किस प्रकार एक नट-पुत्री के रूप-लावण्य में आसक्त होकर मोहजाल में फंसता है। किस प्रकार अपनी कुल मर्यादाओं का धर्म, समाज, माता पिता, वधु-नारी, धन, वैभव आदि सभी कुछ छोड़कर रूप के पीछे पागल बनकर नट का ही धन्धा स्वीकार करता है। फिर किस प्रकार उसे वैराग्य उत्पन्न होता है और अन्त में वह किस प्रकार अध्यात्म साधक बन जाता है? यह सब इस चरित्र का वर्णनीय विषय है। गुरुदेव प्रथम गीत की प्रथम पंक्ति में कहते हैं कि मैं इलायची कुवर का चरित्र कहूंगा। (१८)

सोलह सतियो की लावनी

इस लावनी में सोलह सतियों का नाम निर्देश करते हुए गुरुदेव ने उनके जीवन की प्रमुख प्रमुख विशेषताओ का वर्णन किया है और बड़े ही भक्तिभाव प्रकट किया है। प्राक्कथन में ही गुरुदेव कहते हैं कि मैं उन महासतियों के शुद्ध शीलसदाचार-मय जीवन का वर्णन करूंगा, सब दत्तचित हो सुने। इन महासतियों में से कोई तो कर्म बन्धन तोड़कर मोक्ष पधारी तथा किसी ने स्वर्ग के अद्भुत सुखों को प्राप्त किया। इन जिन-मार्ग में चलने वाली महासतियों को धन्य हो। इन सतियों के गुण ग्राम से अघजाल टूट कर आध्यात्मिक सच्चा सुख प्राप्त होता है (१९)

श्री नेमनाथ जी

प्रस्तुत पद्य में नेम राजुल की कथा है। किस प्रकार नेम जी राजुल को ब्याहने आए, कैसे उसे छोड़ा, कैसे साधु बने, कैसे कैवल्य ज्ञान पाया, कैसे राजुल ने साध्वी व्रत अंगीकार किए, कैसे राजुल नेम जी की वन्दना करने गिरनार चढी। कैसे गुफा मे रथनेमि से भेंट हुई, कैसे राजुल ने उसे धर्म-मार्ग में स्थिर किया, कैसे राजुल ने मोक्ष प्राप्त की? इन सब प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत पद्य में मिलेगा। (२०)

श्री नेमि जिनेन्द्र

इस पद्य मे गुरुदेव ने राजुल के मुख से नेम जी का वर्णन किया है। राजुल कहती है कि जादवा ने तो मेरा मन हर लिया है। परन्तु नेम जी तो संजम दूती के कहने से मुझे छोड़ कर मुक्ति रमणी पर रीझ गए हैं। खैर आप वीतरागी हैं। तीन लोक के नाथ हैं। आपको मेरी बार-बार वन्दना है। (२१)

धन्ना अणगार

प्रस्तुत गीत मे गुरुदेव ने काकन्दी नगरी वाले धन्ना-अणगार के जप-तप और त्यागमय जीवन का बड़ा ही भाव-वाही वर्णन किया है। ये वही धन्ना अणगार हैं, जिनकी श्रेष्ठता अनुत्तरोपपातिक सूत्र में स्वयं श्रमण भगवान महावीर ने स्वीकार की है।

मगध सम्राट श्रेणिक ने एक बार श्रमण भगवान महावीर से पूछा था—भगवन्! मोक्ष मार्ग के साधक वैसे तो सभी मुनिराज हैं, परन्तु इस समय किन मुनिराज की करणी सर्वोत्कृष्ट है, तो भगवान्

फरमाते हैं—येमिक ! इस समय तो मुनिवृन्द में धना अनगार का ही नाम सर्वोत्कृष्ट रूप से लिया जा सकता है।

गुरुदेव कहते हैं—हे मुनीश्वर धना अनगार ! मैं तुम पर वारी जाता हूँ। आपने काकन्दी नगर में जन्म लेकर भगवान् वीर की शरण स्वीकार की और अपने जीवन का सफल बनाया। हे मुन ! धन्य है आपकी करणी—जिसे स्वयं वीर प्रभु ने अपने श्री मुख से बखाना। (२२)

सुमता नारी

इस वर्ग का अन्तिम गीत सुमता नारी है। जिसमें गुरुदेव ने सुमता (सद्बुद्धि) नारी के मुख से चैतन्य को अरज कराई है। इसमें सुमता की चैतन्य से साथ रखने की प्रार्थना बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णन की है। गुरुदेव कहते हैं—सुमता चैतन्य से प्रार्थना करती है कि एक प्रार्थना हमारी भी सुन लो। हाथ जोड़ कर कहती हूँ कि मैं तो आपके चरणों की दासी हूँ। आपके वियोग में बड़ा दुःख पा रही हूँ। यदि आप मुझे से हासिल रखेंगे तो एक दिन अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर लेंगे। (२३)

उपदेशमूलक पद्य

अन्तिम पाँचवें वर्ग में गुरुदेव के उपदेशमूलक पदों का नाम आता है जिनमें मानव भव सीख सुगुरु की मान सद्गुरु मत भूलो बच बोल दुर्लभ सप्त दुर्व्यसन निषेध सत्य धर्म की घोषणा अरे प्यारे, तथा शिक्षाप्रद दोहे, इन विशिष्ट पद्यों का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है।

मानव भव

मानव भव शीर्षक पद्य में जीव को सम्बोधित करते हुए इस नर भव चिन्तामणि रत्न को यों ही व्यर्थ न खो देने की चेतावनी गुरुदेव ने दी है। जो इस का व्यर्थ खो देता है, वह अपने आत्मगुणों से वंचित रह जाता है। संसार-सुख तो मधु बिन्दु के समान है जिन्हें त्यागना ही अभीष्ट है। हे भव्य जीव ! तू सद्गुरु के इस सदुपदेश को एक क्षण भी मत भूल। (२४)

सीख सुगुरु की मान

इस गीत में सद्गुरु की शिक्षा मान लेने का उपदेश गुरुदेव ने दिया है। इस जीव को सम्बोधित करते हुए गुरुदेव कहते हैं कि हे रे आत्मा ! तूने नरकादि चार गतियों में सद्गुरु शिक्षा के अभाव में क्या-क्या दुःख नहीं उठाए ? तू अनन्त-अनंत काल से चौरासी के चक्कर में भटकता ही रहा। अतएव तू सद्गुरु की शिक्षा मान और इस संसार सागर से पार हो जा। (२५)

सतगुरु मत भूलो

प्रस्तुत पद्य में सद्गुरु की महत्ता दर्शाते हुए गुरुदेव कहते हैं—हृदय में बोधि-बीज का वपन करने वाले सद्गुरुदेव को एक घड़ी मत भूलो। राजा संप्रति एवं राजा प्रदेशी का उदाहरण देते हुए गुरुदेव कहते हैं कि ये नरेश सद्गुरु की कृपा एवं सदुपदेश से ही भव-सागर तिर गए। अतएव यदि मुक्ति नगर पहुँचने की इच्छा है तो सद्गुरु चरणों का सेवन करो। (२६)

८—श्री जिन पद पकज नमू, गणधर मुनिवर वृन्द।
वरदायक वर सरस्वति, सुमरत होय आनन्द॥
बारह मासा साभलो, एक मन एक चित्त लाय।
मिश्रित बारह भावना, परम महा सुख दाय॥

९—थारी फूल सी देह पलक मे पलटे, क्या मगरूरी राखे रे।
आतम ज्ञान अमीरस तजने, जहर जडी कुण चाखे रे॥

१०—इन तो काया मे प्रभु सात समुद्र हैं, कोई मीठो कोई खारो।
सुन्दर काया ने छोड चल्यो वणजारो॥

११—इण काल रो भरोसो भाई कोई नही, किण विरिया माहि आवे रे।
बाल जवान गिणे नही, सरब भणी गटकावे रे॥

१२—साधु रो मारग रे कठिन कह्यो केवली,
चलणो खाडा री धार, भविक जन॥

१३—श्रावक करणी हो जिणवर इम कही, सम्यकत्व मूल व्रत बार हो।
सद्‌गुरु मुख थी हो, सूत्र म्हे सुण्या, तेहना कहस्यू विचार हो॥

१४—मनुष्य जन्म दुलभ लह्यो, पुण्य जोग सतगुरु सँजोग।
हिवे करणी ऐसी करो, जा सूं मिटे कम रा रोग॥

१५—सम्यक्त्व श्रावण आयो, अब मेरे सम्यक्त्व श्रावण आयो।
घटा ज्ञान की जिनेश्वर ने भाषी, पावस सहज सुहायो॥

१६—निमल शुद्ध सम्यक्त्व जिन पाई रे।
उनके कमी रहे नही काई॥

१७—पञ्च परमेष्ठी प्रणमी, सागर राय चरित्र।
उत्तराध्ययन अठारमें, कथानुसार कहूँ अत्र॥

१८—कुँवर इलायची जायसु रे लाल॥

१९—शुद्ध शील तणा गुण ग्राम करूँ सुनो सब भाई,
सोलह सतियो का व्याख्यान कहूँ चित्त लाई।
कोई स्वर्ग गई कोई मुक्ति गई गुणवन्ती,
धन्य-धन्य सतियाँ जिन मारग मे जयवन्ती॥

२०—नेम वन्दन राजुल गई, गई गढ़ गिरनार॥

२१—जादवो ने मन मेरा हर लियो रे।
सजम दूति कान लगी जब, शिवनारी पर चित्त दियो रे॥

श्री रत्नमुनि जैन इण्टर कालेजों के शिक्षा संचालक

श्री सोनाराम जैन

दश बोल दुर्लभ

दश बोल दुलभ सिज्भाय मे गुरदेव ने शास्त्र-सम्मत दश बोल १—आर्य देश—२—आय क्षेत्र ३—आर्य कुल ४—दीघ आयु ५—इन्द्रियो की पूणता ६—निरोगी काया ७—साधु सगति ८—जिन-वाणी श्रवण ९—सच्ची श्रद्धा १०—सयम मे पराक्रम, इन दश वोलो की दुलभता का बहुत ही सुन्दर विवेचन निर्देशन करते हुए मानव को चेतावनी दी है कि ऐ मानव ! इन दश दुलभ वोलो को प्राप्त करके यदि चेत सके तो चेत अन्यथा तेरी यह आयु पल-पल पर समाप्त हो ही जायगी। फिर सिवा पछ-ताने के कुछ हाथ नही आयेगा। (२७)

सप्त दुर्व्यसन निषेध

दुर्व्यसन निषेधक इस गीत मे गुरुदेव ने १—जुआ २—मास ३—शराब ४—वेश्यागमन ५—शिकार ६—चोरी ७—परस्त्रीगमन इन सात दुर्व्यसनो का स्वरूप एव दु खात्मक भयकर परिणाम बतलाते हुए, मानव को इन से सदा सदा को बचने की सत्प्रेरणा दी है।

गुरुदेव कहते हैं—ऐ प्राणी ! इन दुर्व्यसनो को छोड। जब तक तू इस मिथ्या पाखण्ड के जाल से निकल कर जैन धर्म का पालन नही करेगा, तब तक तू सच्चे आत्मसुख से वचित रहेगा। ऐ भोले मानव ! ये सातो दुर्व्यसन तो दुर्गति ले जाने वाले हैं। (२८)

सत्य धर्म की घोषणा

गुरुदेव प्रस्तुत गीत के अन्दर ढोंगी साधक को ललकारते हुए कहते है—ऐ दम्भी साधक ! तूने तो आत्म-साधक का वेष पहन कर भी, यो ही व्यर्थ जन्म गँवा दिया। अरे गीदड ! तूने व्यर्थ में शेर की खाल ओढ़ कर लोगो को आतकित किया और अपनी स्वार्थपूर्ति की। (२९)

अरे प्यारे !

अरे प्यारे ! गीत मे गुरुदेव इस जीवन को चलने की तैयारी करने के लिए कहते हैं। क्योंकि यह काया तो हमेशा रहने वाली है नही। अतएव इससे जो वन सके शीघ्र से शीघ्र चलने का सामान बना लेना चाहिए। ऐ मुसाफिर जाग ! तू क्यो गफलत की नीद सोता है। अरे भोले ! जरा इस मौत से तो डर जो अवश्यमेव आने वाली है। इसलिए जाग ! जाग ! और दान, शील, तप, भावरूप धर्म का आराधन कर। (३०)

शिक्षाप्रद दोहे

अन्त मे शिक्षाप्रद दोहो मे गुरुदेव, सगति महत्त्व, धर्म महत्त्व, अवसर महत्त्व, परीक्षा महत्त्व तथा स्याद्वाद आदि सुन्दर-सुन्दर महत्त्वपूर्ण विषयो का प्रतिपादन करते हैं। (३१)

उपसहार

गुरुदेव के ये सभी गेय गीत काव्य-शास्त्र की कसौटी पर बिल्कुल खरे उतरे हैं। गुरुदेव के इन

सभी गेय गीतों में दोनों प्रकार के अलंकार—शब्दालंकार और अर्थालंकार भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। गुरुदेव के गेय गीतों की काव्य छटा पढ़ते ही एक बार तो पाठक के मन को मुग्ध कर देती है।

इस प्रकार गुरुदेव के इस आध्यात्मिक पद्य-साहित्य की समीक्षा करने के पश्चात् इसी निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि गुरुदेव एक मंजे और निखरे हुए उद्भट सफल काव्य निर्माता हैं। और गुरुदेव के साहित्य के विषय में सगर्व कहा जा सकता है कि गुरुदेव का यह आध्यात्मिक पद्य साहित्य एक उच्च कोटि का साहित्य है।

गुरुदेव के इस आध्यात्मिक काव्य की पतित-पावनी शान्तिदायक शीतल सरिता धारा में पाठक-गण आकण्ठ निमज्जन करके सच्ची आत्म-शान्ति प्राप्त कर सकेंगे तथा उस गहराई में पैठ कर इन विभिन्न गीति मुक्ताओं के गर्भ में से ये अति बहुमूल्य सच्चे मुक्ता-रत्न प्राप्त कर सकेंगे बस इसी आशा के साथ मैं अपनी बात समाप्त करता हूँ।

परिशिष्ट

१—आदि जिन अर्ज सुनो म्हारी।
कुगुरु कुदेव कुधर्म छोड़कर, शरण लई थारी॥

२—देखो जी! आदीश्वर स्वामी
थारे मोरे भावो है जी॥

३—शान्ति करता श्री शान्ति जिन सोलमा मम हर्ष धर चरण युग शीश नाऊं।
जन्म अरु मरण दुःख दूर करना सभी एक जिनराज की शरण आऊं॥

४—प्रात उठ श्री शान्ति जिनन्द का सुमरण कीजे घड़ी घड़ी।
सकल कोटि कटें भव संचित जो ध्यावें मन भाव धरी॥

५—पूजन पूजन पूजन प्रभुजी शान्ति जिनेश्वर स्वामी।
भूमी भार निवार कियो प्रभु सर्व भयो सुख गामी॥
'रतनचन्द' प्रभु कुछ नहीं मांगत सुन तू अन्तर्यामी।
तुम रक्षा भी और दिखावो तो है यह भव पामी॥

६—शान्तिजिन साहब! सुखदायक सुखकारी।
भव-सागर मांहि दुःख घनेरो ता सेती मोहे तारो॥

७—तू गति तू मति तू साथी सभी समरूं स्वामी श्री सुजात।
तू ही बंधव तू ही तात तुम्ह बिन अवर न विख्यात॥

८—श्री जिन पद पंकज नमू, गणधर मुनिवर वृन्द।
वरदायक वर सरस्वति, सुमरत होय आनन्द॥
बारह मासा साभलो, एक मन एक चित्त लाय।
मिश्रित बारह भावना, परम महा सुख दाय॥

९—थारी फूल सी देह पलक मे पलटे, क्या मगरूरी राखे रे।
आतम ज्ञान अमीरस तजने, जहर जडी गुण चाखे रे॥

१०—इन तो काया मे प्रभु सात समुद्र हैं, कोई मीठो कोई खारो।
सुन्दर काया न छोड चल्यो वणजारो॥

११—इण काल रो भरोसो भाई कोई नही, किण विरिया माहि आवे रे।
बाल जवान गिणे नहीं, सरब भणी गटकावे रे॥

१२—साधु रो मारग रे कठिन कह्यो केवली,
चलणो खाडा री धार, भवि जन॥

१३—श्रावक करणी हो जिणवर इम कही, सम्यकत्व मूल व्रत बार हो।
सद्गुरु मुख थी हो, सूत्र म्हे सुण्या, तेहना रहस्यू विचार हो॥

१४—मनुष्य जन्म दुलभ लह्यो, पुण्य जोग सतगुरु संजोग।
हिवे करणी ऐसी करो, जा सूं मिटे कर्म रा रोग॥

१५—सम्यक्त्व श्रावण आयो, अब मेरे सम्यक्त्व श्रावण आयो।
घटा ज्ञान की जिनेश्वर ने भाषी, पावस सहज सुहायो॥

१६—निमल शुद्ध सम्यक्त्व जिन पाई रे।
उनके कमी रहे नही काई॥

१७—पञ्च परमेष्ठी प्रणमी, सागर राय चरित्र।
उत्तराध्ययन अठारमे, कथानुसार कहूँ अत्र॥

१८—कुंवर इलायची जायसु रे लाल॥

१९—शुद्ध शील तणा गुण ग्राम करूँ सुनो सब भाई,
सोलह सतियो का व्याख्यान कहूँ चित्त लाई।
कोई स्वर्ग गई कोई मुक्ति गई गुणवन्ती,
धन्य-धन्य सतियाँ जिन मारग में जयवन्ती॥

२०—नेम वन्दन राजुल गई, गई गढ़ गिरनार॥

२१—जादवो ने मन मेरा हर लियो रे।
सजम दूति कान लगी जब, शिवनारी पर चित्त दियो रे॥

श्री रत्नमुनि जैन इण्टर कालेजों के शिक्षा संचालक

श्री सोनाराम जैन

सम्प्रदाय का परिचय

विजय मुनि

पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज की जन्म-भूमि राजस्थान की वीर भूमि थी, और उनकी सम्प्रदाय का मूल स्थान भी राजस्थान ही है। अपने "मोक्ष-मार्ग-प्रकाश" ग्रन्थ की प्रशस्ति मे स्वय उन्होने अपनी सम्प्रदाय का सक्षिप्त परिचय दिया है। मरु-धरा के मुख्य नगर नागौर मे सुराणा वश के तेजस्वी पुरुप श्री मनोहरदास जी ने सदारग जी स्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की। ज्ञान का गम्भीर अध्ययन किया। फिर क्रिया का प्रखर अभ्यास किया। फिर शिथिलाचार के विरोध मे अपनी आवाज-बुलद की और क्रियोद्धार किया। आगे चलकर आप का शिष्य परिवार खूव फला और फूला। आपके नाम पर मनोहर सम्प्रदाय बनी। मूल मे यह सम्प्रदाय राजस्थान की होकर भी वह उत्तर प्रदेश मे तथा पजाब के कुछ भू-भागो मे खूव फली-फूली है। इस सम्प्रदाय मे प्रारम्भ से ही विद्वान, कवि, लेखक, प्रवक्ता, त्यागी, सयमी और तपस्वी सन्तो की धारा प्रवाहित होती रही है। सक्षेप मे इस सम्प्रदाय के ज्योतिधर मुनिराजो का परिचय इस प्रकार से है

पूज्य मनोहरदास जी

भगवान् महावीर से अडसठवें पाट पर पूज्य मनोहरदास जी महाराज हुए। इतिहासकारो की दृष्टि मे आपका समय विक्रम की सतरहवी सदी माना जाता है। आप मरु धर-धरा के विख्यात नगर नागौर के रहने वाले थे। आपका जन्म ओसवाल वश के सुराणा गोत्र मे हुआ था। आपका गृहस्थ जीवन बहुत सुखी और समृद्ध था। लक्ष्मी के साथ आपको सरस्वती के वरदानरूप विलक्षण प्रतिभा भी मिली थी। आपके जीवन मे प्रारम्भ मे ही पर्याप्त विवेक और वैराग्य था। आपके गुरु सदारग जी स्वामी थे।

दीक्षा ग्रहण करने के बाद आपने आगम शास्त्रो का गहन-गम्भीर अध्ययन किया। क्रिया और ज्ञान, आचार और विचार—दोनो की आपने उत्कट, कठोर और प्रखर साधना की थी। अपने युग मे फैले हुए शिथिलाचार का आपने विरोध किया था। अपने गुरु की आज्ञा पाकर आपने क्रियोद्धार किया था।

आपने दूर-दूर की विहार-यात्रा करके धर्म और सस्कृति का व्यापक प्रसार किया था। आपके पैंतालीस शिष्य हुए। एक बार आप नागौर से विहार करके जयपुर पधारे। विहार मे अनेक प्रकार परीषद और उपसर्ग आए। जयपुर से आप खेतडी और सिंघाणा पधारे। आप के धर्म-प्रवचनो को सुनकर यहाँ के लोग परम प्रसन्न हुए। यहाँ पर लगभग तीन सौ घरो ने आप से सम्यक्त्व ग्रहण किया। यमुना पार मे भी आपने बहुत-से नये क्षेत्र खोले। यह सब आपके तपस्तेज, पुण्य प्रताप और उग्र चारित्र-बल की ही शक्ति का फल है।

पूज्य मायाराम

पूज्य मनोहरदास जी महाराज के पाट पर मायाराम जी बैठे। आप बीकानेर के रहने वाले और जाति से ओसवाल थे। आप बहुत ही विवेकशील और वैराग्यवान् थे। आगमों का आपने गम्भीर चिन्तन किया था। कठोर क्रिया और उग्र तप में आपका विश्वास था। यमुनापार में काफी क्षेत्र आपके द्वारा ही प्रतिबोधित हुआ था। अपने तेजस्वी गुरु के समान आपने भी धर्म और संस्कृति का व्यापक प्रसार किया था।

पूज्य सीताराम

आप बहुत ही शान्त और दान्त तथा विवेकशील और वैराग्यशील सन्त थे। आपने जैन आगमों के साथ-साथ अन्य धर्म के ग्रन्थों का भी गम्भीर अध्ययन किया था। आपके आचार्य-पदकाल में मनोहर दासीय सम्प्रदाय की खूब उन्नति रही। आप नारनौल के रहने वाले अग्रवाल वंश के थे।

पूज्य स्योरामदास

आप दिल्ली के रहने वाले और जाति से श्रीमाल थे। आपके समय में दिल्ली में बड़ी-बड़ी राज्य क्रान्तियाँ हुई। एक बार आप और आपके परिजन तीन दिन तक तलघर में पड़े रहे। जीवन की यह स्थिति देखकर आपने संकल्प किया कि यदि इस सकट से बच गया तो दीक्षा ले लूँगा। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आपने दीक्षा ली और पूज्य सीताराम जी के शिष्य हुए। आपके आचार्य काल में संघ में बड़ी शान्ति रही।

तपस्वी हरजीमल जी महाराज भी आपके शिष्य थे। तपस्वी ज्ञानी और मानी मधुर रतनचन्द्र जी महाराज ने नारनौल में आपका शिष्यत्व स्वीकार किया था।

पूज्य सुखदराम

आप आगम-शास्त्रों के परम विद्वान थे। आप भी गुरु-विनयक थे। उस काल तत्कालीन साधु संघ में प्रमाणित और प्रकाशित मानी जाती थी। कठिन से कठिन प्रश्नों का समाधान बड़ी शीघ्रता से कर देने की आप में अद्भुत क्षमता थी। आप सिंघाणा के रहने वाले और अग्रवाल वंश के थे। आपने अपने युग में साधु-साध्वियों को ज्ञान खूब सिखाया।

पूज्य तुलसीराम

आप अपने समय के एक विख्यात और विद्वान आचार्य थे। आचार्य-पद पर रहकर आपने संघ का संचालन बड़ी योग्यता के साथ किया था। शास्त्रों के आप गम्भीर विद्वान थे। आपकी प्रवचन-शैली भी प्रभावक सुन्दर और सरल थी। कहा जाता है कि आपको वचन की सिद्धि थी। पण्डित रामजीदास जी महाराज—जो आगम-शास्त्रों के ज्योतिष-शास्त्र के और संस्कृत तथा प्राकृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे—आपके ही आचार्य-काल में हुए। गुरुदेव रतनचन्द्र जी महाराज भी आपके ही धर्म-शासन काल में हुए थे। इस दृष्टि से आपका आचार्य-पद काल बहुत ही महत्त्वपूर्ण था।

तपस्वी ख्यालीराम जी

अपने युग के घोर तपस्वी और प्रखर क्रिया-काण्डी सन्त थे। विचार म उदार और आचार मे कठोर। आपने दीघकाल तक उग्र तपस्या की, आपकी कठोर साधना और घोर तपस्या का वणन श्री धनीराम जी महाराज ने अपनी कविताओ मे वडे विस्तार के साथ किया है। तपस्वी ख्यालीरामजी महाराज सरल प्रकृति के सन्त थे। स्वाध्याय, ध्यान और तपस्या आपके उज्ज्वल जीवन की विशेपताएँ थी। आपकी प्रवचन शैली भी वडी मधुर और शान्त थी। सन्तो की सेवा करना उनका सहज स्वभाव था। आपका जीवन सब प्रकार से एक तपोमय जीवन था।

पूज्य मगलसेन जी महाराज

पूज्यपाद मगलसेन जी महाराज ! तपस्वी ख्यालीराम जी महाराज के शिष्य थे। जयपुर म परशुराम ग्राम के रहने वाले थे। वीस वप की अवस्था मे आपने कांवला मे दीक्षा ग्रहण की। तीन वर्ष बाद तपस्वी ख्यालीराम जी महाराज का स्वगवास हो जाने पर आप पण्डित धनीराम जी महाराज की सेवा मे रहने लगे। शास्त्रो का अध्ययन किया। आपकी प्रवचन-शैली वहुत ही प्रभावक थी। जमुना के क्षेत्रों पर आपने वहुत उपकार किया था।

* * *

हमारे दिल के आइने मे है, तस्वीर गुरुवर की।
जियारत होती रहती है, इसी तदवीर गुरुवर की॥

तजल्ली देखकर दुनिया ने, हक़ के राज़ को पाया।
कि थी वहदत परस्ती से, अजव तासीर गुरुवर की॥

सदाक़त की ज़िया फैली, मिटी वातिल की तारीकी।
सुना है, खाक की चुटकी भी थी, अक्सीर गुरुवर की॥

खिंचे आते थे सब सुनकर, निशाते-रूह के नग़मे।
दिलों को मोम करती थी, अजव तक़रीर गुरुवर की॥

हुए 'मशहूर' आलम मे, वो मस्ले मेहरो-माह गुरुवर।
कि है जल्वानुमा अब तक, यहाँ तनवीर गुरुवर की॥

—मुनि श्री कीर्तिचन्द्र जी 'मशहूर'

एक ज्योति जली थी

श्रीमती आशा 'रत्न'

जैन-धर्म-पताका फहराने को एक ज्योति जली थी।
जग में करुणा-स्रोत बहाने को एक लहर चली थी।।

शुभ-माघ-प्रभात-बेला में आया था 'रत्न' जगाने को।
चहुँ-दिशि छाया हर्षोल्लास आया था कष्ट मिटाने को।।
गहन-अंधकार को चीर धरा पर एक किरण खिली थी।
जैन-धर्म-पताका फहराने को एक ज्योति जली थी।।

तुम धर्म-देशना देने को आये थे इस भूतल पर।
रूढ़िवाद-आडम्बर को जड़-मूल मिटाने धरती पर।।
गुंजन-गुंजन करते जन-जीवन का एक शान्ति उठी थी।
जैन-धर्म पताका फहराने को एक ज्योति जली थी।।

तुमने विवेकी-नयन खोलकर धर्म-मार्ग को दिखलाया।
चहुँ-ओर ज्ञानामृत-वर्षा से 'श्री संघ सागर' हरषाया।।
'वसुधैव कुटुम्बकम्' के प्रचारार्थ एक मूर्ति चली थी।
जैन-धर्म-पताका फहराने को एक ज्योति जली थी।।

हे! बाल-ब्रह्मचारी मुनिवर अडिग रहे संयम-पथ पर।
दुखियों का कष्ट मिटाने को बढ़ते रहे मुक्ति-पथ पर।।
मानव को मानवता बतलाने एक शुभ-काम चली थी।
जैन-धर्म-पताका फहराने को एक ज्योति जली थी।।

तुम क्रान्तिकारी मुनिवर हो! जन-जन के महान उद्धारक।
तुम जैनागम-रत्नाकर हो! श्रमण-संस्कृति के आराधक।।
जिन-आगम ज्ञान-सुधा बरसाने को एक सरित बही थी।
जैन-धर्म-पताका फहराने को एक ज्योति जली थी।।

हे! 'कलियुग-प्रधान-मुनिवर' अभिनन्दन करते सभी आज।
हे! 'स्थित-प्रज्ञ-महामुनिवर' गुरु श्री रत्नचन्द्र महाराज।।
श्रद्धा-पुष्प चढ़ाने तुमको पुण्य-जयन्ती पर आज मनीषी।
जैन-धर्म-पताका फहराने को एक ज्योति जली थी।।

★

गुरुदेव का ज्योतिर्मय जीवन

रमेशचन्द्र शर्मा, एम० एस-सी०

जिस प्रकार गुणशील-सम्पन्न सतति से कुल का नाम होता है उसी प्रकार महान् पुरुष की अमर कीर्ति एव ज्योतिर्मय जीवन से उसका नाम देदीप्यमान हो उठता है। सम्वत् १८५० मा० कृ० चतुर्दशी के दिन शुभ मुहूर्त मे तातीजा ग्राम के सुप्रतिष्ठित चाधरी श्री गगाराम जी की सुशीला धर्म पत्नी श्रीमती सरूपा देवी जी की कुक्षी से एक ऐसी ही अलौकिक ज्योति का प्रकाश हुआ। अनेक शुभ लक्षणो को देखकर माता पिता ने अपने परिवार के समक्ष उस ज्योति का नाम रत्नकुमार रखा। आगे चलकर यही 'रत्न' पूज्य श्री रत्नचन्द्र जी महाराज के नाम से विख्यात हुए। इन्होंने अपनी कृति वाटिका मे अनेक ग्रन्थ पुष्पों का उत्पादन करके भक्त भ्रमरो और साहित्य-प्रेमियो की रसास्वादन की पिपासा को सदैव के लिए परितृप्त किया। साथ ही आपने पुष्प की तरह मुकुलित होकर, खिलकर, अपनी भीनी-भीनी सुगध एव मनोमुग्धकारी सौंदर्य से आसपास के समस्त वातावरण को सुगन्धित एव सौंदर्य से परिपूर्ण कर दिया। आपने विश्व-वाटिका मे अपनी अमर वाणी के द्वारा स्निग्ध, शीतल, शीर्ष स्थान प्राप्त किया। आपकी अमरवाणी से विश्व-वाटिका, जीवन-पुष्पों की सौष्ठव, मधुरिमा, सौम्यता, सरसता, माधुर्य तथा मकरन्द की मादकता से महकने लगी। आपकी उज्ज्वल वाणी का यशोगान चारो ओर सगीत की झकृत लहरियो मे गुञ्जार करने लगा। समस्त मानव आत्माओ का कलुष धुल गया। अब आप सदैव भ्रमर भक्त वृन्दो से परिवेष्टित रहने लगे। जन-मानस इन सद्गुणो की सुगन्ध की आभा पाकर आत्मतृप्ति एव आत्मशान्ति का अपूर्व अनुभव करने लगा।

तदनन्तर आप समस्त जनता को अपनी अमरवाणी का सन्देश सुनाने के लिये जगह-जगह भ्रमण करने लगे। आपने पजाब, मारवाड, मेवाड, मालवा तथा उत्तर प्रदेश आदि प्रान्तो मे शुद्ध जैन धर्म का महान प्रचार किया। आगरा लोहामण्डी, हाथरस, जलेसर, परासोली आदि बहुत से नवीन क्षेत्र खोले। अकेले जलेसर मे ही आपने ब्राह्मणो के ३०० घरो को शुद्ध जैन धर्म की दीक्षा दी थी। आपने बहुत से शास्त्रार्थ भी किये, जिनमे एक श्वेताम्बर मूर्ति पूजक सन्त श्री रत्न विजय जी से 'मूर्तिपूजा शास्त्र विरुद्ध है' विषय पर लश्कर में सम्वत् १९१७ मे हुआ था। इसी तरह आगरा लोहामण्डी मे तत्कालीन एक जैन यति से भी आपका शास्त्रार्थ हुआ था। लेकिन इन सबमे सर्वत्र आपका ही विजय का शखनाद गूजता रहा और जनता आपके बतलाये मार्ग मे तल्लीनता के साथ अग्रसर हुई।

आप विद्वान और कवि ही नही बल्कि महान त्यागी भी थे। मुनि जी ने महाव्रतो के साथ-साथ अनेक विशिष्ट नियमों का भी बडी दृढता से पालन किया। आपके सुयोग्य शिष्य परिवार मे सन्त शिरोमणि कविरत्न उपाध्याय पण्डित श्री अमरचन्द्र जी महाराज जी जैसे प्रखर तेजस्वी सन्त आज भी आपकी सुकृति मे चार चाँद लगा रहे हैं। उन्होंने सादडी सम्मेलन मे पधार कर सघ की जो महान सेवाएँ की

है तथा सोजत जोधपुर और भीनासर में अपना स्वास्थ्य अच्छा न होते हुए भी जो सत् प्रयत्न किये हैं, और करते आ रहे हैं, वे सब जैन समाज में सर्वत्र विदित हैं।

अधिक क्या गुरुदेव श्री रत्न मुनि तप-तपस्या की कसौटी पर निखरे हुए शुद्ध सोने के समान थे। आपने पक्षपात की भावना का तो शायद अनुभव ही नहीं किया था। आपकी वाणी में ओजस्वी माधुर्य की झनझनाहट दूर-दूर तक गूंजने लगी थी। आपकी बुद्धि बहुत ही कुशाग्र थी।

जो फूल खिलता है, वह सदैव खिला ही नहीं रहता। वह अपनी सुगन्ध को संसार को प्रदान कर सदैव के लिये अमरता को प्राप्त कर ही लेता है। इसी प्रकार आपने लोहामण्डी में विराजते हुए, चारों ओर अपनी सौरभमय कीर्ति को फैलाते हुए स्वर्गवास से ८ दिन पूर्व समस्त श्रीसंघ से क्षमा-याचना की और अपना अन्तिम धर्म-सन्देश देते हुए अपनी मधुर वाणी से मुस्कराते हुए फरमाया— 'यह संसार नश्वर है। जो जन्म लेता है वह मरता अवश्य है। इस तरह श्रद्धेय श्री रत्नमुनि जी महाराज इस पवित्र शरीर को जन-समुदाय के बीच छोड़ इस नश्वर संसार से सदैव के लिए विदा हो गये।

यद्यपि मुनिजी आज शरीर रूप से हमारे सामने उपस्थित नहीं हैं परन्तु फिर भी आपकी अमर वाणी हमारे कानों में अहिंसा एवं त्याग के मधुर रस का संचार कर रही है। आपकी कीर्ति रूपी सुगन्ध आज भी सर्वत्र व्याप्त है। जब तक यह संसार है, यह स्वर भी ज्यों का त्यों सदैव ही हमारे दिलों में गूंजता रहेगा।

पूज्य श्रद्धेय गुरुदेव रत्नमुनि महाराज की इस शताब्दी के शुभ अवसर पर मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि इन्हीं शब्दों के साथ समर्पित करता हूँ।

★

मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्

आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज

मानव समाज मे आज यदि नैतिकता, धार्मिकता आदि गुणो का बाहुल्य दृष्टिगत होता है, उसका श्रेय विभिन्न युगो मे उत्पन्न होने वाले उन महान संतो को है, जिन्होंने मानव जाति के उत्थान की तरफ अपना जीवन अर्पित किया है। ऐसे महान उपकारक सन्तो मे श्री रत्नचन्द्र जी महाराज का अनोखा स्थान है।

आपके जीवन पर जब हम दृष्टिपात करते हैं, तो वीर-भूमि राजस्थान के जयपुर राज्य के तातीजा ग्राम मे जन्म लेकर किशोरावस्था मे सासारिक क्षणिक सुखद वैभव को तिलाञ्जलि देकर श्री रत्नचन्द्र जी वैराग्यमयी भावना से ओत-प्रोत होकर उस गुरु की खोज मे निकल पड़े, जहाँ पर दीक्षित होकर चिरशान्ति का अनुभव उपलब्ध हो सके।

"जिन खोजा तिन पाइयाँ" इस लोकोक्ति के अनुसार वह गुरु इन्हे मिल गए, भ्रमण करते हुए आप नारनौल नगर के जैन धर्म स्थानक मे तपस्वी हरजीमल जी म० विराजित थे वहाँ पहुँचे। सत्संग से प्रभावित होकर आर्हती दीक्षा ग्रहण करने की भावना हृदय मे जागृत हो गई। अवसर पाकर उन्होंने अपने मन की बात गुरु के चरणो मे रख दी। माता-पिता की तरफ से आज्ञा प्राप्त कर आगार से अणगार की तरफ मुड गए। रत्नचन्द्र से रतन मुनि के रूप मे परिणत हो गए।

आपके अन्दर पैनी बुद्धि, प्रखर प्रतिभा और तर्कपूर्ण मेधाशक्ति का बाहुल्य था, जिससे अल्पकाल मे ही अपनी कठोरमयी साधना से संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश जैसी प्राचीन भाषाओ पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया। आगम के साथ-साथ दर्शन, साहित्य और ज्योतिष शास्त्र का भी विशेष अध्ययन कर लिया।

तप, संयम और विशेष अध्ययन से परिपक्व होकर, गुरु जी की आज्ञा शिरोधार्य कर धर्म-प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया। अधविश्वास और अज्ञानता से मानव समुदाय जहाँ घोर अन्धकार मे पडा था, उसको ज्ञान-ज्योति देकर सत्पथ पर आरूढ़ किया। आपके धर्म-प्रचार से अनेक नवीन क्षेत्र बने। आपकी अध्यापन कला भी बहुत सुंदर थी। आपने अनेक श्रावक-श्राविकाओ को तथा साधु-साध्वियो को समय-समय पर शास्त्रों का अध्ययन कराया था।

आप मे आगम और दर्शन शास्त्र का ज्ञान तो गम्भीर था ही, स्वर साधना का परिज्ञान भी अत्यन्त उच्च कोटि का था। आपके सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की अनुश्रुतियाँ भी समाज मे प्रचलित हैं।

योग-साधना के साथ-साथ ज्योतिष शास्त्र के भी पारगत विद्वान थे। उनकी भविष्य-वाणियो के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। जो लिखित तथा जनश्रुत हैं। आप यशस्वी महान् होते हुए भी गुरु-

श्री एस एस जेन सघ के उपाध्यक्ष

श्री प्रभुदयाल जैन

धर्मों के प्रति अटूट श्रद्धा भक्ति आप में थी। आप विनम्रता की प्रतिमूर्ति थे। आपने सामान्य साधु के रूप में संघ-सेवा की अभिलाषा प्रकट की। परन्तु आचार्य जैसे गुरुतर भार को ग्रहण नहीं किया। यह आपकी विशिष्टता का द्योतक है।

लेखन-कला इतनी सुन्दर थी कि मानो कागज पर मोती जड़ दिए हों। आपने साहित्यिक क्षेत्र में बहुत-सा कार्य किया है। आपका साहित्य आत्मानुभूति का तथा चरित्र-निर्माण का साहित्य है।

'गागर में सागर' इस लोकोक्ति के अनुसार आपने अनेक शास्त्रों के आधार पर "मोक्ष मार्ग प्रकाश" को लिखकर मानव-मेदिनी को अनुपम प्रकाश प्रदान किया है।

आप सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न सन्त थे। आपके गुणों का संस्मरण करके मनुष्य श्रद्धा से नतमस्तक हो जाता है।

* * *

गुरुदेव ने इस जगती में अपना जीवन सफल किया।
श्री अपने जीवन से जन को है एक नया आदर्श दिया॥
किस प्रकार संयम द्वारा साधक ऊँचा चढ़ पाता है।
गुरुदेव का जीवन हमको स्पष्ट झाँकी दिखलाता है॥

× × × ×

तेजस्वी तपोमय जीवन गुरु का सूरज सम चमका है।
और गन्ध कुसुम समान गुरु जीवन जग में रमता है॥
पूज्य प्रवर श्री रत्नचन्द्र जी मोक्ष-मार्ग प्रकाशक थे।
भव्य जनों के उद्धारक औ मिथ्या-तम संहारक थे॥

—कीर्ति मुनी

★

ओ महाज्ञान के भण्डारी

महावीर प्रसाद जैन, एम० ए०

वन्दन गुरुवर ! वन्दन मुनिवर ।
वन्दन सत्वर ! वन्दन युग तक ।।
जय जय गुरुवर ! जय-जय मुनिवर ।
जय-जय सत्वर ! जय युग-युग तक ।।

हे महाबोधि, हे महापुरुष, हे महाज्ञान के भण्डारी,
हे महामुने ! हे सौम्य हृदय ! मानव तुझ पर है बलिहारी ।
हे सयम, त्याग, सत्य जग के सगम, मानवता के प्रहरी,
हे श्रमण-सस्कृति के शोधक, निभय व्रतपालक गुणशाली ।।

हे "गगा" तनय "सरूपा" सुत मुनि "हरजीमल" के शिष्य महा ।
हे लाल भरत के "रत्नचन्द्र", जय हो तेरी तू दिव्य महा ।
हम सब नतमस्तक हो गुरुवर ! अभिनन्दन तेरा करते है,
हे "जैनचन्द्र" मुनि "रत्नचन्द्र" तुम धन्य-धन्य हो धन्य महा ।।

जब हिंसा से प्लावित जग था और नाव जगत की थी भारी,
उस समय महामुनि तुम आए करने इस जग की रखवारी ।
हे महावीर के अनुयायी, हे जैन जगत मे अवतारक,
फिर आज महामुनि बार-बार यह जग तुझ पर है बलिहारी ।।

श्रद्धाजलि अर्पित करते हैं गा-गा कर तेरा गुण गौरव,
यह पुण्य शताब्दी सुअवसर है, फैलाने तेरा यश-सौरभ ।
हम धन्य हुए गुरुवर अब तो पाकर के शुभ आशीष तेरा,
युग-युग तक अमृत बरसेगा और गूजेगा तेरा वैभव ।।

थे कटक पथ के तुम राही, पर दिखा गए सबको वह पथ,
जीवनपर्यन्त तपस्या कर तुम सिखा गए, सबको वह व्रत ।
हे महाचक्षु ! हे महाज्ञान ! हे तप्त स्वर्ण ! हे जन-नायक,
ओ जैन जगत के चाँद ! तुझे पूजेगा जग भी युग-युग तक ।।

★

गुरुदेव का देदीप्यमान जीवन

कस्तूर मुनि

मैं उस पवित्र आत्मा के पवित्र भाव-चरणों में अपने श्रद्धा के सुवासयुक्त सरस पुष्पों को चढ़ा रहा हूँ जिस महान आत्मा के भाव रूपी सूत्र से हमारे जीवन का सम्बन्ध है। जो जीवन हमारी अनन्त श्रद्धा के पात्र हैं। जब उनके प्रति हमारा श्रद्धा का सुमधुर निर्झर पूरे वेग से बहना शुरू होता है तब वह बड़ी से बड़ी बाधाओं की चट्टानों को भेद कर भी उभर कर बाहर आता है। यह कोई आश्चर्य करने जैसी बात नहीं है। जब सच्ची प्यास होती है और पास में सुमधुर मिश्री को लिए हुए पानी होता है तब पानी पीने की इच्छा रखने वाले का सहज पानी की ओर झुकाव का होना स्वाभाविक ही है। अब मुझे इधर-उधर न जाकर उस महान् आत्मा के जीवन के सम्बन्ध में ही कुछ लिखना है। जिनका जीवन रूपी घट सद्गुणों की जल-राशि से ओतप्रोत था। उनका जन्म राजस्थान में जयपुर राज्य के ताखीला नगर में संवत् १८२ में माघमास की कृष्णा चतुर्दशी के शुभ दिवस में हुआ था। जिनका सर्वप्रिय नाम था "रत्न" जो कि माता की आँखों का तारा और हृदय का था अति प्यारा पिता का था वह अति लाड़ला। जिनकी माता का नाम लक्ष्मा देवी और पिता का नाम जयाराम जी था। उस सुकुमार रत्न ने १९९२ में बचपन की अपनी उन कोमल कड़ियों से ऊपर उठकर, अपने जीवन के उभरते हुए उन महत्त्व-पूर्ण क्षणों को उस मस्तानी जवानी के प्रांगण में रखा। यह मस्तानी जवानी जिसमें जोश होश से चार कदम आगे रहता है। तरुणाई जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है जिसकी सफलता की उस दृढ़ भूमि पर सभी सफलताओं की नींव रखी जा सकती है। इसलिए उन्होंने उस चमकती हुई जोश की शक्ति को सत्य और त्याग के सांचे में ढालने के लिए अपने जीवन को एक नया ही मोड़ दिया। जोश पर होश का ब्रेक जब लगे ऐसे पथ पर चलने की उन्होंने अपने मन में ठानी। इस प्रकार संसार से जीवन का सही सार प्राप्त करने की अभिलाषा से उन्होंने नारनौल नगर में परम तपस्वी पूज्य श्री हरजीमल जी महाराज के पवित्र कमलों में अपने आप को सहर्ष समर्पित कर दिया। रत्नकुमार के माता-पिता ने उस विचारशील बालक की उत्कट इच्छा और संयम-पथ पर चलने की प्रबल भावनाओं को परखा और समझा।

रत्नकुमार के माता-पिता भी रत्नकुमार की जीवन रूपी कली को महकते हुए फूल के रूप में देखना चाहते थे। रत्नकुमार के माता-पिता ने रत्नकुमार के भविष्य की मधुर आशाओं का आदर करते हुए सहर्ष दीक्षा की आज्ञा प्रदान की। जो हृदय से बोलता है वह दूसरों के हृदय को एक दिन छू ही लेता है। जो सच्ची बात होती है वही दिल में उतरती है। उस बालक के जीवन के उभरते हुए उभार को मौन रखने में समर्थ हो सकता था जिसके पीछे भविष्य के लिए सत्य अहिंसा आदि की प्रबल भावनाओं का वेग हो। उन्होंने स्वीकृति के रूप में माता-पिता से विधिवत् आज्ञा प्राप्त की।

यह था रत्नकुमार का क्रांतिकारी जीवन का सही मोड़। सहर्ष मुनि-दीक्षा स्वीकार कर रत्नकुमार ने गुरुदेव के अनुरूप ही अपने आप को बदल डाला। अब वे रत्नकुमार के स्थान पर श्री रत्नचन्द्र जी

महाराज के शुभ नाम से बोले जाने लगे। अब उनकी नज़रो मे सारा समाज एक परिवार के रूप में और सारा देश एक घर के रूप मे हो गया। यह थी उनके आकाश की तरह सही और प्रबल विचारो की विशालता। वह जिस विशिष्ट गुरु की अपने जीवन मे इच्छा लिए हुए थे, वह इच्छा उनकी पूर्ण हुई। ससार मे सही राह और दिशा की कमी नही पर मिलती है खोजने वाले को।

सत्य-प्राप्ति की प्रबल भावना रखने वाले का एक न एक दिन अपने जीवन मे सत्य की उपलब्धि हो ही जाती है। प्यासे को उसकी पानी को प्राप्त करने की प्रबल भावना एक दिन शीतल निर्झर के पास लाकर खड़ा कर देती है। श्री रत्नचन्द्र जी महाराज अपने जीवन मे ज्ञान के साथ ध्यान का और जप के साथ तप का समन्वय लेकर चले। उन्होने अपने आत्मा रूपी वस्त्र पर से त्याग और तप द्वारा कुसस्कारो की धूलि को साफ कर दिया। सादा जीवन और उच्च विचार वाले सिद्धान्त की वह प्रतिमूर्ति थे। उस कृशकाय पुरुष मे वह महान दिव्य प्रकाश था, जिसके द्वारा अनेको भटकती हुई, जिंदगियो को जीवन का वह अनोखा प्रकाश मिला। जिस प्रकाश के द्वारा, उन्होने अपने जीवन को सदा-सदा के लिए प्रकाश मे बदल डाला। श्री रत्नचन्द्र जी महाराज के जीवन मे त्याग और तप का वह मधुर सौरभ था, जिस सौरभ के द्वारा, उन्होंने भौतिक सौरभ विलासियो को, आध्यात्मिक सौरभ विलासी बनाया। नारनौल, महेन्द्रगढ़, दिल्ली, मेरठ और उनके आस-पास के प्रान्त हाथरस और लश्कर, शिवपुरी आदि उसके धर्म प्रचार के रूप मे विशाल क्षेत्र रहे हैं। आगरा लोहामडी मे तो श्री रत्नचन्द्र जी महाराज के नाम से कई सस्थाएँ एक के बाद एक उभर कर जनता के सामने आ रही हैं, जिन सस्थाओं की तह मे जन-कल्याण की प्रबल भावनाओ का वेग छुपा हुआ है। रत्नचन्द्र जी महाराज सत्य और अहिंसा की मशाल लेकर जिधर भी निकले उधर ही सैंकड़ो जिन्दगियो ने उस मस्ताने परवाने की तरह उसकी सत्य और त्याग की लौ पर अपने आपको सहर्ष अर्पण कर दिया। यह थी उनके त्यागमय जीवन की विशेषता, समाज केवल विचारो से नही हिलता, बल्कि चरित्रसम्पन्न व्यक्तियो के प्रभाव से ही हिलता है। उन्होंने मानव समाज मे जहाँ भी बुराइयो के रूप मे गन्ध देखी, वही उन्होने विवेक के द्वारा उन बुराइयो की गन्ध को साफ किया। दु ख की नस को दिव्य दृष्टि द्वारा ही परख सकते हैं। दूसरा नही। महान् व्यक्ति का जीवन केवल अपने अनुयायियो के लिए ही नही होता, बल्कि सम्पूर्ण ससार के लिए एक प्रेरणा और श्रद्धा का स्रोत होता है। हम न महापुरुषो को अपने क्षुद्र विचारो के घेरे मे बन्द कर सकते हैं। हम उनको इस रूप मे बाट सकते हैं, पर महापुरुषो का जीवन एक आत्मतत्त्व की तरह से अकाटच और अभेद्य होता है, जो हमारे तुच्छ विचारो की श्रेणियो से कभी भी कटने वाला नही है। महान् पुरुषो का जीवन तो समुद्र की उस विशाल जल-राशि के रूप मे होता है, जिसको कि हम अपने विचारो की उन छोटी-छोटी असख्य घट-राशि मे नही बदल सकते। महान् को महान् ही समझ सकता है, क्षुद्र नही। महान् पुरुषो की अगर महानता को हम देखना चाहते हैं, तो उनके पवित्र चरणो मे हम महान् बन कर ही जाएँ, क्षुद्र नही। नीर-क्षीर-विवेकी बनकर हम महान् पुरुषो के जीवन के उस सत्य को परखे जो सत्य हमारे जीवन के लिए परम आवश्यक है। वह सत्य जो हमारे जीवन मे बड़ी से बड़ी उलझन को भी सुलझाने मे समर्थ है। महापुरुषो के पास जो भी चला जाता है, फिर वह सदा के लिए उनका ही बन जाता है। महापुरुषो के जीवन मे एक अनोखी विशेषता होती है। महापुरुषो के जीवन मे किसी अप्रिय प्रसग के उपस्थित होने पर भी उनके जीवन मे उग्र रूप के स्थान पर स्नेह की छटा के ही दर्शन होते हैं। विरोधियो की विषाक्त वाणी की वर्षा को भी वे अमृत की मधुर बूंदो में बदल देते हैं। कड़वास

स्वर्गीय श्री सेठ रतनलाल जी मित्तल

स्व. श्री हजारीलाल जी जैन (सभापति)

समाज और राष्ट्र के कर्मठ कार्यकर्ता
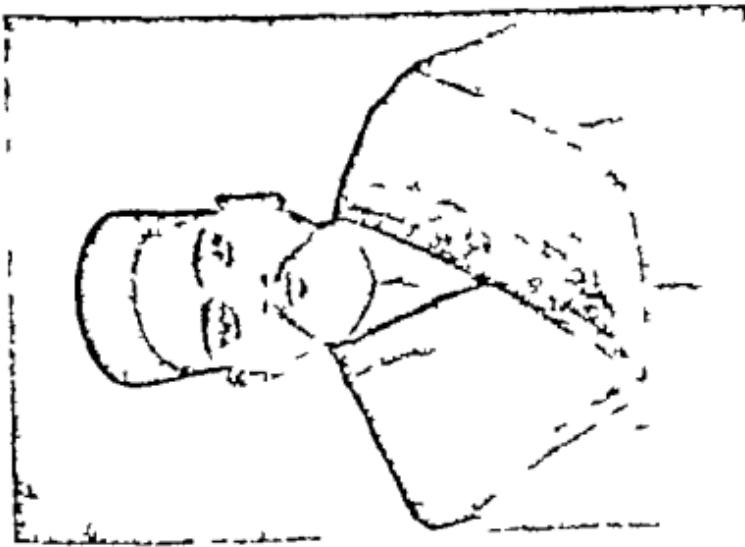
श्री अमरनाथ जैन

श्री रत्नमुनि जैन इण्टर कालेज के कार्यवाहक प्रबन्धक

श्री प्रमोदकुमार जैन

को मिठास में बदलने की उनमें एक अनोखी कला होती है। विरोधी प्रचार रखने वाले भी महापुरुषों के पास से जब जाते हैं तो वह भी सद्विचारों का मिठास ही लेकर जाते हैं आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र का एक ऐसा मधुर प्रसंग है जिसमें जीत तो जीत बन कर रहती ही है परन्तु हार दिखाई देने वाली भी एक दिन जीत के रूप में प्रकट होती है। महापुरुषों से कभी भी किसी का अनिष्ट नहीं होता। कभी अगर किसी का होता भी है तो अभीष्ट ही होता है। महापुरुषों को दुखियों का दुख ही सताता है अपना नहीं। उनके जीवन से सदा ही दुखियों के लिए सहानुभूति स्नेह और सद्भावनाओं की फुहारें पड़ती हैं जिसके स्पर्श से तृप्त आत्मा एक दिन अपने जीवन में शीतलता की अनुभूति करती है। जिन महापुरुषों को हमने अपने विचारों में श्रद्धा के केन्द्र बना रखे हैं उनके पवित्र चरणों में जाने से पूर्व हमको अपने मन को देखना होगा। हमारा मन श्रद्धा से भरा हुआ है या खाली हमारे हाथ खाली हैं तो कोई दुख की बात नहीं। परन्तु अगर हमारा मन श्रद्धा से बिल्कुल खाली है, तो यह बात हमारे लिए अवश्य दुख की है। बर्तन और वस्त्र चाहे कितने ही मैले क्यों न हो जायें, परन्तु उनको एक दिन मांज-धोकर साफ किया जा सकता है और वे उपयोग की वस्तु बन सकते हैं। परन्तु अगर बर्तन फूटा हुआ है और वस्त्र फटा हुआ है तो उनकी उपयोगिता भी समाप्त हो जाती है। इसी तरह अगर हमारा मन का बर्तन और श्रद्धा का वस्त्र ठीक है तो यह हमारे काम के लिए हो सकते हैं। परन्तु अगर हमारे मन का बर्तन टूटा हुआ है और श्रद्धा का वस्त्र फटा हुआ है तो इस अवस्था में हमको सत्य की उपलब्धि नहीं हो सकेगी। श्री रत्नचन्द्र जी महाराज का चमकता हुआ शुभ्र जीवन आज भी हमें जीवन की मधुर प्रेरणाएं दे रहा है। उनका त्यागमय जीवन सड़कड़ाते हुए साधकों के लिए एक प्रकाश-स्तम्भ के रूप में था और है। उनका जीवन एक महकते हुए फूल की तरह से था जो आज भी हमारे जीवन के लिए एक तप और त्याग की सुमधुर सुवास दे रहा है। अगर हम उनकी उज्ज्वल और जीवनस्पर्शी शिक्षाओं को अपने जीवन में लेकर चलेंगे तो एक दिन हम भी उनके भक्तों की श्रेणी में खड़े होने के सच्चे अधिकारी बन सकेंगे। इसी रूप में सच्चे अर्थों में हम उनकी पुण्य शताब्दी मना सकेंगे।

★

श्रमण-संस्कृति के समुज्ज्वल नक्षत्र गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज

श्री मदनलाल जी जैन

गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज पूण सयमी तथा श्रमण-सस्कृति के समुज्ज्वल नक्षत्र के रूप मे भारत वसुन्धरा पर अवतरित हुए। सयम तथा वैराग्य की ओर जन्म से ही आपका आकर्षण था। यही कारण है कि केवल बारह वर्ष की अल्पायु मे ही पूज्यपाद श्री हरीजमल जी महाराज का शिष्यत्व स्वीकार करके जैन साधु के मार्ग को स्वीकार कर लिया। इसके पश्चात् आपने अपने शरीर की निरपेक्षता का अपने जीवन की प्रयोगशाला द्वारा जो महान् तथा सुन्दर प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत किया वह सदा के लिए स्मरणीय बन गया।

श्रद्धेय श्री रत्नचन्द्र जी महाराज न केवल एक उदारचेता महापुरुष थे, अपितु वह इस प्रकार के युग-प्रवर्तक योगी थे, जिन्होंने ससार मे सुख और शान्ति को स्थिर रखने के लिए समता, सत्य, अहिंसा और विश्व-बन्धुत्व की भावना को अत्यन्त आवश्यक बतलाया। पूज्य गुरुदेव जैन जगत् के ऐसे प्रकाश-स्तम्भ थे, जिनके जीवन का लक्ष्य सत्य-प्राप्ति और सम्पूर्ण आध्यात्मिक विकास था। वह सद्गुणो के पुञ्ज थे। उनकी तप साधना नि सीम थी। उनकी सेवावृत्ति, सरलता, प्रशान्तमुद्रा और कठोर साधना सर्वथा अपूर्व थी, उन्होंने अपने जीवन को कोटि-कोटि मनुष्यो के कल्याण के लिए अर्पित कर दिया था। समस्त प्राणियों के प्रति उनका समता तथा मैत्री का भाव था। उनका जीवन स्वच्छ, निर्मल, उज्ज्वल एव पवित्र था। सघटन और एकता के वह वस्तुत अग्रदूत थे।

श्रद्धेय गुरुदेव ने सैकडो और सहस्रो मीलो की पैदल यात्राएँ की और सहस्रो लोगों को सन्मार्ग पर आरूढ किया।

जैन-धर्म की मुनि-साधना वस्तुत कठोरतम साधना है। इस साधना मे मन, वाणी और काया के सभी दोषो का दमन करना पडता है। गुरुदेव वास्तव मे पूर्ण इन्द्रियजयी कठोरतम साधक थे। इस अवसर पर मैं उनके सातिशय व्यक्तित्व के प्रति सविनय श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

* * *

युग-प्रधान

पंजाब केसरी प्रवर्तक प. शुक्लचन्द्र जी महाराज

यह विश्व एक रंगमंच है। इसमें अनेक प्राणी उत्पन्न होते हैं और नट की भांति अपना रोल खेल कर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर जाते हैं। कौन किसको स्मरण करता है? परन्तु जो महापुरुष अपने सत्कार्यों से अपनी विशेषताओं से अपने आध्यात्मिक गुणों से जन-हित कार्यों से इस मानव संसार को चमत्कृत कर जाते हैं अज्ञान-तिमिर को दूर कर आलोक विस्तृत कर जाते हैं, उनका ही नाम इतिहास में अमर होता है। वे मरकर भी अमर होते हैं। अदृश्य होकर भी दृश्य होते हैं। उनका नाम उनका जीवन युगयुगान्तरों तक जनता से जय-जय कार का उपहार प्राप्त करता है।

युगपुरुष वही होता है जो अपने युग को नया सन्देश नयी दिशा नया मोड़ देता है और उस युग को नयी चेतना स्फूर्ति और प्रेरणा मिलती है तथा भूले-भटके राही को सही दिशा पर टिका देता है।

परम श्रद्धेय पंडित रत्न श्री रत्नचन्द्र जी महाराज भी एक ऐसे युग-प्रधान थे जिन्होंने अपने युग को उस महावीर की वाणी अहिंसा का सन्देश दिया और नव-जीवन प्रदान किया। श्रमण-संस्कृति के अमर देवता भगवान् महावीर की सन्देश की लहर घर-घर में हिलोरें लेने लगी। यह उन्हीं की कृपा का फल है।

कौन जानता था कि राजस्थान का यह युवक जिसके हृदय में आध्यात्मिकता की आहुति चिनगारी छिपी हुई है वह एक दिन प्रकट होकर अखिल विश्व में ज्ञान का प्रकाश करेगी।

यह युग-प्रधान पुरुष आज हमारे सामने नहीं है परन्तु फिर भी उनका सन्देश उनका उपदेश आज हमारे नयनों के सामने ज्यों का त्यों है। यह जैन समाज उस महान् ज्योतिर्धर पर जितना गर्व करे थोड़ा है।

* * *

प्रभावशाली युग-पुरुष

प्रवर्त्तक मुनि हीरालाल

परम श्रद्धेय आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी महाराज अपने समय के एक बडे ही प्रभावशाली युगपुरुष हुए हैं। जन-जीवन मे धार्मिक सस्कार स्थापित करना उनका एक विशेष गुण था। अपने जीवन-काल मे आपने सैकडो परिवारो को स्थानकवासी जैन परम्परा मे दीक्षित किया तथा उन्हे सुबोध देकर आत्मकल्याण के मार्ग पर लगाया था। उनकी पुण्यशती प्रसग पर श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना प्रत्येक धर्म-प्रेमी का कर्त्तव्य है। उसी अभिनन्दन परम्परा मे, मैं भी अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

★ ★ ★

धन्य-धन्य गुरुरत्न, रत्न-सम,
ज्योतिमय जीवन उज्ज्वल।
धूम, वर्तिका, तैल-पूर से—
दूर, स्वयप्रभ और अचञ्जल॥

क्षुद्र बिन्दु से, महासिन्धु तुम,—
बने, स्वय को विस्तृत कर।
क्षुद्र व्यक्ति से, महापुरुष तुम—
बने, मनोमल विगलित कर॥

गुरुवर तुम से तुम ही थे, बस—
अनन्वयालङ्कार यहाँ है।
रवि से उपमा हेतु दूसरा,
प्रभा दीप्त नक्षत्र कहाँ है?

—उपाध्याय अमर मुनि

★ ★ ★

प्रभावशाली युग-पुरुष

प्रवर्त्तक मुनि हीरालाल

परम श्रद्धेय आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी महाराज अपने समय के एक बड़े ही प्रभावशाली युगपुरुष हुए हैं। जन-जीवन में धार्मिक संस्कार स्थापित करना उनका एक विशेष गुण था। अपने जीवन-काल में आपने सैकड़ों परिवारों को स्थानकवासी जैन परम्परा में दीक्षित किया तथा उन्हें सुबोध देकर आत्मकल्याण के मार्ग पर लगाया था। उनकी पुण्यशती प्रसंग पर श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना प्रत्येक धर्म-प्रेमी का कर्त्तव्य है। उसी अभिनन्दन परम्परा में, मैं भी अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

* * *

धन्य-धन्य गुरुरत्न, रत्न-सम,
ज्योतिर्मय जीवन उज्ज्वल।
धूम, वर्तिका, तैल-पूर से—
दूर, स्वयंप्रभ और अचञ्चल॥

क्षुद्र बिन्दु से, महासिन्धु तुम,—
बने, स्वयं को विस्तृत कर।
क्षुद्र व्यक्ति से, महापुरुष तुम—
बने, मनोमल विगलित कर॥

गुरुवर तुम से तुम ही थे, बस—
अनन्वयालङ्कार यहाँ है।
रवि से उपमा हेतु दूसरा,
प्रभा दीप्त नक्षत्र कहाँ है?

—उपाध्याय अमर मुनि

* * *

गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज की काव्य-साधना

सुरेन्द्र 'रत्न' एम० ए

अनादिकाल से इस वसुन्धरा पर भौतिक-जीवन की विकराल लपटों के बीच फँसे हुए मानवों को अनन्त शान्ति एवं सुख का मार्ग प्रशस्त करने के लिये समय-समय पर अनमोल रत्नों का प्रादुर्भाव होता आया है। जिन्होंने आध्यात्मिक-जीवन की महत्ता और उपादेयता का डंका बजाकर समाज के नैतिक-उत्थान को चिरस्थायी रखा है। उन्हीं अनमोल-रत्नों में से एक श्रद्धेय गुरुदेव रत्नचन्द्र जी महाराज थे जिनका पुण्य-शताब्दी समारोह बैसाख सुदी १२ को मनाया जा रहा है।

गुरुदेव रत्नचन्द्र जी महाराज का सम्पूर्ण जीवन धर्म साहित्य और समाज की तत्कालीन उच्छृंखल कड़ियों के एकीकरण में ही संलग्न रहा। आपका ज्ञान धर्म दर्शन न्याय व्याकरण ज्योतिष राजनीति एवं साहित्य के क्षेत्र में था। संस्कृत प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा के आप श्रेष्ठ विद्वान माने जाते थे। आध्यात्मिक चिन्तन एवं मनन की छाप आपके साहित्य में पूर्णरूपेण दृष्टिगत होती है। सम्पूर्ण साहित्य में आपकी आत्मा बोलती सी दिखाई देती है। शरीर से दुबले-पतले थे किन्तु आपकी आत्मा महाशक्तिशाली थी। इसी आध्यात्मिक शक्ति के धारण करने पर ही आपने लाखों अजैनों को जैन बनाया और सैकड़ों नवीन क्षेत्र खोले।

गुरुदेव के काव्य-साहित्य में केवल पठन एवं पाठन ही नहीं है बल्कि जीवन का रहस्य तथा आत्मानुभूति और आत्म-कल्याण की भावनाओं से ओत-प्रोत एक शुद्ध पवित्र सरल एवं संयमी जीवन की झाँकी है। आपके साहित्य में जीवन और समाज के कल्याण का स्वर झनकार कर उठा है जो कि पाठक के हृदय-तन्त्री को झकझोर देता है और साधक को आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है। आपके सम्पूर्ण-साहित्य में आपका महान जीवन-दर्शन साकार हो उठा है। क्या गद्य और क्या पद्य? दोनों साहित्य में समाज के आत्म-कल्याण और चरित्र-निर्माण की उत्कृष्ट भावना व्याप्त है। यहाँ पर अध्यात्मवाद और तत्त्वानुवाद की चर्चा है तो वहीं पर चरित्र-निर्माण के लिए स्तुति भजन और उपदेशात्मक कविताओं का प्रवाह है। आपकी पवित्रवाणी से गुम्फित सैकड़ों पद आज भी जीवन और जगत की असारता का दिग्दर्शन करते हुए साधकों को मुक्ति-पथ पर अग्रसर होने के लिये प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं।

आपके द्वारा रचित ग्रन्थों में मोक्ष-मार्ग प्रकाश प्रश्नोत्तरमाला बालावबोध नवतत्त्व बड़ा ढूंढिया हार दिगम्बर मत चर्चा तेरह पन्थ चर्चा गुणानन्द मनोरमा की ढाल अमर चक्रवर्ती का चौढालिया, रत्नावली कुंवर का चौढालिया बारह भावना की बारह-माला चमत्कार चिन्तामणि [illegible] तत्त्वानुबोध औपदेशिक पद स्तवन आदि प्रमुख हैं। उपरोक्त ग्रंथों में से कुछ तो प्रकाशित हो चुके हैं लेकिन अधिकांश अप्रकाशित हैं। सर्व प्रथम पण्डित रत्न पूज्य श्री रघुनाथ जी महाराज द्वारा

सम्पादित 'मनोहर रत्न-घनावलि' में गुरुदेव की कविताओं का संकलन हुआ था। तत्पश्चात् मुनि श्री श्रीचन्द्र जी महाराज के सद्प्रयत्नों से 'रत्न-ज्योति' दो भागों में प्रकाशित हुई। इसमें गुरुदेव द्वारा रचित महत्वपूर्ण कविताओं का संग्रह है। ये ग्रंथ ही हमारी समीक्षा के आधार हैं—

गुरुदेव रत्नचन्द्र जी महाराज के काव्य साहित्य को निम्नलिखित मुख्य पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) स्तुति-प्रधान काव्य
(२) प्रेरणा-प्रधान काव्य
(३) वैराग्य-प्रधान काव्य
(४) उपदेश-प्रधान काव्य
(५) चरित्र-प्रधान काव्य

स्तुति-प्रधान काव्य

स्तुति-प्रधान काव्य में गुरुदेव के द्वारा रचित स्तवन पद्य तथा लावणी छन्द पद्य आदि आते हैं, जिसमें तीर्थंकरो, आचार्यों, मुनियो एवं देवताओं की स्तुति करते हुए मंगल-कामना की गई है। स्तुति-प्रधान काव्य में एक ओर तो स्तुति करते हुए तीर्थंकरों-आचार्यों आदि की महानता को दर्शाया गया है तो दूसरी ओर लोक-कल्याण की भावना दिखाई गई है।

शांतिनाथ भगवान् की स्तुति करते हुए कवि कहता है कि हे नाथ! मैं तो आप ही की शरण में आना चाहता हूँ, क्योंकि आप ही मेरे जन्म-मरण के दुःख को हरने वाले हैं —

"शान्ति करता श्री शान्ति जिन सोलमा,
मन हर्ष धर चरण जुग शीस नाऊँ।
जन्म अरु मरण दुख दूर करवा भणी,
एक जिन राज की शरण आऊँ॥"

(रत्न-ज्योति, प्रथम भाग, पृ० ५)

हे भगवान्! आप सर्वज्ञ हैं। आपको अनेक नामों से इस जगत में पुकारा जाता है। इस असार संसार से पार लगाने वाले आप ही हैं। इसलिए हे नाथ! मैं आपके द्वार पर आया हूँ।

"ब्रह्मज्ञानी चिदानन्द शिव रूप तू,
विष्णु जगदीश तू अमर नामी।
अमल नें अचल निराकार ज्योतीश तुम,
अलख परमात्मा परम स्वामी॥

+ + +

तारण तिरण तुम विरुद्ध श्रवण सुणी,
आस धर द्वार तुम तणें आयो।

दयासिन्धु जिनराज सर्वज्ञ तुम
तार करतार भव-दुख जावो ॥

(रत्न-ज्योति प्रथम भाग पृ. ८-९)

हे शान्तिनाथ भगवान् ! काम क्रोध लोभ मोह आदि कर्मों के कारण मेरा आत्मा रूपी प्रकाश अंधकार में छिप गया है। इसीलिये सम्यक् ज्ञान के अभाव में अब तक आपके दर्शनों का प्यासा ही रहा —

'तप जप संजम सेवन बरकत बहु
करम पिंड भरम कर तिमिर छायो।
काम क्रोध लोभ वश आतमा अंधकार,
यहाँ तुम ज्ञान से नाहिं पायो ॥

(रत्न-ज्योति प्रथम भाग पृ. ९)

शान्तिनाथ भगवान की स्तुति करते हुये कवि विनम्र सरल हृदय से कहता है कि हे प्रभो ! मैं अनेकों बार जन्म लेता रहा हूँ किन्तु अब यह दास आपकी शरण में आ गया है आप ही इसके कष्टों को दूर कर सकते हो —

'भव दवानल में भटक्यो दुखी बिन सर्व निर्पोष अंधारी।
अब तुम चरण को शरण लियो है, प्रभु कीजो तारी ॥
श्री शान्ति जिनेश्वर अहो परमेश्वर, जाऊं बलिहारी।
सेवक ऊपर मेहर करी को सहु दुख को टारी ॥

(रत्न-ज्योति प्रथम भाग, पृ. १४)

नेमिनाथ जी भगवान् की स्तुति में भी गुरुदेव ने अनेक कविताएँ तथा भजन लिखे हैं। इनमें भगवान् के संक्षिप्त जीवन का सफल चित्रण किया गया है। गुरुदेव कहते हैं हे प्रभो ! आपने अनन्त जीवों का कल्याण किया तथा स्वयं भी शुद्ध-बुद्ध बन गए। परन्तु अब मेरी बारी है —

"पशुगण अनेक दुःख निवारे, पहुँचा मुक्त मंझारी।
'ऋषि रत्नचन्द्र' कहै, अब तो आई हमारी बारी ॥"

(रत्न-ज्योति द्वितीय भाग पृ. ५४)

तू मात तू तात तू स्वामी सखो, सबके स्वामी भी गुणवान।
तू ही बंधव तू ही सखा, तुम बिन अवसर न विश्राम ॥

(रत्न-ज्योति, द्वितीय भाग, पृ. १४)

सोलह सतियों की लावनी में गुरुदेव ने सुन्दर व्याख्या की है। संक्षिप्त में सतियों के माहात्म्य गौरव की भावना का अभिव्यक्त किया है। कवि कहता है—मैं मन वचन

और शरीर से सतियो को नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने जैन धम की कठिन साधना पर चलकर अपना कल्याण किया —

"मन वच काया के सहित नमृ सतवन्ती।
घन घन सतियाँ जिन मारग मे जयवन्ती ॥"

(रत्न-ज्योति, प्रथम भाग, पृ० १६)

प्रेरणा-प्रधान काव्य

प्रेरणा-प्रधान काव्य मे गुरुदेव ने ससार की दयनीय अवस्था पर दुःख प्रकट किया है और भगवान से आदशमय जीवन के उत्थान के लिये आस्था और आशा व्यक्त की है —

"सुन जीवडला, मानव भव लहिने, अहिला मत खोवो"

आगे भगवान से कहते ह —

भगत वत्सल भव्य जीव तारक तुम्हीं,
निजरूप गुण रमण शिव सुख पामी।"

(रत्न ज्योति, प्रथम भाग, पृ० ६)

गुरुदेव ने व्यथ के आडम्बरो तथा राग, द्वेप आदि कपायो के प्रति तीखा प्रहार किया है —

"कुदेव कुगुरु ने नित्य पूजै, पिण अतगति मे नहीं सूझै।
तत्व वस्तु ने नहीं बूझै ॥

+ + +

एह औसर दुलभ पायो, नहीं चेते मद भरमायो।
रह्यो राग द्वेष ने रस छायो ॥"

(रत्न-ज्योति, प्रथम भाग, पृ० ७)

भक्त भगवान् से द्रव्य तथा भौतिक सुखो की कामना नही करता है। वह तो मुक्ति-माग के दशन करना चाहता है —

"रतन चन्द्र, प्रभु कुछ नहीं मांगत, सुण तू अतरयामी।
तुम रहवा नी ठौर दिखावो, तो हूँ सब भर पामी ॥"

(रत्न-ज्योति, द्वितीय भाग, पृ० २२)

वैराग्य-प्रधान काव्य

वैराग्य-प्रधान काव्य मे जीव को ससार से विरक्त होकर आत्म-कल्याण की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी गई है। "सीख सुगुरु की मान" कविता में गुरुदेव ने मनुष्य जन्म को अनमोल बताते हुए कहा है —

और शरीर से सतियो का नमस्कार करता है, जिन्होंने जैन धर्म की कठिन साधना पर चलकर अपना कल्याण किया —

"मन वच काया के सहित नमू सतवन्ती ।
धन धन सतियां जिन मारग मे जयवन्ती ॥"

(रत्न-ज्योति, प्रथम भाग, पृ० १६)

प्रेरणा-प्रधान काव्य

प्रेरणा-प्रधान काव्य मे गुरुदेव ने ससार की दयनीय अवस्था पर दुख प्रकट किया है और भगवान से आदर्शमय जीवन के उत्थान के लिए आस्था और आशा व्यक्त की है —

"सुन जीवडला, मानव भव लहिने, अहिला मत खोवो"

आगे भगवान से कहते है —

भगत वत्सल भव्य जीव तारक तुम्हीं,
निजरूप गुण रमण शिव सुख पामो ।"

(रत्न ज्योति, प्रथम भाग, पृ० ६)

गुरुदेव ने व्यर्थ के आडम्बरो तथा राग, द्वेष आदि कषायो के प्रति तीखा प्रहार किया है —

"कुदेव कुगुरु ने नित्य पूजे, पिण अतगति मे नहीं सूझे ।
तत्व वस्तु ने नहीं बूझे ॥
+ + +
एह औसर दुलभ पायो, नहीं चेते मद भरमायो ।
रह्यो राग द्वेष ने रस छायो ॥"

(रत्न-ज्योति, प्रथम भाग, पृ० ७)

भक्त भगवान् से द्रव्य तथा भौतिक सुखो की कामना नही करता है । वह तो मुक्ति-मार्ग के दर्शन करना चाहता है —

"रतन चन्द्र, प्रभु कुछ नहीं मागत, सुण तू अतरयामी ।
तुम रहवा नी ठौर दिखावो, तो हूं सब भर पामी ॥"

(रत्न-ज्योति, द्वितीय भाग, पृ० २२)

वैराग्य-प्रधान काव्य

वैराग्य-प्रधान काव्य मे जीव को ससार से विरक्त होकर आत्म-कल्याण की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी गई है । "सीख सुगुरु की मान" कविता मे गुरुदेव ने मनुष्य जन्म को अनमोल बताते हुए कहा है —

'अब सुन सत गुरु की सीख करो मन प्राणी,
शुभ करो परम सुं हेत मिटे भव थाणी।
दान शील तप भाव करो चित आणी
देव धर्म गुरु चित सेवो जिन वाणी।
दुर्लभ मनुष्या देह लही शुभ वाणी
ऐसा अवसर बहुरि मिले कब प्राणी।
दान शील तप भाव हिए में धर रे,
सीख सुगुरु की मान जगत सुं तिर रे॥

(रत्न-ज्योति प्रथम भाग पृ ८)

जीव को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है कि हे मनुष्य! इस प्रकार संसार में मित्र रिश्तेदार, पुत्र माता पिता बहिन भाई एवं पत्नी कोई भी तेरा सच्चा साथी नहीं है। केवल धर्म ही तेरे साथ जायगा—वही तेरा सच्चा साथी है और कल्याण करने वाला है —

"स्वजन स्नेही तात मात सुत बहिन बंधु नारी।
धर्म बिना इस जीवन का साथी, कोई न हितकारी॥

(रत्न-ज्योति प्रथम भाग, पृ १४)

वैराग्यपूर्ण बारह भावना गुरुदेव की एक अनूठी कृति है। इसमें आपने बारह मास के साथ बारह का भी काव्य-चित्रण किया है। बारह भावनाओं में (१) अनित्य (२) अशरण (३) संसार (४) एकत्व (५) अन्यत्व (६) अशुचि (७) आस्रव (८) संवर (९) निर्जरा (१) धर्म (११) लोक-स्वरूप (१२) बोधि दुर्लभ है। तीर्थंकरों गणधरों एवं मुनिवर को वन्दन-नमन करते हुए कवि कहता है —

"श्री जिन वर चंदन प्रभु गणधर मुनिवर वृन्द।
वरदायक वर सरस्वती समरत होय आनन्द॥
बारह भावना सांभलो इक मन इक चित लाय।
निर्मित बारह भावना परम महा सुखदाय॥

(रत्न-ज्योति, प्रथम भाग, पृ १८)

वैराग्य-प्रधान सम्पूर्ण काव्य में हमें राग से विराग की ओर मोह से त्याग की ओर प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर एवं मृत्यु से मुक्ति की ओर भाव परिलक्षित होते हैं।

'यह बोल दुर्लभ' कविता में गुरुदेव ने मनुष्य जन्म की महत्ता बतलाते हुए इस असार संसार से विरक्त होने के लिए अनूठे ढंग से कहा है —

"पुण्य योग नर भव मिलो रे जिन नहीं बारम्बार।
चेत सके तो चेत ले रे यह संसार असार॥"

(रत्न-ज्योति प्रथम भाग पृ २१)

गुरुदेव ने अपने जीवन के अमूल्य क्षणों त्याग की गरिमा बतलाते हुए सामायिक, सम्वर, पौषध, प्रतिक्रमण आदि धर्माराधना के फल दर्शाने वाली कविताएँ (गिज्झाय) भी बनाई हैं। नेमिनाथ जी भगवान की स्तुति करते हुए गुरुदेव ने वैराग्य भावना से ओत-प्रोत होते हुए भव-सागर के दुःखों से छुटकारा पाने की प्रार्थना की है —

"सांवलिया साहब, सुखदायक गुणानी।
भव सागर मांहि दुःख घनेरो तारोनी मोहे त्यारो।"

(रत्न-ज्योति, द्वितीय भाग, पृ० २४)

'जीवन की क्षण-भंगुरता' नामक कविता में गुरुदेव ने अपने जीवन की चंचलता और परिवर्तनशीलता दर्शाते हुए वैराग्य का मार्ग अपनाकर मुक्ति द्वार की ओर अग्रसर होने की उद्बोधना दी है, क्योंकि काल के आगे किसी की भी नहीं चलती है। इसलिए हे जीव ! तुझे जो कुछ करना है वह शीघ्र कर ले —

"इण काल रो भरोसो भाई कोई नहीं,
खिण विरिया मांही आरे वे।
+ + +
सुर गण के पाताल में,
यो कहीं न छोड़े कालो रे॥"

(रत्न-ज्योति, द्वितीय भाग, पृ० ३०)

'अरे प्यारे' नामक कविता में गुरुदेव ने जीव की मुसाफिर से तुलना की है। जैसे मुसाफिर एक स्थान से दूसरे स्थान को चला जाता है, उसी प्रकार जीव भी इस काया रूपी वस्त्र को बदलता रहता है। अतः ऐ जीव ! तू अज्ञान रूपी निद्रा को छोड़ कर मुक्ति की ओर अग्रसर हो जा —

"तू जाग मुसाफिर सोता क्यों रे !
कोई रे तेरा कुटुम्ब कबीला,
कोई रे तेरा घर रे।"

(रत्न ज्योति, द्वितीय भाग, पृ० ३२)

हे मनुष्य ! यह जन्म तुझे बड़े पुण्यों के बाद मिला है जो बन सके वह पुण्य काम कर ले —

दुर्लभ मनुषा देह लही गुण खानी,
ऐसा अवसर बहुरि मिले कब आनी।"

(रत्न ज्योति, प्रथम भाग, पृ० ८)

उपदेश-प्रधान काव्य

उपदेश-प्रधान काव्य में लोक-जगत की निस्सारता दिखाते हुए परलोक के लिये जन्म सफल करने की उद्बोधना की गई है। इसके साथ ही साथ लोक-व्यवहार और अध्यात्म-भाव का उपदेश दिया

गया है। इन कविताओं में धर्म तथा नीति की शिक्षाओं के साथ-साथ कहीं-कहीं पर व्यंग्यपूर्ण चुटकियाँ भी लिया है। 'रत्नानुबोध' में गुरुदेव ने लिखा है —

"अवसर कु च भटकले ते नर चतुर सुजान।
मूरख समय न जोलखे ते नर मूढ़ अजान ॥१॥

साधु वचन परखिये विपत पड़े पर नार।
पूरा जब ही परखिये जब बाल तरवार ॥२॥

जिन वाणी जिन स्वाद की मन भर जो कोई हृदय।
स्याद्वाद नय शुद्ध करो यह मेरी अरदास ॥३॥

(रत्न-ज्योति, द्वितीय भाग पृ २८ २९)

जीव को उपदेश देते हुए गुरुदेव ने लिखा है हे जीव! तुझे यह जीवन बड़े पुण्यों के योग से मिला है, तू इसको विषय आदि कषायों में व्यर्थ ही बर्बाद मत कर —

यह रतन चिन्तामणि सो थो छै शुद्ध देव जिनेश्वर परिखो छै।
निज समाधि गुण हरखो छै॥

नर भव पाई ने खोवे छै विषय कषाय रस जोवे छै।
निज गुण रस सहज विलोवे छै॥

(रत्न-ज्योति प्रथम भाग पृ ९)

'सीख सुगुरु की मान' कविता में गुरुदेव ने जीव को उद्बोधित करते हुए लिखा है कि हे मनुष्य! तू अनन्त काल से चौरासी लाख योनियों में जन्म लेता हुआ भटक रहा है किन्तु तुझे मुक्ति नहीं मिली। हे जीव! जब तक तू अपने पाप कर्मों का नाश नहीं करेगा तब तक मुक्ति के द्वार बंद रहेंगे और तू निरन्तर भटकता ही रहेगा —

"भ्रम फिर्यो भटकतो काल अनन्त चौरासी,
क्यों कुमति से हेत सुमति नहीं भासी।
राग द्वेष मद लोभ मोह की फाँसी
गड्यो जीव जंजाल भरम बस वासी।
तैं जाण्यो नहीं भगवान पूर्ण अविनाशी
ज्यूं जल में घट तरंग पवन सम आसी।
इम जीवड़ो पुद्गल भरम फिर्यो भव-भव रे।
सीख सुगुरु की मान जगत सूं निर रे।

(रत्न-ज्योति प्रथम भाग पृ ६१)

गुरुदेव ने अपने जीवन के अमूल्य त्याग की गरिमा बतलाते हुए सामायिक, सम्वर, पौषध, प्रतिक्रमण आदि धर्माराधन के फल दर्शाने वाली कविताएँ (सिज्झाय) भी बनाई है। नेमिनाथ जी भगवान की स्तुति करते हुए गुरुदेव ने वैराग्य-भावना से ओत-प्रोत होते हुए भव-सागर के दुःखों से छुटकारा पाने की प्रार्थना की है —

"सांवलिया साहब, सुखदायक सुज्ञानी।
भव सागर मांहि दुःख घनेरो तासेती मोहे त्यारो।"

(रत्न-ज्योति, द्वितीय भाग, पृ० २४)

'जीवन की क्षण-भंगुरता' नामक कविता में गुरुदेव ने अपने जीवन की चंचलता और परिवर्तन-शीलता दर्शाते हुए वैराग्य का मार्ग अपनाकर मुक्ति द्वार की ओर अग्रसर होने की उद्बोधना दी है, क्योंकि काल के आगे किसी की भी नहीं चलती है। इसलिए हे जीव ! तुझे जो कुछ करना है वह शीघ्र कर ले —

"इण काल रो भरोसो भाई कोई नहीं,
किण विरियां मांही आरे वे।
+ + +
सुर गण के पाताल मे,
यो कहीं न छोडे कालो रे॥"

(रत्न-ज्योति, द्वितीय भाग, पृ० ३०)

'अरे प्यारे' नामक कविता मे गुरुदेव ने जीव की मुसाफिर से तुलना की है। जैसे मुसाफिर एक स्थान से दूसरे स्थान को चला जाता है, उसी प्रकार जीव भी इस काया रूपी वस्त्र को बदलता रहता है। अतः ऐ जीव ! तू अज्ञान रूपी निद्रा को छोड कर मुक्ति की ओर अग्रसर हो जा —

"तू जाग मुसाफिर सोता क्यों रे !
कोई रे तेरा कुटुम्ब कबीला,
कोई रे तेरा घर रे।"

(रत्न ज्योति, द्वितीय भाग, पृ० ३२)

हे मनुष्य ! यह जन्म तुझे बड़े पुण्यो के बाद मिला है जो बन सके वह पुण्य काम कर ले —

दुर्लभ मनुषा देह लही गुण खानी,
ऐसा अवसर बहुरि मिले कब आनी।"

(रत्न ज्योति, प्रथम भाग, पृ० ८)

उपदेश-प्रधान काव्य

उपदेश-प्रधान काव्य मे लोक-जगत की निस्सारता दिखाते हुए परलोक के लिये जन्म सफल करने की उद्बोधना की गई है। इसके साथ ही साथ लोक-व्यवहार और अध्यात्म-भाव का उपदेश दिया

या है। इन कविताओं मे धर्म तथा नीति की शिक्षाओं के साथ-साथ कहीं-कहीं पर व्यंग्यपूर्ण चुटकियाँ भी मिलती हैं। 'रत्नानुबोध' मे गुरुदेव ने लिखा है —

'अवसर कु जो पकडले ते नर चतुर सुजान।
मूरख समय न मोलवे ते नर मूढ अजान ॥१॥

'साधु वचने परखिये विपत पडे पर नार।
पूरा जब ही परखिये जब चाले तरवार ॥२॥

'बिन वाणी बिन स्वाद की मत कर जो कोई हास्य।
स्याद्वाद नय शुद्ध करो यह मेरी अरदास ॥३॥

(रत्न-ज्योति, द्वितीय भाग पृ २८-२९)

जीव को उपदेश देते हुए गुरुदेव ने लिखा है हे जीव! तुझे यह जीवन बड़े पुण्यों के योग से मिला है तू इसको विषय आदि कषायों मे व्यर्थ ही बर्बाद मत कर —

'यह रतन चिंतामणि सरिखो छे शुद्ध देव जिनेश्वर परिखो छे।
निज समाधि गुण हरखो छे॥
नर भव पाई ने खोवे छे, विषय कषाय रस चोवे छे।
निज गुण रस सहज विमोव छे॥

(रत्न-ज्योति प्रथम भाग पृ ५)

'सीख सुगुरु की मान' कविता मे गुरुदेव ने जीव को सद्बोधित करते हुए लिखा है कि हे मनुष्य! तू अनन्त काल से चौरासी लाख योनियों मे जन्म लेता हुआ भटक रहा है किन्तु तुझे मुक्ति नहीं मिली। हे जीव! जब तक तू अपने पाप कर्मों का नाश नहीं करेगा तब तक मुक्ति के द्वार बन्द रहेंगे और तू निरन्तर भटकता ही रहेगा —

'भ्रम फिर्यो भटकतो काल अनंत चौरासी
क्यों कुमति से हेत सुमति नहीं भासी।
राग द्वेष अरु लोभ मोह की फांसी
पड़यो जीव जंजाल भरम मत वासी।
ते जाण्यो नहीं भगवान पूर्ण अविनाशी
ज्यूं जल में उठे तरंग पवन संग भासी।
इम जीवडो पुद्गल भरम फिर्यो घर-घर रे।
सीख सुगुरु की मान अपन यूं फिर रे।

(रत्न-ज्योति प्रथम भाग पृ ६१)

ससार की असारता बतलाते हुए गुरुदेव ने 'दश बोल दुर्लभ' कविता में लिखा है —

"क्यों विविधा रग नजर भुलानी, तेरी पल-पल आयु जाय।
पुण्य जोग नर भव लियो रे, फिर नहीं बारम्बार।
चेत सके तो चेत, ले रे, यह ससार असार॥"

(रत्न-ज्योति, प्रथम भाग, पृ० २१)

'सप्त-दुर्व्यसन-निषेध' में कवि लिखता है कि हे मनुष्य! तू जैन धर्म की शरण आ जा और व्यर्थ के आडम्बरों का त्याग कर दे —

"प्राणी दुर्व्यसन त्यागो रे, छोड मिथ्या पाखड जाल॥
जैन धर्म सूं लागो रे, छोड मिथ्या पाखड जाल॥"

(रत्न-ज्योति, प्रथम भाग, पृ० २२)

'सत्य-धर्म की घोषणा' में गुरुदेव ने समाज के रूढिवादी रीति-रिवाजों तथा व्यर्थ के आडम्बरों पर तीक्ष्ण व्यग-वर्षा की है तथा कुसाधुओं का भडाफोड किया है —

"वस्त्र पात्र आहार थानक मे, सबला दोष लगायो।
सत दास बिण सत कहावे, यह कोई करम कमायो॥
हाथ समरणी हिए कतरणी, लटपट होठ हिलायो।
जप तप सजम आतम गुण बिन, जारणो गाडर मड मुडायो॥"

(रत्न-ज्योति, द्वितीय भाग, पृ० २७)

चरित्र प्रधान काव्य

चरित्र-प्रधान काव्य में गुरुदेव की प्रमुख कृतियों में से सुखानन्द मनोरमा की ढाल, सगर चक्रवर्ती का चौढालिया, इलायची कुवर का चौढालिया, सोलह-सतियों की लावणी, तथा धन्ना अणगार आदि हैं। इन काव्यों में गुरुदेव ने पद्य में सक्षिप्त जीवन चरित्र लिखा है, जो कि जीवन-वृत्त के साथ ही साथ राग-रागनियों का तो आनन्द देते ही है तथा जीवन में त्याग और सयम के साधना पथ पर अग्रसर होने के लिए भी प्रेरित करते हैं।

'सोलह सतियों की लावणी' में कवि सतियों को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि तुम धन्य हो जो जैन-धर्म का पालन करके मुक्ति-धारक बनी।

"कोई स्वर्ग गई कोई मुक्ति गई गुणवन्ती।
धन-धन सतियाँ जिन मारग मे जयवन्ती॥"

(रत्न-ज्योति, प्रथम भाग, पृ० १५)

'श्री सगर चक्रवर्ती का चौढालिया' में गुरुदेव ने सगर चक्रवर्ती की महिमा का बखान करते हुए लिखा है —

श्री नथमल जैन

संघ के कार्यकर्ता

श्री महावीर प्रसाद जैन

श्री विजयकुमार जैन

समाज के वयोवृद्ध सुश्रावक

श्री बाबूराम शास्त्री

श्री महावीरप्रसाद जैन
(मैनेजर बगीचा विभाग)

श्री विजयकुमार जैन
(श्री एस० एस० जैन संघ के उपप्रधान मन्त्री)

संघ के उत्साही कार्यकर्ता

सुप्रसिद्ध समाज सेवी श्री लछमनदास जैन

श्री शैलेन्द्र कुमार जैन

बालब्रह्मचारी तिहुं राजा मदन अरि दीप लो ।
तेज प्रताप अखंड धरी दस जीवतो ॥

(रत्न-ज्योति प्रथम भाग, पृ २४)

'नमो नवकार' मे गुरुदेव ने नमो नवकार की महानता बताते हुए लिखा है कि मगध नरेश भी इसकी वंदना करता था —

"पंच परमेष्ठी हो मुनीश्वर करि प्रदक्षिणा ।
नमे मगधाधीस तुम पर वारी जी ॥

(रत्न-ज्योति द्वितीय-भाग पृ ११)

भाषा-शैली

जैन कवि सामान्यतः जन-साधारण की बोल-चाल की भाषा में ही लिखते रहे हैं। क्योंकि उनका सम्बन्ध जन-साधारण के साथ नीर-क्षीर के समान होता है। उनका सम्पूर्ण जीवन वैराग्य की पथ वीथिका पर निरन्तर चलते रहने की दृढ़ता के साथ-साथ सामाजिक जीवन मे मनुष्य के उत्थान एवं कल्याण के लिए मार्ग प्रशस्त करते रहना है। जैन सन्तों का प्रत्येक क्रिया-कलाप और व्यवहार जन-साधारण के बीच ही होता है। उनमे किसी जाति-वर्ण ऊँच-नीच का विभेद नहीं रहता। इस दृष्टिकोण से हम देखते हैं कि गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज ने अपने काव्य की भाषा-शैली आज से एक शताब्दी पूर्व से अधिक पूर्व भी की है। काव्य मे आपने तत्कालीन हिन्दी भाषा तथा राजस्थानी भाषा का ही अधिक प्रयोग किया है। आपकी भाषा-शैली मे जहाँ एक ओर सरसता एवं सरलता है, तो दूसरी ओर अध्यात्म और वैराग्य की भावनामय लहरी। किन्तु इस भाषा में आधुनिक काव्य के समान राग-रागनियों एवं फिल्मी धुनों का अभाव है। यदि इन पदों को ऐतिहासिक तथा भावों की दृष्टि से हम परिशीलन करें तो सहज ही रसास्वादन कर सकेंगे।

आपकी भाव-प्रधान कविताओं मे एक विशिष्ट प्रकार का ओज और माधुर्य दिखाई देता है जो पाठक के हृदय-तल को छूने लगता है। आपकी कविताओं का विषय गम्भीर एवं दार्शनिक होते हुए भी आपकी भाषा-शैली इतनी सरल एवं सुबोध है कि जन-साधारण के लिए भी गेय है।

अलंकार विधान

जैन कवियों ने चमत्कार-प्रियता को प्रमुख उद्देश्य मानकर कभी काव्य-रचना नहीं की। इसीलिए उनके काव्य मे अलंकारों का जो सौन्दर्य निहित रहता है वह प्रभावशाली है। गुरुदेव के काव्य में शान्त रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। आपने अलंकारों का भी यथा-तथा प्रयोग किया है। आपके प्रमुख अलंकार निम्नलिखित हैं —

शब्दालंकार

१ अनुप्रास

तारण तिरण तुम बिरद बखाण सुणी,
आज यह द्वार तुम तणें आयो ।

(रत्न-ज्योति—प्रथम भाग पृ १)

श्री महावीरप्रसाद जन
(मैनेजर बगीचा विभाग)

श्री विजयकुमार जैन
(श्री एस० एस० जन सघ के उपप्रधान मन्त्री)

सुप्रसिद्ध समाज सेवी श्री लछमनदास जैन

सघ के उत्साही कार्यकर्ता

श्री शैलेन्द्र कुमार जैन

छन्द

गुरुदेव ने आध्यात्मिक भावों से ओत-प्रोत काव्य में विविध छंदों का प्रयोग किया है। सवैया कवित चौपाई, लावनी गीतिका दोहा आदि छन्दों का आपने प्रयोग किया है। लयात्मक छन्द आपके काव्य की विशेषता है। राग प्रभाती मल्हार राग आदि राग-रागनियों का बहुतायत से प्रयोग हुआ है। आपके सम्पूर्ण साहित्य में भौतिक से आध्यात्मिक मृत्यु से मुक्ति सांसारिक सुखों से वैराग्य की ओर अग्रसर होने की उद्बोधना दिखाई देती है। आपके छन्द-बद्ध चरित्रों में गुणसुन्दर मनोरमा चरित्र महत्वपूर्ण है। किन्तु यह चरित्र अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गुरुदेव के काव्य-साहित्य में काव्य के कई रूपों का सुन्दर चित्रण मिलता है। क्योंकि आपकी मेधाशक्ति शास्त्रीय रहस्य को पकड़ने में एवं विषय का विश्लेषण करने में सक्षम थी। निष्पक्षता निर्भयता और नम्रता के साथ वस्तु के भावात्मक स्वरूप का चित्रण करते थे। आपके सम्पूर्ण काव्य साहित्य में कथावस्तु के साथ-साथ प्रसंग में त्याग वैराग्य दान शील आदि का महत्वपूर्ण विवेचन भी सन्निहित है जो कि साधक के अन्तरमन में एक अपूर्व भावना को जागृत करके जन-जीवन के उत्थान एवं कल्याण के लिए प्रोत्साहित करता है।

गुरुदेव रत्नचन्द्र जी महाराज की कीर्ति-पताका जब तक संसार में सूर्य और चन्द्र हैं तब तक अखंड रूप से फहराती रहेगी। जो उपकार आपने श्री संघ पर किये हैं उनके लिए श्री संघ सदैव ऋणी रहेगा। अतः आज समस्त श्री संघ का कर्त्तव्य हो जाता है कि ऋण-मुक्त होने के लिए गुरुदेव के पद उद्बोधित-मार्ग पर चलकर उनके अवशिष्ट कार्य को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करें तभी हमारा गुरुदेव की पुण्य-शताब्दी समारोह मनाना सार्थक हो सकेगा।

* * *

गुरुदेव का पावन जीवन
हमको यही सिखाता है।
चल कर निज कर्त्तव्य मार्ग पर ;
मानव पूज्य बन जाता है॥

२ यमक

"शाति करता श्री शाति जिन सोलमा,
मन हर्ष धर चरण जुग शीस नाऊँ ।"

(रत्न ज्योति, प्रथम भाग, पृ० ५)

३ पुनरुक्तिप्रकाश

"कर कर कपट निपट चतुराई आसण दृढ़ जमायो ।
अतर भोग, जोग है बाहिर, वकध्यानी बल छायो ।।"

(रत्न-ज्योति, द्वितीय भाग, पृ० २८)

अर्थालकार

१ उपमा

"थारी फूल सी देह, पलक मे पलटे, क्या मगरूरी राखे रे !
आतम ज्ञान अमीरस तजने, जहर जडी कुण चाखे रे ।।"

(रत्न-ज्योति, द्वितीय भाग, पृ० २७)

२ रूपक

"सम्यक्त्व-श्रावण' गुरुदेव के काव्य मे साग-रूपक का सुन्दर उदाहरण है। यहाँ ऋतु के साथ सम्यक्त्व का आरोप किया गया है —

"सम्यक्त्व श्रावण आयो, अब मेरे सम्यक्त्व श्रावण आयो ।
घटा ज्ञान की जिनवरने भाखी, पावस सहज सुहायो ।।"

(रत्न-ज्योति, द्वितीय भाग, पृ० २५)

३ उल्लेख

"तू गति तू मति तू साचो धणी, समरूँ स्वामी श्री सुजात !
तू ही बधव तू ही तात, तुझ बिन अवर न विख्यात !!"

(रत्न-ज्योति, द्वितीय भाग, पृ० २४)

४ दृष्टान्त

"अग्नि सजोगे घृत पिघले रे !
तिम नर नारी रूप ! मोह विटम्बण ।।'

(रत्न ज्योति, द्वितीय भाग पृ० ३५)

इन अलकारो के अतिरिक्त आपने प्रतीप, स्मरण, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, परिसख्या, विशेषोक्ति आदि अलकारो का पयोग किया है ।

श्री छुआरेलाल जैन

श्री सोहनलाल जैन

श्री आसाराम जैन

श्री रामचरणलाल जैन

श्री वीर पुस्तकालय एवं वाचनालय

श्री सुमेरचन्द्र जैन प्रवन्धक

इस पुस्तकालय एव वाचनालय के जन्मदाता स्वर्गीय श्री सेठ रतनलाल जी जैन थे, जो कि वहुत ही साहित्य-प्रेमी व्यक्ति थे। लगभग २२ वर्ष हुए श्री सेठ जी का विचार हुआ कि देश मे जहाँ पर स्कूल और कालेजो की आवश्यकता है, वहाँ पर पुस्तकालय का भी वहुत वडा महत्त्व है। इस विचारधारा को ध्यान मे रख ही रहे थे कि उनकी सुपुत्री सौभाग्यवती सुशीला जैन के विवाह के शुभ अवसर पर वर-पक्ष के श्री महावीर प्रसाद जी जैन के पूज्य पिता श्री साहू रघुनाथ दास जी रईस धामपुर निवासी ने अपनी ओर से भवन-निर्माण हेतु कुछ धन-राशि प्रदान की। श्री सेठ जी ने इस धन-राशि का सदुपयोग इस पुस्तकालय के भव्य-भवन को वनवाने मे किया। और शेप धन अपने पास से व्यय किया। इस प्रकार इस पुस्तकालय के लिए स्थायी भवन की भी व्यवस्था होगई और श्री सेठ जी का शुभ सकल्प भी पूर्ण हो गया।

उपरोक्त पुस्तकालय की स्थापना सन् १९६३ ई० मे स्व० श्री सेठ रतनलाल जी जैन के द्वारा हुई थी। इस प्रकार पुस्तकालय को जनता की सेवा करते हुए ३२ वर्ष हो चुके हैं। सन् १९४६ से यह पुस्तकालय श्री एस० एस० जैन सघ के अन्तर्गत आ गया, तव से इसका प्रवन्ध श्री एस० एस० जैन सघ द्वारा निर्वाचित मैनेजर द्वारा होता है।

पुस्तकालय को उत्तर प्रदेश सरकार से वार्षिक अनुदान भी मिलता है, जिसका उपयोग पुस्तको के क्रय हेतु ही किया जाता है। इस प्रकार सुन्दर एव उपयोगी साहित्य की निरतर वृद्धि होती रहती है।

वाचनालय मे जनता के पढने के हेतु उच्चकोटि के समाचार पत्र एव पत्रिकाएँ मँगाई जाती हैं। जिनसे पाठक प्रतिदिन लाभ उठाते हैं।

सामूहिक श्रवण योजना के अन्तगत उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से एक रेडियो सैट भी पुस्तकालय मे लगा हुआ है, जिसका उपयोग देश-विदेश की खवरो को सुनाने के लिए किया जाता है।

नगर महापालिका आगरा की ओर से भी इस पुस्तकालय को आर्थिक सहायता मिलती है, जिसका उपयोग पत्र-पत्रिकाओ के खरीदने के लिए किया जाता है। इस वर्ष हमे मेयर फड से भी ५०० रु० नगर प्रमुख श्री कल्यानदास जी जैन के द्वारा प्राप्त हुए हैं। तथा श्री एस० एस० जैन सघ से विशेष रूप से अनुदान मिलता रहता है।

इस समय पुस्तकालय मे दैनिक, साप्ताहिक, मासिक २३ पत्र-पत्रिकाएँ मँगवाई जाती हैं। हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, सस्कृत आदि भाषाओ की १०५२३ पुस्तकें पुस्तकालय मे हैं जिनमे अति प्राचीन जैन

हस्तलिखित तथा अन्य धार्मिक शास्त्र एवं ग्रन्थ भी हैं और पुस्तकों की नवीन वृद्धि के लिए निरन्तर प्रयत्न होता रहता है।

पुस्तकालय भवन में प्रेरकों एवं दानदाताओं के शुभ नाम सूचना-पट पर अंकित हैं। पुस्तकालय में हमारे दानदाताओं विभागीय अधिकारी वर्ग एवं हमारे प्रिय पाठकों का हमें पुस्तकालय को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने के लिए जो सहयोग प्राप्त हुआ है उसके लिए मैं हृदय से आभारी हूँ।

अंत में पूज्य गुरुदेव के चरणों में पुस्तकालय परिवार की ओर से मैं श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

* *

स्फटिक मणिवत उज्ज्वल निर्मल
शुद्ध रहा गुरु का जीवन।
था मूर्तिमान बहु तपोधान;
कैसा होता जीवन पावन॥
ध्यान किस तरह वासनाओं पर—
विजय-ध्वजा लहराता है।
स्पष्टः गुरु गुरु का जीवन यह;
जग को यही सिखाता है॥

—मुनि कीर्ति

★

श्री राजमुकट जन

श्री धनेन्द्रकुमार जैन

श्री सूरजभान जैन

श्री जगदीशप्रसाव जैन

हस्तलिखित तथा अन्य धार्मिक शास्त्र एवं ग्रन्थ भी हैं और पुस्तकों की नवीन वृद्धि के लिए निरन्तर प्रयत्न होता रहता है।

पुस्तकालय भवन में प्रेरकों एवं दानदाताओं के शुभ नाम सूचना-पट पर अंकित हैं। पुस्तकालय को हमारे दानदाताओं विभागीय अधिकारी वर्ग एवं हमारे प्रिय पाठकों का हमें पुस्तकालय को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने के लिए जो सहयोग प्राप्त हुआ है उसके लिए मैं हृदय से आभारी हूँ।

अंत में पूज्य गुरुदेव के चरणों में पुस्तकालय परिवार की ओर से मैं श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

* *

स्फटिक मणिसा उज्ज्वल निर्मल
गुज रहा गुरु का जीवन ।
था मूर्तिमान वह समाधान ;
कैसा होता जीवन पावन ॥
त्याग किस तरह वासनाओं पर—
विजय-ध्वजा लहराता है ।
तपः पूत गुरु का जीवन यह
जग को यही सिखाता है ॥

—मुनि कीर्ति

★

हमारा विद्यालय

श्री प्रमोद कुमार जैन
कार्यवाहक प्रवन्धक

आज से लगभग पचास वर्ष पूव पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज की पुण्य स्मृति मे श्री अग्रवाल लोहिया जैन समाज ने श्री रत्नमुनि जैन वाल पाठशाला की स्थापना की जिसमे समाज के वच्चो के साथ सभी वर्ग एव सम्प्रदाय के वालक विद्या ग्रहण के लिये प्रविष्ट होने लगे। शिक्षा के सभी प्रमुख विषयो के साथ-साथ वालको के नैतिक उत्थान एव चरित्र निर्माण के लिये धार्मिक शिक्षा की भी पाठशाला मे समुचित व्यवस्था रही। स्वल्पकाल तक यह पाठशाला कक्षा दो तक ही चलती रही।

वालको की शिक्षा के उद्देश्य से स्व० लाला हजारीलाल जी जैन पितामह श्री रामसरनलाल जी जैन ने वल्देव गज की दो दुकानें, पुल छिगामोदी पर एक दुकान तथा एक मकान वाग अन्ता वाला जिसमे इस समय महिला पोषधशाला वनाई गई है, समाज को दान मे दिए। स्व० सेठ रतनलाल जी ने गज की दो दुकानो को वढाकर आठ दुकान, एक प्याऊ का नव-निर्माण समाज के उत्साही कार्यकर्ताओ के सहयोग से कराया जिससे किराये की विशेष आमदनी हुई। समाज ने दान की इस जायदाद की विशेष आय को इस पाठशाला की उन्नति मे लगाकर पाठशाला को आगे वढाया। कक्षा ३ व ४ खोली गई, जिनमे योग्य, अनुभवी तथा प्रशिक्षित अध्यापक शिक्षा देने के हेतु रक्खे गए। इस प्रकार पाठशाला प्राइमरी के रूप मे अधिक दिनो तक चलती रही जिसे कि नगर पालिका के नियमानुसार अनिवार्य शिक्षा की पूर्ति मे पाठशाला ने अपने आसपास के क्षेत्र की पूर्ण सहायता और सेवा की।

इसके पश्चात् स्व० लाला वावूलाल जी तायल ने एक हजार रुपये की धनराशि इस पाठशाला को कालेज के रूप मे परिणत करने के निमित्त दान गोलक मे गुप्त रूप से प्रदान की। परिणामस्वरूप समाज के सभी अग्रणी पुरुषो द्वारा निश्चय किया गया कि यह विद्यालय अनेक भाषाओ का केन्द्र हो, साथ ही इसमे एक वहुत वडा छात्रावास भी हो और समाज के निर्धन छात्रो की शिक्षा के लिये छात्रवृति की योजना भी वनाई गई।

श्रद्धेय कविवर श्री अमरचन्द जी महाराज की सत् प्रेरणा से समाज के सगठन को दृढ करने एव सस्थाओ के सुसचालन के हेतु सन् १९४९ मे श्री एस० एस० जैन सघ की स्थापना की गई जिसका कि लिखित विधान भी वनाया गया। अव समाज की सम्पूर्ण चल एव अचल सम्पति पर श्री एस० एस० जैन सघ का अधिकार हुआ और उसी की देखरेख मे सभी सस्थाओ की तरह इस विद्यालय का सचालन भी श्री सघ के द्वारा होने लगा।

कक्षा एव छात्रो की विशेष वृद्धि के कारण पाठशाला पुल छिगा मोदी वाले मकान से वगीचा ला० मजूमल मे लगाई गई जहाँ पर कि वच्चो को वैठने के लिये खुले दालान और कमरे मिले। उद्यान के

श्री सीताराम जैन

श्री बनारसीलाल जैन

श्री [illegible] जैन

श्री रामबाबू जैन
(मैनेजर चमड़ी विभाग)

गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज

श्रद्धेय गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज

पी० एस० डी० की शिक्षा का भी उचित प्रवन्ध विद्यालय मे है । राइफल चलाने की प्रतियोगिता मे जिले के कन्या विद्यालयो मे हमारी छात्राओ ने प्रथम स्थान प्राप्त किया ।

कालिज मे शिक्षण के अतिरिक्त प्रजातान्त्रिक प्रणाली की शिक्षा देना भी अनिवार्य है। इसी लक्ष्य की सिद्धि के लिए विद्यालय मे छात्राओ की वालिका परिषद् है, जिसके तत्वावधान में अनेक कार्यक्रम प्रति शनिवार को नियमित रूप से होते हैं । अन्त्याक्षरी, वादविवाद, गल्प लेखन, कढाई, बुनाई, चित्रकला और सगीत की प्रतियोगिताओ का आयोजन किया जाता है और विजयी छात्राओ को प्रोत्साहनस्वरूप पुरस्कार दिये जाते ह ।

महिला वर्ग मे शिक्षा और सस्कृति का प्रसार करना विद्यालय का परम उद्देश्य है । वालिकाओ को सव प्रकार से सुयोग्य वनाकर उन्ह भारतीय नारी के उन्नत रूप मे विकसित हुए देखना हमारा अभीष्ट लक्ष्य है । छात्राओ मे राष्ट्रीयता, धार्मिकता, नैतिकता और नागरिकता के भव्य भावो को प्रतिष्ठित करना हमारा पुनीत कर्तव्य है । इसी दृष्टि से पाठ्यक्रम के शिक्षण के अतिरिक्त प्रत्येक कक्षा की छात्राओ को प्रतिदिन नैतिक (धार्मिक) शिक्षा प्रदान की जाती है। धार्मिक शिक्षा के लिए प्रत्येक कक्षा में उसके स्तर के अनुरूप जैन धर्म की पुस्तकें भी नियत हैं। परीक्षाएँ भी ली जाती हैं। विद्यालय की निरन्तर प्रगति मे श्री श्वेताम्वर स्थानक वासी जैन सघ [रजिस्टड] के उत्साही दानदाताओ का सहयोग विशेष रूप से रहा है, जिसके लिए हम उनके वडे आभारी हैं। यदि समाज का पूर्ण सहयोग यथावत् मिलता रहा तो यह विद्यालय निकट भविष्य मे आशातीत उन्नति करने मे सफल होगा । विद्यालय को अपने सस्थापक पूज्य श्री पृथ्वीचन्द जी महाराज एव कविरत्न श्री अमरचन्द्र जी महाराज का शुभाशीर्वाद प्राप्त है और जिस दिव्य विभूति के नाम पर यह विद्यालय चल रहा है उनकी पुण्य प्रेरणा तो हमे सदैव आगे वढ़ाने के लिए प्रेरित करती रहती है ।

★

पूज्य गुरुदेव के चरणचिन्ह

(सेठ का बाग)

मंत्री मानपाड़ा श्रीसंघ सिताब चन्द जी गाधिया

पूज्य गुरुदेव आचार्य रत्नचन्द्र जी महाराज परम विद्वान सुप्रसिद्ध प्रवक्ता और चमत्कारी सन्त थे। उन्होंने अपनी ज्ञान-साधना के द्वारा समाज को जो पुण्य प्रकाश दिया था आज भी समाज उस आलोक से आलोकित है। उनके मन में अपनापन और परायापन कभी नहीं आया। वे सबको समत्व दृष्टि से देखते थे। यही कारण है कि जहाँ पर भी वे जाते थे जनता उनसे प्रभावित हो जाती थी। वे जन-जन के आराध्य बन गए।

यद्यपि उनके द्वारा प्रतिबोधित क्षेत्र अनेक थे तथापि आगरा पर उनकी विशेष कृपा थी उनका विशेष स्नेह भाव था। जब तक लोहामण्डी आगरा प्रतिबोधित नहीं हुआ था तब तक भी रत्नचन्द्र जी महाराज जितनी बार अपनी शिष्य मंडली सहित आगरा पधारे, तो मोती कटरे के जैन-स्थानक में ही विराजते थे। उस समय आगरा शहर में प्रसिद्ध सेठ श्री बहादुरसिंह जी सुभालालजी और उनके समस्त परिवार की गुरुदेव के प्रति अत्यन्त श्रद्धा एवं निष्ठा थी। इसी सेठ परिवार की धर्मशीला महिला कुंवरीबाई ने गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज से बारह व्रत धारण किए थे और जीवन-पर्यन्त उनका विधिवत् पालन किया।

कहा जाता है कि सेठ बहादुरसिंह जी सुभालाल जी की अध्यक्षता में ही शहर के श्रावक संघ ने सेठ के बाग में जो कि शाहगंज के समीप है, पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज के चरण-चिन्ह बनाये थे और उनकी पुण्य स्मृति में उनके चरण-चिन्हों पर एक छोटा सा समाधिभवन बनवाया था जो आज भी सेठ के बाग में अपनी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में विद्यमान है। तब से लेकर आज तक सेठ के बाग में शहर वाले स्थानक वासी भाई लोहामंडी वाले स्थानकवासी भाई आते जाते रहते हैं। कभी-कभी सेठ के बाग में सन्तों के प्रवचन भी होते रहते हैं।

इस प्रकार पूज्य गुरुदेव ने समय-समय पर अपने पावन चरणों से मोतीकटरा मानपाड़ा बेलनगंज [illegible] और लोहामंडी को अनेकों बार पावन किया था। पूज्य गुरुदेव ने अपनी जीवन की अंतिम साधना (संथारा) लोहामण्डी में ही पूर्ण की थी। इस प्रकार समस्त आगरा संघ पर पूज्य गुरुदेव का अनन्त उपकार रहा था। आज समस्त आगरा श्री संघ श्रद्धा भक्ति और निष्ठा के साथ पूज्य गुरुदेव की पुण्य शताब्दी मनाकर अपने आप को धन्य मानता है। इस शुभ अवसर पर मानपाड़ा श्री संघ विशेष रूप से पूज्य गुरुदेव परम श्रद्धेय श्री रत्नचन्द्र जी महाराज के चरणों में अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता है।

★

वि
★
वि
★
ध
★
भा
★
र
★
ती

श्रमण संस्कृति का अग्रदूत *

भगवान् महावीर

कु० इला रानी कक्षा ८ ब

श्रमण संस्कृति के अग्रदूत महावीर का जन्म इस परम पावन भारत वसुन्धरा पर वैशाली नगर के कुण्डग्राम में ईस्वी सन् के ५९९ वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन हिंसा का नाश और संसार का उद्धार करने के लिए, राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला के यहाँ बालक वर्द्धमान के रूप में हुआ।

जिस समय वर्द्धमान का जन्म हुआ था उस समय इस संसार में घोर अराजकता छायी हुई थी। हिंसा का बोलबाला था और मानव का यह विचार था— 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'। बेचारे दीन-हीन मूक पशुओं को यज्ञ की बलिवेदी पर बलिदान कर दिया जाता था। धर्म का स्थान अधर्म ने ले लिया था। चारों ओर त्राहि त्राहि मची हुई थी। ऐसे समय में हिंसा का सर्वनाश और मानवता का पाठ पढ़ाने के लिए ही भगवान महावीर का जन्म हुआ।

जन्म से अवधि ज्ञानी होने के कारण वे सदा निर्भय रहते थे। एक बार राजोद्यान में सखाओं सहित क्रीड़ा कर रहे थे कि अकस्मात् एक विषधर निकल आया सखागण भयभीत होकर भागे पर बालक वर्द्धमान डरे नहीं और देखते ही देखते वह उस काल रूप विषधर पर नृत्य करने लगे। पर, अरे यह क्या? वह काल रूप विषधर तो एक देव बन गया। उसने वीर की विनती की और बोला—हे वीरता के अवतार! आप वीर हैं अति वीर हैं और महावीर हैं।

राजकुमार वर्द्धमान ने देखा कि लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए घोर हिंसा करते हैं द्वेष और वैर करते हैं। संसार की शान्ति के लिए उन्होंने अहिंसा और प्रेम का उपदेश दिया।

जब वह तीस वर्ष के हुए तो उनको संसार की विषमता काटने के लिए दौड़ी। उन्होंने नजर पसार कर देखा कि संसार में राग-द्वेष का साम्राज्य छाया हुआ है तो वैराग्य की कुटिल रेखा उनके मन पर खिंच गयी और मन पर 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का इतना प्रभाव पड़ा कि वन की ओर चल दिए। बारह वर्ष तक निर्ग्रन्थ श्रमणोत्तम महावीर ने घोर तपस्या की और ऋजुकूला के किनारे साल वृक्ष की शीतल छाया में प्रभु जा विराजे। घातिया कर्म का नाश कर कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया अब वे मानव नहीं महामानव थे।

सन्मति महावीर ४२ वर्ष तक इस भूमण्डल पर पैदल यात्रा करते हुए जन-जन को कल्याण का उपदेश देते हुए ७२ वर्ष की आयु में बिहार प्रदेश के पावापुर नगर में पधारे और कार्तिक कृष्णा अमावस्या को शुभ दीपावली के दिन २४८७ वर्ष पूर्व निर्वाण पधारे।

के अनुसार फलते-फूलते है। जाडा, गर्मी, बरसात निश्चित समय पर अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। वायु जो समस्त प्राणियो का आधार है, सबको सम्यक रूप से साँस लेने देती है।

यह निर्विवाद सत्य है कि प्रत्येक अच्छे कार्य के सम्पन्न करने मे कुछ बाधाएँ अवश्य आती हैं। परन्तु कर्त्तव्यशील मानव हम उसे ही कहेंगे जो इन बाधाओ से भयभीत न होकर अपने कर्त्तव्य-पालन के मार्ग पर सोत्साह आगे बढता है। कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति को दृढप्रतिज्ञ होना चाहिए, नही तो स्वार्थ की विजय अवश्य होगी और वह कर्त्तव्य-च्युत हो जायगा जिससे कालान्तर मे उसके उज्ज्वल मुख पर ऐसी कालिमा लगेगी, जो लाख छुटाने पर भी नही छूटेगी।

कर्त्तव्य पालन का पौधा घर मे उगता है, पाठशाला मे पल्लवित होता है, समाज मे विकसित होता है और देश मे फलता है। कर्त्तव्य पालन ही सफलता की कुजी है, यश का साधन है और मोक्ष का द्वार है। जिस मनुष्य मे कर्त्तव्य पालन की जितनी मात्रा होती है, उतना ही वह त्यागी और परोपकारी होता है। आज भारत के उत्थान के लिए इसी की आवश्यकता है। यही उसकी विजय-पताका जगत मे फहरायेगा।

कर्त्तव्य पालन से व्यक्तिगत उन्नति तो होती है, पर उसके साथ समाज की भी उन्नति होती है। कारण यह है कि समाज कतिपय कर्त्तव्यनिष्ठ नरपुगवो का दृष्टान्त सामने रखकर उन्नति करता चला जाता है। एक समय ऐसा आता है, जब समाज अभ्युदय के शिखर पर आरूढ हो जाता है। कर्त्तव्य-परायण जीवन समाज का एक विशाल वृक्ष हो जाता है। जिसके फलो से राष्ट्र भर की क्षुधा तृप्त होती है। कर्त्तव्य-परायण व्यक्ति सिद्धान्त के सम्बन्ध मे स्थिर मति होता है। वह अपने मित्रो, कुटुम्बियो तथा निजी स्वार्थों को कर्त्तव्य की हवनशाला मे होम देता है। विपत्तियो के पर्वत को भी चूर-चूर करके वह अपने कर्त्तव्य-मार्ग को सुगम्य बनाता है और धैर्य की कुदाली से मार्ग के रोडो को हटाकर कर उसे सबके लिए प्रशस्त बनाता है।

"ज्यो गुगेहि मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै" के अनुसार कर्त्तव्य-पालन मे जो अनूठी शान्ति, विचित्र सात्वना और लोकोत्तर आनन्द प्राप्त होता है उसकी वास्तविक अनुभूति का अनुभव तो केवल सच्चे कर्मवीर की अन्तरात्मा ही कर सकती है। इस आनन्द को प्राप्त करने के लिए कर्मवीर दुष्कर से दुष्कर कार्य करने को प्रस्तुत हो जाता है। कर्त्तव्य-पालन करने से मनोवृत्तियाँ एकाकार हो जाती हैं। कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति के हृदय मे साम्यभाव जागृत हो जाता है। उसमे विश्व-बन्धुत्व की भावना जाग उठती है। उसके हृदय मे अपने-पराए के भाव की सकीर्णता नही रहती। उसके हृदय की ध्वनि ही ईश्वरीय प्रेरणा होती है। शिष्य को विद्या पढाकर गुरु को अपार आनन्द प्राप्त होता है, रोगी को स्वस्थ करके चिकित्सक का हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। इसके वास्तविक सुख को तो कर्त्तव्यशील पुरुषो की अन्तरात्मा ही बता सकती है, जिसको कि उन्होंने अपने कर्त्तव्यपालन से प्राप्त किया है।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" के अनुसार कर्त्तव्य ही मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है। कर्त्तव्य कर्म करने से व्यक्तिगत सौख्य और सन्तोष की प्राप्ति होने के साथ-साथ सामाजिक सौख्य और सन्तोष की प्राप्ति सुलभ हो जाती है। इस प्रकार कर्त्तव्य-पालन के द्वारा केवल व्यष्टिगत ही नही, अपितु समष्टिगत उन्नति भी होती है जो कि राष्ट्रो की उन्नति का एक दृढ स्तम्भ है।

★

जीवन में विवेक

कु० मधुरिमा शर्मा ८ अ

यह सभी को मान्य है कि विवेकयुक्त जीवन ही मानव जीवन है। इस कारण विद्यमान मानवता को विकसित करने के लिये विवेक-विरोधी कर्म का त्याग करना आवश्यक है। इस विवेक का अनुसरण करने से मानवता पूरी तरह विकसित हो जायेगी। यह विवेक हमारे नित्यप्रति होने वाले कामों में होना आवश्यक है। इससे हमारे जीवन में भी उन्नता आयेगी और साथ ही साथ सारे संसार के जीवों का भी कोई अहित नहीं होगा। तो जब इस कार्य को करने में "दूई हाथ मुद मोदक मोरे" वाली कहावत सिद्ध होती है तो यही कार्य क्यों न किया जावे।

हमारे दैनिक जीवन में होने वाली घटनाओं में जो मुख्य व्यक्ति हमारे सहायक होते हैं, वह हमारे सहपाठी हमारे समवयस्क और हमारे गुरुजन आदि हैं, जो मुख्य रूप से हमारे आदर के पात्र होते हैं। अब हम यह देखना है कि विवेक से हमें और इन उपर्युक्त व्यक्तियों को क्या लाभ होता है? यदि हम इस लाभ को दृष्टि में रख कर कार्य करते हैं तो हमें हमारे सहपाठी और समवयस्क व्यक्तियों के साथ निम्नलिखित व्यवहार करना पड़ता है —

१—हम अपने समवयस्कों से सत्य भाषण करें।

२—यदि समवयस्क किसी काम की हम से आशा करते हैं और हम उस कार्य को करके उनकी सहायता कर सकते हैं तो हमें वह काम उनके लिये अवश्य करना चाहिये।

३—हमें अपने समवयस्कों के साथ प्रेमपूर्वक आचरण करना चाहिये। यदि वे कभी क्रोधपूर्ण व्यवहार भी करें तो भी अपने आचरण से नम्र बने रहना चाहिये।

इसके अलावा यदि हमारे गुरुजन आदि जिनमें हमारे पितामह मातामह पिता माता शिक्षक और अन्य पूज्य जन हैं उनके साथ भी हमारा विवेकपूर्ण और शिष्टतापूर्ण आचरण होना चाहिए जैसे—

१—यदि किसी स्थान पर हम बैठे हों और उनमें से कोई उस स्थान पर से गुजरे तो हमें तत्क्षण ही उनके प्रति सत्कार प्रकट करने के लिये खड़े हो जाना चाहिये।

२—यदि हमारे सम्मुख गुरुजन छोटे से कार्य को करने के लिये आगे बढ़ें तो हमें उनके हाथों से लेकर स्वयं कर देना चाहिये।

३—उनके सम्मुख नम्र बने रहना चाहिये। यदि किसी बात पर वे क्रोध भी करें तो हमें नम्रता पूर्ण और विनयपूर्ण आचरण करना चाहिये।

८—असहाय अवस्था में जैसे इनके अस्वस्थ वृद्ध होने पर या किसी कारण हाथ-पैरों [illegible]
लग जाने पर अथवा रोग की स्थिति में इनकी सेवा के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन सब के प्रति अपना कर्तव्य करने में सिद्ध होता है कि
विवेक का उदय हो चुका है। और भी व्यक्ति हमारे जीवन में आते हैं जैसे—राह चलता व्यक्ति
आए असंभावित अतिथि। इन सबके प्रति भी हमें यह देखना चाहिए कि उनकी आयु, योग्यता और
का अपमान करने वाला कोई भी कार्य हम से न हो, क्योंकि कभी अनजाने में ही हम वह का
बैठते हैं जो हमें नहीं करना चाहिये तो उस दशा में हमारा आचरण विवेकपूर्ण नहीं रह
हममें शक्ति होने पर भी सहनशीलता हो, विपुल सम्पत्ति होने पर भी नियम पालन करने की
सुखी दशा में दुखिया की सेवा करने का साहस हो, तभी यह सिद्ध किया जा सकता है कि
आचरण विवेकपूर्ण है।

* * *

सदा गुरुवर का जीवन है, रहा साधनामय सारा।
व्यर्थ नहीं खोते थे गुरुवर, कभी एक क्षण भी प्यारा॥

अष्ट प्रहर में एक प्रहर, केवल गुरु निद्रा लेते थे।
शेष समय, जप, ध्यान, योग, सेवा, उपदेश में देते थे॥

तितिक्षा आश्चर्य जनक थी, रत्नचन्द्र गुरु की भारी।
एक वस्त्र में बिता डालते, थे गुरुवर सर्दी सारी॥

—मुनि की

☆

नम्रतापूर्वक बोलने से अनायास ही प्रेम प्राप्त होता है, घर की लड़की अपने नम्रतापूर्वक स्वभाव से ही आदर प्राप्त करती है। श्रीकृष्ण अर्जुन का रथ हांकने को तैयार हो गए। यह सब अर्जुन के नम्र स्वभाव का ही प्रभाव था। और नम्रता से ही मनुष्य को सब कठिनाइयों पर विजय प्राप्त होती है। सब स्थान पर उसका बड़ा सम्मान होता है।

जिस प्रकार कि भूषण कोई स्त्री पर लगाए जायें तब ही वह सुन्दर लगती है उसी प्रकार मनुष्य के चरित्र का भूषण नम्रता है। नम्रता से दुश्मन भी अपना हो जाता है। जब मनुष्य क्रोध करता है तो धीरे-धीरे क्रोध बढ जाता है। उसके सामने यदि हम नम्र बने रहें तो उसके मन में भी नम्रता की भावना जागृत हो जायेगी। यदि हम चाहे किसी भी उत्तेजना के वातावरण में हो लेकिन अपनी नम्रता को नष्ट न होने दो। नहीं तो क्रोध फौरन आसन जमा लेता है और आपस में प्रेम रूपी कल्प वृक्ष को क्रोध क्षण भर मे नष्ट कर डालेगा। क्रोध के कारण ही नम्रता की कड़ियाँ टूट-टूट कर गिर गई है। बड़ी औरतें तथा लडकियो को चाहिये कि वे इन कड़ियो को जोड दें। नम्रता के पेड पौधे लगाकर उसकी फुलवारी की शोभा बढादें। क्रोध के कारण सारा परिवार डांवाडोल हो जाता है। आस पास के छोटे मोटे कारण लेकर ही मन मे तर्क-वितर्क उठते रहते हैं। अन्त मे वह क्रोध का रूप धारण कर लेते है। उदाहरणत आग को कब तक ढका जाए कितना भी ढका जाए लेकिन आग बाहर अवश्य चमकती हैं। उसी प्रकार क्रोध की बातें कब तक छिपाई जा सकती है। एक न एक दिन सोचकर क्रोध बढ़ जाता है और सारी नम्रता को नष्ट कर देता है।

वह घर भयकर श्मशान है जिसमे नारी क्रोधपूर्वक रहती है। जहाँ नारी आदर नम्रता का आचरण करती है वह स्वग है, जिन्होने नम्रता मे ही सारे ससार मे विजय प्राप्त करली इसी से उनका नाम सब स्मरण कर लेते है। इससे नारी को नम्रतापूर्वक बोलना चाहिये। इस पर दोहा प्रचलित है —

मानव जीवन वेदी पर, क्रोध नाम है दूषणक।
दुःख सुख दोनो नाचेंगे, मेल बोलने के भूषणक।

हमे नम्रतापूर्वक ही सच्चे हृदय से सबका सम्मान करना चाहिए। नम्रता से कन्याएँ शीलवती कहलाती हैं। क्योकि उन पर माता पिता, भाई-बहिन आदि का बहुत अधिक आदर होता है। नम्रता मनुष्य की उदारता और उच्च भावनाओ को सूचित करने वाला एक उज्जवल प्रतीक है। वह घर और बाहर सर्वत्र प्रेम एव आदर होता है। ऐसे मनुष्य को सब अपने पास बैठाते हैं। जो नारियाँ क्रोध तथा धन के घमड मे रहती हैं वह घर की रानी बन नही सकती। इसके विपरीत साधारण घर की लड़की भी कोमल एव नम्र स्वभाव के कारण सबका प्रेम और आदर प्राप्त कर लेती है। इसलिये नम्रतापूर्वक बोलना चरित्र का भूषण कहलाता है। मनुष्य के हृदय मे जितनी अधिक नम्रता होगी तो यश के क्षेत्र मे उतना ही गहरा उतरता जाएगा! जो नम्र नारी है वह घर व परिवार के साथ समाज का भी आदर्श बन जाती है इसलिये कहा है कि चरित्र का भूषण नम्रता है।

☆

गुरुदेव की आध्यात्मिक साधना

कु० शान्ति जैन एम० ए०

ईश्वर क्या है ? आत्मा क्या है ? कैसा है उस दिव्यानुभूति का रूप कहाँ है उसका निवास स्थान आदि प्रश्न अत्यन्त पुरातन काल से भारतीय संस्कृति के हृदय को मंथित करते रहे हैं । आध्यात्मिकता—ईश्वर आत्मा एवं जीव प्रधान संस्कृति होने के कारण युग मनीषी ऋषि-मुनि प्रबुद्ध त्यागी-तपस्वी वैरागी आदि सभी-जीव इस अनन्त तत्व को जानने हेतु अपने जीवन में यत्न करते रहे हैं । अनेकों विचारकों में व्यक्तिगत विचार-विभिन्नता होते हुए भी एक अपरिमित अनजान-सी एकरूपता है और यही एकरूपता हमारे राष्ट्र, देश समाज एवं जाति का गौरव-मय है । सिद्धान्तों के साधन विभिन्न हैं किन्तु साध्य एक ही है और वह है—आत्मा को अज्ञेय अनुपम है उसके विषय में अविच्छिन्न ज्ञान प्राप्ति । आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रथमतः मानव-जीवन को वैराग्ययुक्त कर उसे विभिन्न सद्गुणों से आभूषित करना परमावश्यक है । मानव-जीवन एक अज्ञात अदृश्य अनजान अपरिचित शक्ति से प्रसूत होता रहता है, किन्तु उस प्रसूत का उस अज्ञेय का उद्गम क्या है, इसका प्रवाह किस ओर है इसको जानना-समझना साधारण व्यक्तियों की क्षमता के बाहर की बात है इस रहस्य को केवल युग विभूतियाँ ही जान सकती हैं ।

पाश्चात्य एवं पूर्व के दार्शनिकों ने इस अनन्त रहस्य को जानने का यत्न किया किन्तु उनमें सम-रूपता न आ सकी उनके दर्शन की यह विषमता इस गुत्थी को भी विषम बनाए रही । पाश्चात्य में तो अनेकानेक 'वादों' का जन्म हुआ जिन्होंने विभिन्न तरीकों से इस अज्ञात को स्पष्ट करने का प्रयास किया किन्तु वे समस्त मानव-एषणाओं को सन्तुष्ट न कर सकने के कारण केवल एक काल-भाविक रह गये एक युग-प्रवाही न बन सके । जहाँ एक ओर आदर्शवादियों ने अंतिम सत्य मनुष्य के मन एवं आत्मा के अमर देखा वहाँ प्रकृतिवादियों ने प्रकृति को ही सर्व प्रधान समझा । आदर्शवादियों के विचारानुसार मानव-जीवन के कुछ अनन्त एवं चिरन्तन सत्य हैं जिनको प्राप्त करना ही मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है । पाश्चात्य-दार्शनिक एच एच हार्न (H H Horne) ने इस अनन्तता की प्राप्ति के लिये आध्यात्मिक संसार के तीन पहलुओं को आवश्यक बताया—क्रिया भाव एवं कर्म । सत्यं शिवं सुन्दरम् ही जीवन के आध्यात्मिक आदर्श हैं और इनको प्राप्त कर के ही मानव जीवन की पूर्णता को प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है ।

आदर्शवादी व्यक्ति आध्यात्मिक-पक्ष को अधिक महत्त्व देते हैं । उनके मतानुसार यह आध्यात्मिकता ही है जो मनुष्य को अन्य प्राणधारियों से वरिष्ठता प्रदान करती है । भारतीय-दर्शन तो सदैव से इसी आध्यात्मिकता की खोज का जिज्ञासु रहा है । यहाँ के दार्शनिकों ने यहाँ के साधकों ने इसी चिरन्तन सत्य की साधना की है । पूज्यपाद गुरुदेव ने भी अपने सम्पूर्ण जीवन को इसी सत्य

ब्रह्मचर्य

कु० वेद शर्मा प्रथम वर्ष कला

मानव जीवन का विशाल रूप हम सब के सामने है। जब हम उसका विशाल रूप से अध्ययन करते हैं तो उसमें अच्छाइयों एवं बुराइयों का एक अनोखा जाल दृष्टिगोचर होता है। एक ओर आध्यात्मिक भावना की शुद्ध एवं निर्मल धाराएँ प्रवाहित होती नजर आती हैं तो दूसरी ओर दुर्भावनाओं की अपवित्र नालियाँ भी बहती हुई परिलक्षित होती हैं। एक ओर गहरा अन्धकार घिरा है तो दूसरी ओर प्रखर प्रकाश प्रदर्शित हो रहा है। दैवी और आसुरी भावनाओं का यह देव और असुर संग्राम मनुष्य जीवन के कण-कण में व्याप्त है।

ब्रह्मचर्य शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। पहला ब्रह्म और दूसरा चर्य। व्याकरण की दृष्टि से शब्दों की बनावट पर ध्यान देना आवश्यक है। किसी भी शब्द का जब तक विश्लेषण न किया जाय तब तक उसका अर्थ स्पष्ट नहीं होता है। ब्रह्मचर्य संस्कृत भाषा का शब्द है और व्याकरणानुसार जब उसका विश्लेषण करते हैं तो दो शब्द हमें परिलक्षित होते हैं—ब्रह्म और चर्य। इन दोनों शब्दों से ही ब्रह्मचर्य की उत्पत्ति हुई है।

ब्रह्म का अर्थ शुद्ध भाव है। इस शुद्ध भाव कहिये या परमात्मभाव अर्थात् ब्रह्म की ओर चर्या करना या गति करना ही ब्रह्मचर्य कहलाता है। जो जीवन में परमात्म भाव का प्रकाश चमका देता है वही ब्रह्मचर्य है।

पवित्र साधना का सिंह द्वार ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य के द्वारा हृदय में शुद्धता आती है। हृदय जितना ही शुद्ध एवं निर्मल होगा विचार करने का ढंग भी उतना ही स्वच्छ होगा और कर्तव्य पूरा करने की प्रेरणा भी उतनी ही प्रबल होगी। यह जीवन संग्राम-क्षेत्र में एवं आध्यात्मिक क्षेत्र दोनों में ही सफल बनेगा। यदि ऐसा न हुआ और हृदय में अपवित्र विचार भरे रहे तो वह श्वान की भाँति भटक कर नष्ट हो जायेगा।

ब्रह्मचर्य ही एक ऐसी साधना है जिससे शरीर में भी शक्ति आती है और आत्मा भी शक्तिशाली बनती है। यह बाह्य जगत में हमारे शरीर को ठीक रखता है और अन्तरंग जगत में हमारे हृदय एवं भावनाओं को भी शुद्ध बनाता है।

मनुष्य को शिशु अवस्था में शरीर मिला और आगे चलने उन्नति की तो जब तक वासनाएँ उत्पन्न नहीं हुईं वह ठीक-ठीक विकास करता गया किन्तु वासनाओं और विकारों के उत्पन्न होने पर उसका विकास रुक जाता है, यही नहीं बल्कि ह्रास भी होना आरम्भ हो जाता है।

शरीर धर्मसाधन का केन्द्र है। जब तक प्राण इस शरीर मे हैं तभी तक साधुत्व एव श्रावकत्व है और जब तक प्राण इस शरीर मे हैं तभी तक सवर और पौषध आदि हैं। इस शरीर को छोड जाने के पश्चात् अगले भव में जन्म लेते हैं। क्या साधु या श्रावक की साधना हो सकती है ? नही। अतएव इस शरीर का उपयोग करना ही विवेकशीलता है।

इस शरीर को हमे साधना के द्वारा तपाना है। यह नही कि इसे आराम देकर फुला लें। यह जैन धम का सिद्धान्त नही है। भगवान ने स्पष्ट रूप से यह कहा है—

"आयावयाही, चय सोग मल्ल, कामे कमाही कमिय खु दुक्ख
छिदाहि दोस विणएज्ज राग, एव सुही होहिसि सम्पराये।

अरे साधक ! तू शरीर को तपा और सुकुमारता को छोड साथ ही अपनी कामनाओ पर विजय प्राप्त कर। तू द्वेष वृति को छेद डाल और राग भाव को भी दूर कर दे। बस, यही सुखी होने का सर्वोत्तम मार्ग है।

शरीर को तपाना तो है मगर शरीर को तपाने के लिये ही नही तपाना है, तन को तपाने के साथ-साथ मन की कामनाओ को भी समाप्त करना है। राग और द्वेष को भी नष्ट करना है। तन और मन दोनो को ही साधना है। मन को तपाने के लिये ही तन को तपाने की आवश्यकता है।

ब्रह्मचर्य की आधारशिला पर ही मनुष्य का यह महान जीवन टिका हुआ है। ब्रह्मचय ही शरीर को सशक्त और जीवन को शक्ति-सम्पन्न करता है। सबल मनुष्य गृहस्थ जीवन में भी शक्तिशाली बन कर अपनी यात्रा सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है और यदि वह साधु जीवन प्राप्त करेगा, उसको भी सबल एव श्रेष्ठ बनायेगा। उसे जो कर्त्तव्य सौंप दोगे वह अपने प्राणो को छोडने के लिये भले ही तैयार रहे मगर कर्त्तव्य को नही छोडेगा।

ब्रह्मचर्य के इस कठिन और कठोर माग पर कोई विरला साधक ही ठहर पाता है, आगे बढ़ पाता है और मोक्ष को प्राप्त करता है। इस सम्बन्ध मे राजर्षि भर्तृहरि ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है—

मत्तेभ कुम्भ-दलने भुवि सन्ति शूरा,
केचित् प्रचण्ड मृगराज वधेऽपि दक्षा।
किन्तु ब्रवीमि बलिना पुरत प्रसह्य,
कदर्प-दर्प - दलने विरला मनुष्या ॥

धमशास्त्रो की विधान की भाषा मे साधु का ब्रह्मचय पूण माना जाता है, परन्तु वह पूर्णता बाह्य प्रत्याख्यान की दृष्टि से है। पूर्ण ब्रह्मचय का लक्ष्य रखकर की जाने वाली एक महान प्रतिज्ञा मात्र है। इसी दृष्टि से साधु के ब्रह्मचय को पूर्ण कहा गया है।

वास्तव मे ब्रह्मचय जीवन के लिये महत्वपूण वस्तु है और जीवन की अमूल्य खुराक है। यदि उसका यथोचित उपयोग न किया गया तो जीवन भोगो मे गल जायगा। आजकल जहाँ तहाँ रोगग्रस्त

शरीर दृष्टिगोचर होते हैं इसका एक प्रधान कारण शरीर का शक्तिशाली न होना है और शरीर के शक्तिशाली न होने का कारण ब्रह्मचर्य का पालन न करना है।

ब्रह्मचर्य की साधना जितनी उच्च और पवित्र है उतनी ही उस साधना में सावधानी की आवश्यकता है ब्रह्मचर्य की साधना के लिये इन्द्रियनिग्रह तथा मनोनिग्रह की परमावश्यकता है। ब्रह्मचारी को फूँक-फूँक कर पग रखना पड़ता है। इसी लिये हमारे शास्त्रकारों ने ब्रह्मचारी के लिए अनेक मर्यादायें बताई हैं।

★

बिखरे मोती

महेन्द्र कुमार शर्मा ( )

देश भक्ति का दम भरने वालों के लिए जनता का खून चूसना एक बहुत बड़ा अपराध है।
(प्रेमचन्द)

किसी के प्रति मन में क्रोध लिए रहने की अपेक्षा उसे तत्काल प्रकट कर देना अधिक अच्छा है।
(वेदव्यास)

जो दीपक को अपने पीछे रखते हैं वे अपने मार्ग में अपनी ही छाया डालते हैं।
(रवीन्द्रनाथ टैगोर)

(गांधी)

पुरुषार्थ परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने में है।
(लिंकन)

जो दूसरों को स्वतन्त्रता से वंचित रखते हैं वे स्वयं उसके अधिकारी नहीं है।
(शेक्सपीयर)

वे कितने निर्धन हैं जिनके पास धैर्य नहीं।
(गांधी)

जीवन का आधार अच्छा चाल चलन है।
(कन्फ्यूशियस)

अज्ञानता एक ऐसी रात्रि के समान है न जिसमें चांद हों न तारे।
(अज्ञात)

अहंकार ने देवताओं को राक्षस बना दिया
(स्टीनिस्की)

अपने पद पर इतराना अपनी मूर्खता दिखाना है।

★ ★ ★

जैन धर्म में तप का महत्व

कु० शोभना शर्मा, कक्षा नवम अ

मानव जीवन मे तप का महान महत्व ह । तप मे ही साधक साध्य तक पहुँचता है । लक्ष्य पर पहुँचने के लिए अनक साधनो का उपयोग करना पडता है । गन्तव्य स्थान एक है पर माग भिन्न-भिन्न हैं । साध्य एक है साधन कई हैं । तप के बल से अनक महर्षियो ने मोक्ष प्राप्त किया । वाल्मीकि आदि कवियो ने भी तप की महत्ता को मुक्त कण्ठ मे स्वीकार किया है ।

तप बल शेष धरहि महि भारा

इस प्रकार जैन धम न भी तप की मान्यता का स्वीकार किया है । जैन धम का जो दृष्टिकोण है वह केवल शरीर को तपाना ही नही उसको नियन्त्रण मे रखना, उसे अपने अधिकार मे करना ही तप है । शरीर एक प्रकार का घोडा ह तथा आत्मा उसका सवार है । यदि शरीर रूपी घोडे को सुचारु रूप से चलाना ह तो आत्मा रूपी सवार का मजबूत एव सतक बनना पडेगा, जो घोडे को अपने पूण अधिकार मे रख सके ।

हमारे जीवन के समान तप के भी दो रूप हैं एक बाह्य दूसरा अन्तरग । यह जो हमारा शरीर है इसके द्वारा किया गया तप बाह्य तप है और आत्मा के द्वारा किया गया तप अन्तरग तप है । जब हम इस शरीर को महत्व देते हैं तब अन्तरग जीवन का दीपक मध्यम पड जाता है । और जब आत्मा को तपाते हैं तो बाह्य शरीर का ध्यान नही रहता ।

किसी भी व्यक्ति के मन मे जितने-जितन पवित्र और अच्छे विचार जागृत हो रहे हैं, शुद्ध भाव और सकल्प जाग रहे हैं, मन राग और द्वेष मे निरन्तर अलग होता चला जा रहा है, जीवन मे एक नवीन स्फूर्ति और उल्लास एव पवित्र विचार-धारा प्रवाहित हो रही है उसे अन्तरग तप कहते हैं । जिस समय बाह्य तप अन्तरग तप का साथ त्याग देता है तब व्यक्ति के जीवन का उल्लास क्षीण होने लगता है, राग द्वेष दिन-प्रतिदिन बढने लगता है, किसी भी व्यक्ति की बात को नही सुनता है, जरा सी बात पर मस्तिष्क क्रोधित होने लगता है, तब तप अपने उचित रूप मे नही रहता । उस समय तप समाप्त होने पर आ जाता है ।

इन दोनो मे से अन्तरात्मा की पवित्रता एव शुद्धि मे सबसे उपयुक्त कौन सा है ? बाह्य तप प्रेरणा देने वाला तो अवश्य है अन्तरग शुद्धि मे, परन्तु बाह्य तप अन्तरग तप को पूर्ण रूप से जागृत करने मे समर्थ नही है ।

दूसरी ओर वे तपस्वी हैं और पार्श्वनाथ के काल मे वे तपस्वी है, साधक हैं, योगी हैं। और निरन्तर घनघोर तपस्या के द्वारा अपने विकार एव वासनाओ से लड रहे हैं। अपने जीवन को दिन प्रति दिन पवित्र बना रहे हैं। लेकिन यह भी गलत रास्ता है। ऐसी साधना के अनेक उदाहरण हैं। जैसे—

एक तपस्वी जा रहा था। रास्ते मे उसने एक सुन्दर चीज देखी। इसे देख कर उसके हृदय मे पाप की भावना जागृत हुई। उसने सोचा "न होगा बांस न बजेगी बांसुरी" यह विचार कर उसने अपनी दोनो आंखो मे गर्म-गम शलाखाऐं घुसेड ली। और सर्वदा के लिए अन्धा हो गया।

इस प्रकार शरीर को नष्ट करने से ही तप नही होता। आंखो को नष्ट करने की अपेक्षा यदि यह तपस्वी उनको अपने नियन्त्रण मे करता वही वास्तव मे उसका तप था। अत जैन दर्शन यद्यपि तप के दोनो रूप मानता है पर अन्तरग तप पर ही विशेष जोर देता है। तप के लिए उपनिषद् मे भी कहा है—

"तपसा किल्विष हन्ति"

तप से ही समस्त पापो का नाश होता है। इसी का अनुमोदन हमारा जैन दर्शन भी करता है। इन्द्रिय निग्रह पर ही विशेष जोर दिया गया है। आचार्य प्रवर, श्रद्धेय श्री रत्नचन्द्र जी महाराज भी त्याग और तपस्या के बल से ही इस उच्चतम सिंहासन पर आसीन हुए। तप से ही उनके जीवन मे निखार आया और वे मनुष्यो के मार्ग प्रदर्शक बन सके।

●

सरल हृदय था,
सरल वाणी थी,
सरल कर्म था,
गुरुवर का।
सादा, सरल,
मधुर जीवन था,
श्री रत्नचन्द्र मुनीश्वर का॥

—मुनि कीर्ति

भगवान् महावीर के सिद्धान्त

कु० रानी आर्य कक्षा ६ म

भगवान महावीर ने परिग्रह संग्रहवृत्ति एवं तृष्णा को संसार के समस्त दुःखों-कष्टों का मूल कहा है। संसार के समस्त जीव तृष्णा-वश होकर अशान्त और दुःखी हो रहे हैं। तृष्णा जिसका कहीं अन्त नहीं कहीं विराम नहीं—जो अनन्त आकाश के समान अनन्त है। संसारी आत्मा धन जन एवं भौतिक पदार्थों से सुख व शान्ति की गवेषणा करते हैं। परन्तु उनका यह प्रयत्न व्यर्थ है। क्योंकि तृष्णा का अन्त किए बिना कभी सुख एवं शान्ति मिलेगी ही नहीं। लाभ से लोभ की अभिवृद्धि होती है। तृष्णा से आकुलता की बेल फैलती है। इच्छा करने से इच्छा तथा लालसा एवं आसक्तिभाव और मूर्छा भाव ये सर्व एक एकार्थक हैं। अग्नि में घी डालने से जैसे वह कम न होकर अधिकाधिक बढ़ती है, वैसे ही धन एवं परिग्रह से तृष्णा की आग शान्त न होकर और अधिक विशाल होती जाती है।

"तृष्णा आकाश के समान अनन्त है। उसका कभी अन्त नहीं आता। अपरिग्रह का सिद्धान्त समाज में शांति स्थापित करता है। राष्ट्र में समताभाव का प्रसार करता है। व्यक्ति में एवं परिवार में आत्मीयता का आरोपण करता है। परिग्रह से अपरिग्रह की ओर बढ़ना यह धर्म संस्कृति है। अपरिग्रह में सुख है, मंगल है शान्ति है। अपरिग्रह-वाद में स्वहित भी है परहित भी है। अपरिग्रहवाद अधिकार पर नहीं कर्तव्य पर बल देता है। शान्ति एवं सुख के साधनों में अपरिग्रहवाद एक मुख्यतम साधन है। क्योंकि यह सूत्र अध्यात्मवाद होकर भी समाजमूलक है।

अमृत संगीत अहिंसा जैन संस्कृति की संसार को जो सबसे बड़ी देन है वह अहिंसा है। अहिंसा का यह महान विचार जो आज विश्वशान्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन समझा जाने लगा है और जिसकी अमोघ शक्ति के सम्मुख संसार की समस्त शक्तियाँ कुण्ठित होती दिखाई देने लगी हैं एक दिन जैन संस्कृति के महान उन्नायकों द्वारा ही हिंसा काण्ड में लगे सम्पूर्ण संसार के सामने रखा गया था।

जैन तीर्थंकरों की तथाकथित अहिंसा का भाव आज की मान्यता का अर्थ—प्रेम परोपकार विश्वबन्धुत्व करते थे। स्वयं आनन्द से जियो और दूसरों को जीने दो जैन तीर्थंकरों का आदर्श यहीं तक सीमित न था। उनका आदर्श था दूसरों के जीने में मदद भी करो। और अवसर आने पर दूसरे के जीवन की रक्षा के लिये अपने जीवन की आहुति भी दे डालो। वे उस जीवन को कोई महत्त्व न देते थे जो जन-सेवा के मार्ग से सर्वथा दूर रह कर एक मात्र भक्तिभाव के अर्थ शून्य क्रिया-काण्डों में ही उलझा रहता है।

अहिंसा के अनन्य सन्देशवाहक भगवान महावीर हैं। आज दिन तक उन्हीं के अमर सन्देशों का गौरव गान गाया जा रहा है। आपको मालूम है कि आज से ढाई हजार वर्ष पहले का समय भारतीय

सस्कृति के इतिहास मे एक महान अन्वकारपूण युग माना जाता है। देवी देवताओ के आगे पशु वलि के नाम पर रक्त की नदियाँ वहाई जाती थी। अस्पृश्यता के नाम पर करोडो की सख्या मे मनुष्य अत्याचार की चक्की मे पिस रहे थे। चारो ओर हिंमा का जोर था। ऐसे समय मे भगवान महावीर ने आकर अहिंमा का अमृतमय सन्देश दिया ! जिसमे भारत की काया पलट हो गई।

जैनदर्शन का मूल स्वर

अनेकान्तवाद —अनेकान्तवाद जैन दर्शनो की आवार-शिला है। जैन तत्वज्ञान की मारा इमारत इसी अनेकान्तवाद के मिद्धान्त पर अवलम्बित है। वास्तव मे अनेकान्तवाद को, स्याद्वाद को जैन दशन का प्राण ममभना चाहिये। जैन वम मे जो वात हुई मुनि जी ने कसौटी पर अच्छी तरह जाँच कर कही है। यही कारण है कि दार्शनिक साहित्य मे इसका दूमरा नाम अनेकान्त दर्शन है। अनेकान्तवाद का अर्थ है—प्रत्येक वस्तु पर भिन्न-भिन्न दृष्टि विन्दुओ से, विचार करना, देखना या कहना। अनेकान्त वाद का दूसरा नाम है अपेक्षावाद। जैन घम मे मर्वथा एक ही दृष्टिकोण मे पदाथ के अवलोकन करने की पद्धति को अपूण एव अप्रामाणिक समझा जाता है। और एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न कथन करने की पद्धति को पूर्ण एव प्रामाणिक माना गया है। यही अनेकान्तवाद है। इसके ही अपेक्षावाद, कथचित् वाद और स्याद्वाद आदि नामान्तर है।

नित्य और अनित्य के प्रश्न के विपय में जैन धर्म कहता है कि हर एक पदार्थ नित्य भी और अनित्य भी है। साधारण मनुष्य घपले मे पड जाते हैं कि जो नित्य है वह अनित्य कैसे। और जो अनित्य है वह नित्य कैसे। लेकिन जैन घम अपने अनेकान्तवाद रूपी महान अटल सिद्धान्त के द्वारा सहज ही मे इम समस्या को हल कर लेता है।

सत् और असत्—यही सिद्धान्त सत् और असत् के सम्वन्ध मे है। कितने ही सम्प्रदाय कहते है कि—वस्तु सर्वथा असत् है। दोनो ओर से सघर्ष होता है। अनेकान्तवाद ही इसमे समन्वय करता है कि प्रत्येक वस्तु सत् भी है और असत् भी है अर्थात् है और नही भी।

"इन ५ दर्शनो का आपस मे सघर्ष है (१) कालवाद (२) स्वभावाद (३) कर्मवाद (४) पुरुपार्थवाद (५) और नियतिवाद। कलावाद का कहना है कि ससार मे जो कुछ भी कार्य हो रहे हैं, सव काल के प्रभाव से हो रहे हैं। काल के विना स्वभाव, कर्म, पुरुपार्थवाद और नियति कुछ भी नही कर सकते। मनुष्य को पाप या पुण्य का फल उमी समय नही मिलता समय आने पर ही मिलता है।

यद्यपि, न्याय, वैशेपिक, साख्य, योग तथा वेदान्त आदि वैदिक-दर्शनो मे ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता और कर्मफलदाता माना गया है। मकडी खुद ही जाला वनाती है और स्वय ही फदे मे फँस जाती है। इसके विपय मे एक विद्वान ने श्लोक कहा है—

स्वय कर्म करोत्यात्मा,
स्वय तत्फलमश्नुते।
स्वय भ्रमति ससारे,
स्वय तस्माद् विमुच्यते।

यह आत्मा स्वयं ही करने वाली है और कर्मों का भोग भी करती है।

ईश्वर चेतन है और जीव भी चेतन है तब दोनों में भेद इतना ही है कि जीव अपने कर्मों से बंधा है और ईश्वर बन्धनों से मुक्त हो चुका है। एक कवि ने इसी को अपनी भाषा में लिखा है

आत्मा परमात्मा में कर्म ही का भेद है।
काट दे गर कर्म तो फिर भेद है ना खेद है।

जैन दर्शन कहता है कि ईश्वर और जीव के बीच विषमता का कारण औपाधिक कर्म है। उसके हट जाने पर विषमता टिक नहीं सकती। अतएव कर्मवाद के अनुसार यह मानने में कोई आपत्ति नहीं कि सभी मुक्त ईश्वर बन जाते हैं।

कर्म के मूल कारण दो हैं—राग और द्वेष। राग और द्वेष कर्म के मूल बीज हैं। आसक्ति मूलक प्रवृत्ति को राग और घृणामूलक प्रवृत्ति को द्वेष कहते हैं और आसक्ति रहित शुद्ध प्रवृत्ति तो कर्म बन्धन को तोड़ती है बांधती नहीं। जैन तीर्थंकरों ने मोक्ष प्राप्ति के तीन साधन माने हैं। (१) सम्यक् दर्शन (२) सम्यक् ज्ञान (३) सम्यक् चारित्र।

आत्माओं की संख्या अनन्तानन्त है। यदि उनकी अवस्थाओं पर विचार किया जाय तो मनुष्य देव नरक और तिर्यंच चार प्रकार के प्राणी हैं। इनमें भी अनेक भेद हैं। ८४ लाख योनि के बाद मनुष्य योनि मिलती है यह श्रेष्ठ है। निम्नलिखित नियमों का अवश्य पालन करो।

(१) जिन महान आत्माओं ने अपने को कर्म व संसार के बन्धन से मुक्त कर लिया है और दूसरों को मुक्ति का सच्चा मार्ग दिखाया है तथा जो वीतराग व सर्वज्ञ हैं, अपनी आत्म जागृति के लिए उपासना करना और उनके गुणों का चिन्तन करना है।

(२) सांसारिक विषय भोगों की चाह से रहित एवं ज्ञान ध्यान तप में अनुरक्त मुक्ति के प्रयत्न में लगे हुए सच्चे तपस्वियों का आदर व उनकी स्तुति करना व उनके जैसे बनने की भावना रखना।

(३) सन्मार्ग पर ले जाने वाले पूर्वोक्त गुणसम्पन्न सच्चे शास्त्रों का स्वाध्याय करना और आत्मज्ञान की वृद्धि करना।

(४) अपने चंचल मन और इन्द्रियों पर काबू रखना और इनके दास बनकर विषय भोगों को आदर्श न समझना तथा प्रत्येक प्राणी की रक्षा का हर एक कार्य करते समय ध्यान रखना और अपने द्वारा किसी को कष्ट न पहुँचाने देने की सदैव भावना रखने का प्रयत्न करना।

(५) प्रतिदिन सायं एकान्त में बैठकर आत्म-चिंतन करना और परमात्मा का ध्यान करते हुए वैसे बनने की भावना रखना एवं अपने अच्छे-बुरे कार्यों की समालोचना करते रहना।

(६) दूसरों का जिस प्रकार भी हो भला करना अपने स्वार्थ को त्याग कर भोजन वस्त्र औषधि आदि चीजें बिना बदले की इच्छा के पात्रानुसार वितरण करना। दूसरे के दुःखों को दूर करना और ज्ञान की वृद्धि के साधनों को जुटाना।

मित्रता

कु० कमल जैन

ससार का ऐसा कोई स्थान हो, एव कोई ही काल रहा होगा जिसने सन्मित्र के एक या दो उदाहरण उपस्थित न किये हो। इसका मूल कारण यह है कि मनुष्य ईश्वर का ही सूक्ष्म रूप है। ईश्वर का प्रधान गुण 'प्रेम' है। ससार मे इस दैवी गुण का व्यक्तीकरण करने के लिये वह मनुष्य को माध्यम बनाता है। अब स्पष्ट हो गया होगा कि मित्रता ईश्वर का ही गुण है।

विभिन्न पुरुषो ने 'मित्रता' का आदर्श स्वरूप निश्चित किया है। 'चातक चौंतीसी' मे गोस्वामी जी ने आदेश मित्रता का उदाहरण देते हुए कहा है

> बरसि परुष पाहन पयद, पख करौ टूक टूक।
> तुलसी परी न चाहिये, चतुर चातकै चूक ॥

चातक की मित्रता आदर्श मित्रता का एक उदाहरण है। बादल चाहे कठोर पत्थर क्यो न फेंके किन्तु चातक अपने प्रेम मे खामी न आने देगा। इसी प्रकार चन्द्र और चकोर की मित्रता भी आदर्शवाद से ही प्रेरित है।

कुछ लोग ऐसे भी है जो यह कहगे कि आदश मित्रता का इस प्रकार का उदाहरण केवल काव्य जगत मे ही उपलब्ध हो सकता है। किन्तु ऐसी बात नही है। वास्तविक जगत् मे भी आदर्श मित्रता के ऐसे उदाहरणो की कमी नही जो चातक या चकोर की मित्रता से कुछ कम हो। सीजर और ब्रूटस की मित्रता इसी कोटि मे आती हैं। ब्रूटस सीजर को कत्ल कर देता है। जब सीजर को यह बात मालूम होती है कि ब्रूटस ने उसका कत्ल किया है तब वह मृत्यु को भी सहर्ष स्वीकार करता है। इसी प्रकार जब सीजर मर जाता है तो अन्टोनी अपनी मृत्यु से निर्भय हो वह सब कार्य करता है जो एक आदर्श मित्र को अपने मित्र के लिए करना चाहिये।

अब तक हमने जो भी कुछ कहा है वह आदर्श मित्रता को लक्ष्य मान कर ही कहा है। मित्रता का दूसरा पक्ष भी है जो उपयोगितावाद पर आधारित है। इस प्रकार की मित्रता के मूल में प्रेम का अश तो अवश्य रहता है, किन्तु अधिकाश मे मनुष्य का सामाजिक गुण ही इसका जन्मदाता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अकेले रहना उसको प्रकृति नही। जीवन को अधिक सुलभ बनाने के लिये एव उसमे अधिक सरसता लाने के लिये मनुष्य मित्र की तलाश करता है। कुछ मनुष्य तो पुस्तको को ही अपना मित्र समझ बैठते हैं। क्योकि ये पुस्तकें रूपी मित्र विभिन्न स्थान, काल एव परिस्थिति मे उपयोगी सिद्ध होते हैं। जीवन मे मित्र के महत्व को बताते हुए अग्रेजी मे कहा है —"Sorrow Shared is Sorrow halved and joy shared is joy doubled" यथार्थ मे बात यह है कि मित्ररहित जीवन

कठिन ही नहीं है असम्भव भी है। अथवा मनुष्य या तो भगवान है या पशु है। सांसारिक व्यक्ति के लिए मित्र का महत्व बताते हुए संस्कृत में निम्न श्लोक कहा गया है—

पापान्निवारयति योजयते हिताय।
गोप्यान् गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपत्ति-काले न जहाति ददाति काले
सन्मित्र-लक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥

ऐसे मित्र के मिलने पर चतुर व्यक्ति कभी नहीं छोड़ते हैं। किन्तु कभी-कभी हम ऐसे मित्र भी बनाते हैं, जो ऊपर से हमारी मित्रता जान पड़ती है किन्तु अन्दर से वे हमारे शत्रु से कुछ कम नहीं होते। ऐसे मित्र किसी प्रयोजनवश मित्रता का ढोंग रचते हैं। प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर ये तोताचश्म मित्र हमें छोड़कर चल जाते हैं। ऐसे मित्रों की उपमा कवियों ने भ्रमर और गुलाब की मित्रता से दी है। ऐसे मित्रों से हमें सावधान रहना चाहिये। इसके साथ साथ हमें हर व्यक्ति को मित्र रूप में स्वीकार नहीं करना चाहिये। हम साधारण जान पहचान को मित्रता समझ बैठते हैं और अपने मित्र से अधिक आशा करते हैं। और निराशा के फलस्वरूप हम मित्र नाम को दूषित करते हैं। वास्तव में मित्र में दोष नहीं होता यह तो हमारी समझ का दोष है।

हमने देखा कि मित्रता के दो पक्ष हैं आदर्शवादी और उपयोगितावादी। आदर्श मित्रता ईश्वर के ही प्रधान गुण प्रेम का उदय मात्र है। यदि उपयोगितावादी आधार इस जीवन को सफल बनाता है तो आदर्शवादी मित्रता का आधार परलोक को सफल बनाता है। मनुष्य भक्ति ईश्वर भक्ति का ही एक रूप है।

●

गुरुवर! दीन दयाल थे तारन-तरन जहाज।
ज्ञानी ध्यानी संयमी, श्री रत्न चन्द्र महाराज॥
श्री रत्नचन्द्र महाराज सदा हितकार तुम्हीं थे।
जिन शासन शृंगार, भक्त आधार तुम्हीं थे॥
कहे 'कीर्तिचन्द्र' तुम्हीं थे, विश्व हितंकर।
श्री रत्नचन्द्र महाराज तरण-तारण हे गुरुवर!

राष्ट्र निर्माण में नारी का महत्व

कैलाश चन्द्र मौर्य, कक्षा ११ कला

परामर्श मे मन्त्री-सी है, सेवा मे नित दासी है।
भोजन मे माता के सम है, शयन समय रम्भा-सी है॥
धम कर्म मे सदा सगिनी, शेष सहिष्णु धरा सी है।
छ आदश गुणो से शोभित, नारी सदा पुण्य-राशी है॥

किसी राष्ट्र के निर्माण मे नारी का उतना ही महत्व है, जितना कि मानव का। वास्तव मे स्त्री और पुरुष दोनो से ही मिलकर समाज का निर्माण होता है। राष्ट्र एक गाडी के समान है, जिसके दोनो पहिए मनुष्य और स्त्री हैं। इस राष्ट्र रूपी गाडी को ठीक प्रकार से चलाने के लिए व ठीक रखने के लिए स्त्री व पुरुष दोनो का ही योग्य होना परम आवश्यक है। यदि इनमे से एक भी प्राणी अयोग्य होता है, चाहे पुरुष हो या स्त्री, तो इस राष्ट्र रूपी गाडी का चलना असम्भव हो जाता है।

राष्ट्र-निर्माण मे जितना हाथ पुरुष का है, उससे कही अधिक नारी का है। नारियाँ समाज की सच्ची सेविकाएँ बनकर राष्ट्र के परमाणुओ को अर्थात् समाज मे छोटे-छोटे बच्चो को जन्म देकर और उनको सगठित करके राष्ट्र के निर्माण मे सलग्न हो सकती हैं। पुरुष अगर गृह-स्वामी होता है, तो नारी गृह-स्वामिनी, पुरुष अन्नदाता है तो नारी अन्नपूर्णा। गृहस्थी का अधिकांश भार नारी ही सहन करती है। नारियाँ घर की लक्ष्मी हैं। वे गृहस्थ-जीवन को स्वग के समान भी बना सकती हैं और नरक भी बना सकती हैं। नारी गृहस्थी रूपी नौका की पतवार है। समस्त गृहस्थी का भार नारी के ऊपर होता है। इसलिए उसे गृह-कार्य करने मे कुशल तो होना ही चाहिए साथ ही उनके अन्दर कतिपय अन्य गुणो का होना भी आवश्यक है। उसको भोजन बनाने, सीने-पिरोने, बच्चो का लालन-पालन करने, गृह-व्यवस्था रखने, पतिव्रता होने तथा स्वास्थ्य विज्ञान की जानकारी मे दक्ष होने की परम आवश्यकता है। उनके लिए स्वच्छता प्रेमी होना अति आवश्यक है। उनको अपने बच्चे, घर और अन्य वस्तुओ को बिल्कुल स्वच्छ रखना चाहिए क्योकि स्वच्छता और स्वास्थ्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

नारी मे आचरण की पवित्रता होनी चाहिए। इसकी प्रगति के लिए स्त्री-शिक्षा की परम आवश्यकता है। नारी पत्नी के रूप मे राष्ट्र की परामशदात्री और माता रूप मे राष्ट्र की परम हितैषिणी है।

यदि गृहस्थी का निर्माण ठीक प्रकार से न होगा तो राष्ट्र-निर्माण भी टेढ़ी खीर बन जायेगा। गृहस्थी की सुव्यवस्था ही उसकी आधार-शिला है। नारी माता के रूप मे समाज का कल्याण करती है। उसकी सतान देश तथा समाज का नेतृत्व करती है। इतिहास इस बात का साक्षी है। जैसा शिवाजी

ने अपनी माँ जीजाबाई के प्रभाव से सब मराठा जाति को एक सूत्र में पिरो दिया। नारियों ने अपने बच्चों को उनके बचपन से सुन्दर-सुन्दर कहानियाँ सुनाकर ही अनेक महान् व्यक्तियों की रचना की है।

तात्पर्य यह है कि नारी राष्ट्र-निर्माण में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। पत्नी रूप में सहचरी बनकर उचित परामर्श देती है। गृहस्थी का सुसंचालन करती है। माता रूप में वह शिवाजी जैसे वीर महाराणा प्रताप जैसी संतान पैदा करके समाज संगठन देशोद्धार राष्ट्रोत्थान आदि का पुरुषार्थ करती है। अनेकों पाश्चात्य नारियों ने राष्ट्र-निर्माण में इस प्रकार पर्याप्त योगदान किया है। नारी जाति राष्ट्र-निर्माण के लिए एक आवश्यक अंग है।

मैं पूरे तरीके से आशा करता हूँ कि राष्ट्र का निर्माण करने के हेतु नारियों को समान अवसर प्राप्त हो जैसे आजकल हम देखते हैं कि स्त्रियों को उन्नति करने का अवसर है। पहले जब स्त्रियाँ पर्दे के अन्दर रहती थी लेकिन आज पर्दे से बाहर निकलकर राजनैतिक क्षेत्र में उन्नति कर रही हैं इसी प्रकार समाज देश व राष्ट्र मे नारी उत्थान की भी बहुत आवश्यकता है।

●

सौजन्य विनम्रता की उदारता का,
था रग रग में रंग भरा।
मन मत्सर स्पर्धा या हठ का
कहु चिह्न था नहीं रहीं जरा॥

जैनभूमि के स्नातक थाती,
किन्तु नहीं कट्टरता थी।
आत्मराम के वरणे धर्म की
श्रद्धा की ही अविचलता थी॥

—मुनि कीर्ति

धर्म और विज्ञान

हरदेव राय शर्मा, कक्षा १० स

आज का प्रत्येक मानव विज्ञान की ओर अधिक आकर्पित है। यहाँ तक कि विज्ञान की चकाचौंध मे वह धम का भी विरोधी वन वैठा है। यदि हम इस वात पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करें, तो यह निश्चय रूप से कहा जा मकता है कि धम के मूल मिद्धान्त ही नहीं, अपितु हमारे प्रचलित रीति-रिवाजो मे भी प्राय अनेको ऐसे हैं जो विज्ञान की कसौटी पर कमे जाने पर खरे ही उतरते हैं।

हमारा धर्म "पेड पौधों मे भी जीव" मानता ह। इसी कारण रात्रि मे पेड-पौधो को छूना पाप समझा जाता है। कुछ समय पहले कोई वैज्ञानिक इम सिद्धान्त को स्वीकार करने के लिए तैयार नही थे, किन्तु वैज्ञानिक सर जगदीश चन्द्र वोस ने अपने प्रयोगो मे मिद्ध कर दिया। अव यह निश्चित सिद्धान्त वन चुका है कि पेड-पौधो मे भी जीव होता है और अब तो हमारी शिक्षा-प्रणाली मे उस विज्ञान की शिक्षा दी जाने लगी है। इस विज्ञान द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि पेड-पौधे हमारी भाति सोते-जागते हैं तथा दु ख-सुख का अनुभव करते हैं।

हमारे धम मे गगा-जल को अत्यन्त पवित्र माना गया है। कहा जाता है कि इस जल को वर्पों तक रखा जाय तव भी नही खराव होता, और यह एक वास्तविकता भी है। वैद्यक शास्त्र का कहना है कि यह जल अनेक रोगो का नाशक है। इसका सेवन करने से स्वास्थ्य की वृद्धि होती है।

कुछ समय हुआ देश मे महामारी का अत्यन्त प्रकोप हुआ। उस समय काशी मे अनेक व्यक्ति गगा मे ही शवो को वहा देते थे। प्रमुख वैज्ञानिक डाक्टर हैंकिन्स ने देखा कि गगा मे वहते सभी शवो के रोग कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार अनेको वैज्ञानिको ने अपने प्रयोगो से सिद्ध कर दिया कि गगा का जल रोगनाशक है। सुप्रमिद्ध वैज्ञानिक डा० डेरेल ने गगा-जल के प्रयोग से अनेक औपधियो का आविष्कार किया है।

हमारे धम मे "तुलसी" के पौधे को सर्वश्र महत्व दिया गया है। हिन्दू-घरो मे महिलाएँ प्रात तुलसी के पौधे की पूजा करती हैं। आज के पढे-लिखे लोग इसकी हँसी उडाते हैं किन्तु सम्भवत उन्ह ज्ञात नही है कि आज के विज्ञान ने "तुलसी के पौधे" के महत्व को भलीभाँति प्रतिपादित कर दिया है। विज्ञानाचार्य सर जगदीश चन्द वोस ने कहा है कि "तुलसी" के ससर्ग मे आई हुई सुवासित वायु जहाँ तक फैलती है, वहाँ तक के मलेरिया, हैजे आदि रोग के कीटाणु स्वय नष्ट हो जाते हैं। इसे "ईश्वरीय" देन कहा जा सकता है। इतना ही नही, यहाँ तक सिद्ध हो चुका है कि तुलसी, कफ, स्वास, मूत्रविकार, निमोनिया आदि की अचूक दवा है। इसके पत्ते मे सर्प के विप को चूसने की अद्भुत शक्ति है। केवल भारत मे ही नही पेरिस जैसे नगरो मे ऐसे कितने ही चिकित्सालय खुल गए हैं, जहाँ तुलसी के पौधे

से समस्त इलाज किया जाता है। डाक्टर पी डब्ल्यू रैले ने लिखा है कि स्वास्थ्य के वास्ते तुलसी अमृत समान है। उपर्युक्त सभी उदाहरणों से प्रतीत होता है कि हमारा धर्म विज्ञान का विरोधी नहीं है। अन्य दूसरे उदाहरणों से भी हम इस सम्बन्ध में बहुत कह सकते हैं।

हमारे मन्दिरों मे "शंख" का उपयोग किया जाता है। शंख बजाना धर्म का एक अंग माना जाता है। अब विज्ञान ने भी यह प्रमाणित कर दिया कि शंख की ध्वनि से रोग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं और वायु शुद्ध हो जाती है।

बर्लिन विश्वविद्यालय ने अनुसन्धान करके यह सिद्ध कर दिया है कि शंख की ध्वनि की लहरें समस्त रोग दूर कर देती हैं तथा रोग के कीटाणु मारने की तो यह सबसे सस्ती औषधि है।

मन्दिरों में "घंटे तथा घड़ियाल की आवाज के बारे में वैज्ञानिकों का कहना है कि यह 'घ्रम प्रवाह' स्नायु रोगों के लिए अत्यन्त लाभप्रद है। प्रो रेले तथा अन्य वैज्ञानिकों ने भी इसके सम्बन्ध में पर्याप्त अनुसन्धान किये हैं।

हमारे धर्म में गाय को "माता" कहा गया है। शास्त्रों में लिखा है कि गाय के स्पर्श मात्र से आयु की वृद्धि होती है। उसे घास देने से समस्त रोगों से छुटकारा मिल जाता है। आज विज्ञान ने भी गाय के महत्व को स्वीकार कर लिया है। उनके कथनानुसार गौ-दुग्ध अमृत समान है। गाय का गोबर तथा मूत्र आदि भी अत्यन्त लाभप्रद हैं। गोबर तथा गोमूत्र से अपवित्रता के साथ रोग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। इसी कारण घरों में फर्श तथा रसोई आदि भी गोबर से लीपा जाता है। विज्ञान के कथना-नुसार गोबर में फास्फोरस एसिड चूना मैग्नेशियम आदि विद्यमान हैं। गौ-मूत्र भी एक रसायन है। विज्ञान से ही सिद्ध हो गया है कि गोमूत्र में फास्फेट पोटाश लवण तथा नाइट्रोजन विद्यमान हैं।

यही नहीं हमारे अन्य छोटे-छोटे सिद्धान्त भी विज्ञान द्वारा सिद्ध किये जा चुके हैं।

उदाहरण तथा में मृगचर्म बिछाना व्याघ्र-चर्म पर बैठना ब्रह्म मुहूर्त में उठना। दिन में न सोना ग्रहण के समय में भोजन न करना सोते समय उत्तर दिशा की ओर मुख करके सोना कुओं पर दीपक (दी के) जलाना आदि प्रथाएँ भी विज्ञान द्वारा लाभप्रद सिद्ध हो चुकी हैं। वह समय दूर नहीं जब वैज्ञानिक यह देखने को बाध्य हो जायेंगे कि हमारा धर्म विज्ञान के सर्वानुकूल है।

अतः आज के नवयुवक जो विज्ञान के नाम पर धर्म से घृणा करने लगे हैं वे भूल कर रहे हैं। उन्हें अपनी भूल को सुधारना चाहिए और धर्म के प्रति उचित श्रद्धा रखनी चाहिए।

★

विधि का क्रूर अट्टहास

सुषमा पाठक, द्वितीय वर्ष

अजय घोष शहर के सुप्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उनकी एक-मात्र सन्तान शर्मिला ही थी। इकलौती सन्तान होने के कारण वह घोष दम्पत्ति के लिए जीवन-ज्योति स्वरूप थी। अत वे उसे इच्छाओ के समान पाल रहे थे। इस प्रकार माता-पिता के लाड-प्यार के बीच आकर्षक बाल-क्रीडाएँ करती हुई वह यौवनावस्था मे प्रविष्ट हुई। ब्रह्मरूपी अदृश्य शिल्पकार के हाथो से कालरूपी चाक पर चढकर वह दिन-व दिन रूपसी होती जा रही थी। शशिमुख पर वसन्त-बहार तथा उर्मि सी मुस्कान लिये वह ज्यो-ज्यो बडी होती जा रही थी त्यों-त्यो घोष बाबू के लिये चिन्ता बनती जा रही थी। इसका मूल कारण था—धनाभाव के कारण शर्मिला के लिए अच्छे घर तथा वर का न मिल पाना। परन्तु शर्मिला के सर्व गुण सम्पन्न होने के कारण उन्हे पूर्ण आशा और विश्वास था कि उनकी बेटी अवश्य किसी सम्पन्न घर की गृहलक्ष्मी कहलाएगी। इसी आशा और विश्वास का बल लेकर वह निरन्तर वर की खोज मे प्रयत्नशील रहे, अन्त मे उन्हे सुशिक्षित, स्वस्थ, कुलीन एव रूप-धन-सम्पन्न अतुल नामक नवयुवक शर्मिला के वर बनने योग्य मिल ही गया।

पाँच अगस्त का दिन था, घोष बाबू का घर अगणित बल्बो के प्रकाश से प्रकाशित हो रहा था तथा द्वार पर मगल सूचक तोरण बधे हुए थे। अतिथियो की चहल-पहल विवाहोत्सव की शोभा मे चार चाँद लगा रही थी। घोष बाबू भी बेहद प्रसन्न तथा कार्य-व्यस्त दिखाई दे रहे थे। प्रसन्न होते भी क्यो नही, आज ही तो उनकी चिरसचित कल्पना के मूर्त होने का दिन है। इसी दिन की तो वह न जाने कब से प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी चहल-पहल और रगीनी के बीच वर रूप में सजा-सवरा अतुल शहनाइयो की मधुर तान लेकर आया। द्वार पर अगवानी होने लगी। एक के बाद एक सभी रस्मे अदा हुई और मगल गीतो तथा विवाह के पवित्र मन्त्रो के बीच अतुल और शर्मिला अग्नि को साक्षी मान कर पावन दाम्पत्य सूत्र मे बँध गए।

घडी-घडी, पल-पल बीतता गया और विदा की दारुण बेला आ गई। घोष दम्पत्ति पुत्री-बिछोह के कारण भारी मन से विदा की तैयारियां करने लगे। वे दोनो ही दुखी थे क्योकि वही बेटी जो उनके आँगन की शोभा थी, आँखो की ज्योति थी, और घर की बुलबुल थी, पराई होने जा रही थी। परन्तु वे यही सोच कर सन्तोष कर रहे थे कि लडकी तो पराई अमानत होती है। अत इसे तो जाना ही है। इसी प्रकार मन को धैर्य बँधा कर दोनो ने आशीर्वाद सहित शर्मिला को विदा दी।

माता-पिता से बिछुडने के कारण अनमनी सी शर्मिला नये घर मे आई। उसे वहाँ पर सबका ही स्नेह और आदर मिला। शर्मिला के जीवन मे वसन्त की बहार सी आगई थी क्योकि नारी मे तो प्रेम और सम्मान की तीव्र तृष्णा होती है। शर्मिला की यह तृष्णा शान्त हो चुकी थी। प्रत्येक बगिया में वसन्त

बहार के पश्चात् पतझड़ का झोंका आता ही है। इसी प्रकार धर्मिला और अतुल के हँसते-खिलते चमन में दुःख का झोंका आया और धर्मिला को ज्वर ने आ घेरा। घर के सभी सदस्यों ने उसकी अथक सेवा शुश्रूषा की। सेवा-शुश्रूषा से धर्मिला के ज्वर से जीर्ण हुए शरीर में एक बार पुनः चेतना सी आई। जिस प्रकार दीपक बुझने से पहले तेज चमक जाता है तत्पश्चात् बुझ जाता है इसी प्रकार धर्मिला के साथ भी हुआ और वह ज्वर से संघर्ष करते-करते एक दिन परास्त हो ही गई। अतुल अथक प्रयास करने पर भी अपनी जीवन-संगिनी को न बचा सका। ईश्वर की हस्ती के आगे किसकी चल सकती है। शरद् पूर्णिमा के दिन धर्मिला के शरीर रूपी पिंजरे से प्राण पखेरू उड़ गया जिसे कोई न पकड़ पाया। वह अतुल धर्मिला के वियोग में शोक विह्वल था। शोकातुर अतुल को ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो धर्मिला की आत्मा रोते हुए कराहती हुई कह रही हो—मैं वह चमन हूँ जो पूरी तरह से खिलने से पहले ही उजड़ गई तुम क्यों रोते हो पुजारी। वायु का वेग न होने से घर के पेड़ों के पत्ते भी शान्त थे। अतः एक निस्तब्धता छाई हुई थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो धर्मिला की आत्मा पत्तों से शान्त होने के लिए मना कर रही हो और कह रही हो— 'मैं वह रस भरी बदरी हूँ जो बिन बरसे ही चल दी तुम गमगीन न बनो पत्तो।'

धर्मिला अतुल के जीवन में बहार बन कर आई और बयार बन कर उसकी सम्पूर्ण खुशियों को सब साथ बटोर कर ले गई।

शरद्-पूर्णिमा की शुभ्र ज्योत्स्ना में सौन्दर्य का सागर ताज अपने सौन्दर्य गर्व से सिर ऊँचा किये मुस्करा रहा था जिसको देख कर कवियों की वाणी मुखरित हो रही थी। किशोरों की तूलिकाएँ बहक रही थी लेखकों की लेखनियाँ मचल रही थीं झूम कर झूमने के लिये। कैमरों की फ्लैश लाइटें चमक रही थी उसकी आकर्षक छवि को उतारने के लिए चारों ओर रंगीन वातावरण था।

परन्तु दूसरी ओर पूर्णचन्द्र की निर्मल चांदनी में ताज-सा भव्य सौन्दर्य चिता की लपलपाती लपटों में धू-धू कर जल रहा था जिसको देख कर कवि भी मूक हो रहे थे। लेखनियाँ और तूलिकाएँ भी सहमी सी जाती थी और कैमरे भी इस दारुण दृश्य की छवि उतारने से झिझक रहे थे चारों ओर एक गमगीन वातावरण था। दूर देखने और सुनने वालों के मुँह से सहसा यही निकलता था "कैसा है विधि का क्रूर अट्टहास।

परम पूज्य पुनीत महान् थे ।।
'रत्न' गुरु गुण रत्न समान थे ।।
परम पावन और पवित्र गुरु—
जगत मित्र गुणों की खान थे ।।

—मुनि कीर्ति

श्री रत्नचन्द्र जी महाराज

सुरेश कुमार जैन

जीवन परिचय

श्री स्थानकवासी जैन सघ के इन कमनीय कलाधर का जन्म श्री गगाराम क्षत्री के यहाँ स० १८५० को हुआ था। इनकी माता का नाम स्वरूपा देवी था। ये जयपुर के तातीजा नामक गाँव के रहने वाले थे। आपके माता-पिता ने आपका नाम बहुत सोच समझ कर रखा था। जब 'रत्न' कुछ बडे हुए तब ये एक दिन दो बैलो को लेकर पहाडी की ओर निकल पडे। रास्ते मे ये कुछ बच्चो के साथ खेलने लगे। इतने मे बैल कहीं निकल गये। बहुत ढूढ़ने पर बैल मिल गये लेकिन जब ये रास्ते मे लौट कर जा रहे थे, तो सिहो ने इन्हे घेर लिया ये पेड पर चढ़ गये पर सिह बैलो को खा गये। चूकि ये कर्त्तव्य न निभा सके थे, इसलिये डर के कारण घर नही गये लेकिन अपने सम्बन्धी के यहाँ नारनौल चले आये जहाँ पर ये अपनी तेजस्विता से पूज्य श्री हरजीमल की सेवा मे आ गये। उधर माता-पिता पुत्र के न होने से दुःखी हो गये थे। परन्तु रत्नचन्द्र जी ने पत्र डालकर उन्हे बुलाया और माता-पिता से कहा कि वे श्री हरजीमल के साथ रहेगे और दीक्षा धारण करेंगे। इस पर माता-पिता ने बहुत समझाया, डराया, पर ये न डिगे और अपने वचनो पर अडिग रहे। बालक की रुचि तथा निर्भीकता देखकर माता-पिता ने इन्हे हरजीमल के द्वारा शिक्षा ग्रहण करने को सौंप कर चले गये।

दीक्षा

जब श्री रत्नचन्द्र अपनी तीव्र बुद्धि से शीघ्र ही शिक्षा-निपुण हो गये तो इनके माता-पिता ने श्री हरजीमल से कह कर स० १८६२ मे इन्हें दीक्षा दिला दी थी, जब इनकी उम्र केवल बारह-तेरह वर्ष की थी।

शिक्षा तथा शास्त्रो का अध्ययन

दीक्षा धारण करने के बाद "रत्न जी" ने उस युग के विख्यात तत्ववेत्ता पण्डित-प्रवर श्री लक्ष्मी चन्द्र जी महाराज के प्रभाव मे रहकर दर्शनशास्त्र के गम्भीर तत्वो के साथ-साथ ज्योतिष शास्त्र का भी गहरा अध्ययन किया तथा प्रचलित सभी जैन भाषाओ को सीखा तथा अब ये अपनी विद्वत्ता से प्रवचन देने लगे थे। इस प्रकार "रत्न चन्द्र" जी ने कर्म-क्षेत्र मे अपना पदार्पण किया।

भ्रमण तथा साहित्य सर्जन

महापुरुषो का स्वभाव होता है कि वह ज्ञान अपनी कोठरी तक सीमित नही रखते हैं। इसी प्रकार समाज की भलाई तथा मानव जीवन के कल्याण के लिये रत्नजी जगह-जगह पर घूमे और धर्मोपदेश

किया। श्री रत्न चन्द्र जी ने अपनी विशाल ज्ञान राशि को पंजाब उत्तर प्रदेश राजस्थान और मध्यप्रदेश में प्रचार कर अपने ज्ञान को बिखेर दिया। तभी इन्होंने पूज्य श्री अमरसिंह तथा आत्माराम जी महाराज जैसे महामुनियों को ज्ञान दिया और साहित्य-सर्जन किया तथा अपनी गूंजती प्रबल जादुमी वाणी से प्रवचन देकर प्राणियों को मन्त्रमुग्ध कर दिया। जयपुर में श्री रत्नचन्द्र जी ने विद्वत्ता से तथा जयपुर में श्री जीतमल जी से वाद-विवाद तथा शास्त्रचर्चा में अपनी प्रबल वाणी तथा संवेगी मुनि को पराजित कर विजय की श्री प्राप्त की। इनके अन्दर सभी अच्छे गुण विद्यमान थे। उन्होंने अहिंसा सत्य, धर्म शील आदि की शिक्षाएँ फैलायी। मोक्ष का मार्ग बताया साहित्य का निर्माण किया। श्री रत्नचन्द्र एक दीपक के समान थे जो भूले भटकों को राह दिखाते थे वे अन्य बुझे हुए दीपकों को भी प्रकाशमय बना गये। जो भूले भटको का मार्ग दर्शन करेंगे।

आगरा आगमन—

श्री रत्नचन्द्र इस प्रकार ज्ञान फैलाते आगरे के मनुष्यों के असीम भाग्य से वे आगरा में सं० १९९२ को पधारे। उनके यहाँ आते ही यहाँ के लोग बड़े हर्षित हुए और इन्हें यह पौषध शाला प्रदान किया गया जो पहले मन्दिर बन रहा था। यहीं पर स्थायी रूप से रहकर उन्होंने समाज की बहुत भलाई की जो अमर रहेगी।

स्वर्गवास—

हमारे पूज्य गुरुदेव अपना सारा जीवन धर्म-पालन तथा जीवन-कल्याण में लगा गये। उन्होंने समस्त संसार को राह दिखायी और भविष्य में मानव-कल्याण के लिये स्थानक वासी जैन संघ का निर्माण करके आगरा की पौषधशाला में सं० १९२१ को स्वर्गवासी बन गये।

श्रद्धाञ्जलि—

ऐसी महान आत्मा मर कर भी हमेशा जीवित रहेगी। उनकी कृपा से हम आज खुशहाल हैं। उनकी यादगार में हमने धर्म विद्यालय खोले हैं जो बालकों को धर्म-शिक्षा देकर उनका कल्याण करेंगे। ऐसी दिव्य आत्मा को हम सभी अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

●

रत्न गुरुवर आपको
वन्दन बारम्बार।
पुष्प भक्ती कर, कीजिए—
अभिनन्दन स्वीकार॥

—मुनि कीर्ति

श्री रत्नचन्द्र जी महाराज

सुरेश कुमार जैन

जीवन परिचय

श्री स्थानकवासी जैन सघ के इन रमनीय कलाधर का जन्म श्री गगाराम क्षत्री के यहाँ स० १८५० को हुआ था। इनकी माता का नाम स्वरूपा देवी था। ये जयपुर के तातीजा नामक गाँव के रहने वाले थे। आपके माता-पिता ने आपका नाम बहुत सोच समझ कर रखा था। जब 'रत्न' कुछ बडे हुए तब ये एक दिन दो बैलो को लेकर पहाडी की ओर निकल पडे। रास्ते मे ये कुछ बच्चो के साथ खेलन लगे। इतने मे बैल कही निकल गये। बहुत ढूढने पर बैल मिल गये लेकिन जब ये रास्ते मे लौट कर जा रहे थे, तो सिहो ने इन्हे घेर लिया ये पेड पर चढ गये पर सिह बैलो को खा गये। चूकि ये कर्त्तव्य न निभा सके थे, इसलिये डर के कारण घर नही गये लेकिन अपने सम्बन्धी के यहाँ नारनौल चले आये जहाँ पर ये अपनी तेजस्विता से पूज्य श्री हरजीमल की सेवा मे आ गये। उधर माता-पिता पुत्र के न होने से दुःखी हो गये थे। परन्तु रत्नचन्द्र जी ने पत्र डालकर उन्हें बुलाया और माता-पिता से कहा कि वे श्री हरजीमल के साथ रहेगे और दीक्षा धारण करेंगे। इस पर माता-पिता ने बहुत समझाया, डराया, पर ये न डिगे और अपने वचनो पर अडिग रहे। बालक की रुचि तथा निर्भीकता देखकर माता-पिता ने इन्हे हरजीमल के द्वारा शिक्षा ग्रहण करने को सौंप कर चले गये।

दीक्षा

जब श्री रत्नचन्द्र अपनी तीव्र बुद्धि से शीघ्र ही शिक्षा-निपुण हो गये तो इनके माता-पिता ने श्री हरजीमल से कह कर स० १८६२ मे इन्हें दीक्षा दिला दी थी, जब इनकी उम्र केवल बारह-तेरह वर्ष की थी।

शिक्षा तथा शास्त्रों का अध्ययन

दीक्षा धारण करने के बाद "रत्न जी" ने उस युग के विख्यात तत्ववेत्ता पण्डित-प्रवर श्री लक्ष्मी चन्द्र जी महाराज के प्रभाव मे रहकर दर्शनशास्त्र के गम्भीर तत्त्वो के साथ-साथ ज्योतिष शास्त्र का भी गहरा अध्ययन किया तथा प्रचलित सभी जैन भाषाओ को सीखा तथा अब ये अपनी विद्वत्ता से प्रवचन देने लगे थे। इस प्रकार "रत्न चन्द्र" जी ने कर्म-क्षेत्र मे अपना पदार्पण किया।

भ्रमण तथा साहित्य सर्जन

महापुरुषो का स्वभाव होता है कि वह ज्ञान अपनी कोठरी तक सीमित नहीं रखते हैं। इसी प्रकार समाज की भलाई तथा मानव जीवन के कल्याण के लिये रत्नजी जगह-जगह पर घूमे और धर्मोपदेश

हमारी प्रगति के बाधक-तत्त्व

शैलेन्द्र कुमार जैन

आज अपना देश आजाद है और अब हम अपने लिये, अपने समाज तथा देश के लिये सोचने, समझने तथा करने के लिये स्वतन्त्र है। हमे यह आशा थी कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात्, जनसाधारण का एक नया ही दृष्टिकोण हो जायगा और वे एक स्वतन्त्र और गौरवशाली देश के जिम्मेदार नागरिक के समान, जिसका कि अपने राष्ट्र के निर्माण मे पूर्ण योगदान देने का अधिकार है, सोचने और व्यवहार करने लगेंगे। लेकिन आज स्वतन्त्रता के करीब १७ वर्ष पश्चात् भी इस परिवर्तन के कोई लक्षण नही दिखाई देते हैं।

मैं अपने इस लेख द्वारा उन छोटी-छोटी बातो पर प्रकाश डालना चाहता हूँ, जिनके कारण आज हमारा साधारण दैनिक जीवन, सामूहिक नागरिक जीवन के रूप मे व्यतीत करना अति कठिन हो गया है।

भारतवर्ष एक सुन्दर और महान् देश है, जो अपनी प्राचीन संस्कृति एव सभ्यता के लिये प्रसिद्ध है। इस देश मे बडे-बडे बुद्धिमान् एव महापुरुष भी जन्मे हैं, जिनके लिये देश को अपने ऊपर गर्व है। लेकिन किसी भी देश की शक्ति या कमजोरी का पता देश के औसत नागरिक की शक्ति एव कमजोरी से ही लगाया जा सकता है ताकि उस देश मे जन्मे कुछ गिने-चुने महान् पुरुषो से जन-साधारण मे आज नागरिक ज्ञान का बहुत ही अभाव हो गया है। वह पूर्ण रूप से स्वार्थी और व्यक्तिवादी हो गया है, उसका क्षितिज, उसके तथा उसके परिवार तक ही सीमित रहता है। उदाहरण के लिये—पैदल चलने वाले को यह पता ही नही कि सडक के किस ओर चलना चाहिए। टिकट घर हो या बस स्टैंड, सिनेमा हो या राशन की दुकान, कही भी जाइये, आपको हर एक जगह खीचातानी दिखाई देगी। लाइन बना कर अपनी बारी की प्रतीक्षा करने का किसी मे धैर्य नही। हर व्यक्ति चाहता है कि पहला नम्बर उसी का हो। सडको पर, फुटपाथ पर, बाग मे या पार्क मे, या रेलो मे, हम छिलके, पत्ते, कागज के टुकडे, तथा खाने की भूठन आदि जहाँ-तहाँ फैंक देते हैं और इस बात को बिलकुल भूल जाते हैं कि ये स्थान हमारी अपनी निजी जायदाद नही हैं, बल्कि सभी के प्रयोग के लिये हैं।

लोग अपने घर को तो रोजाना साफ रखते हैं, लेकिन अपने दरवाजे के बाहर गली मे कूडा कर-कट फैंकते समय इस बात को बिलकुल नही सोचते कि उनके ऐसा करने से पूरे मोहल्ले तथा स्वय उनके घर के आस-पास की वायु खराब हो जायगी और बीमारी भी फैलने का डर हो जायगा। किसी सार्वजनिक सभा मे जाना हो तो हम कभी समय पर नही पहुँचेंगे। वहाँ देर से आने वाले को लज्जा नही होती, बल्कि समय पर आने वाला बेवकूफ कहा जाता हैं, जो 'कि अपना कीमती समय नष्ट करता है।'

सक्षिप्त इतिहास एव प्रगति रिपोर्ट

जायदाद विभाग श्री एस० एस० जैन सघ लोहामडी आगरा

(श्री सर्राफी बाबू जैन मैनेजर)

श्री अग्रवाल ओसिया जैन समाज के दस बीसो एवं पूर्वजो के सद्प्रयत्नों से समाज की पंचायती जायदादो मे समय-समय पर वृद्धि होती रही है जिनकी व्यवस्था एवं प्रबन्ध समाज के उत्साही और लगनशील व्यक्ति सदैव से करते रहे है। सन् १९४६ मे श्री एस एस जैन सघ की स्थापना हुई तब से श्री अग्रवाल ओसिया जैन समाज की सभी जायदादो एव पंचायती चल व अचल सम्पत्ति का श्री एस एस जैन सघ लोहामडी आगरा मालिक हुआ। श्री संघ की ओर से जायदाद विभाग के प्रबन्ध के लिये एक मैनेजर की नियुक्ति होती है जो कि समाज की सभी जायदादो की देखरेख एवं प्रबन्ध व्यवस्था करते है। वर्तमान समय मे श्री एस एस जैन सघ लोहामडी आगरा के अन्तर्गत निम्नलिखित जायदादें है जिनका परिचय निम्न प्रकार है —

१ श्री जैन भवन इसकी भीतर की जमीन चौधरी परिवार ने दानस्वरूप दी थी और आगे की जमीन समाज द्वारा खरीदी गई जिस पर आगे दुकानें बनवाई गई। अन्दर के भाग मे मूर्ति की स्थापना करके मन्दिर बनवाने का विचार था किन्तु सौभाग्य से गुरुदेव श्री रत्नचन्द जी महाराज का लोहामंडी मे पदार्पण हुआ। गुरुदेव तीन दिन तक बगीचे के बाहर नीम के पेड के नीचे ही ठहरे वहाँ से उन्होने समाज के लोगो मे जैन धर्म के प्रति जागृति पैदा की। फलस्वरूप समाज के कुछ अग्रणी महानुभाव पूज्य गुरुदेव को यहाँ लाये और उन्ही की प्रेरणा से यहाँ मन्दिर के बजाय श्री जैन पोषधशाला भवन बनाया गया। इसका सदर दरवाजा एव पौली का निर्माण ला नाथूराम ठाकुरदास बनीराम जी गुप्ता ला लाल जीमल द्वारा अपने व्यय से ई १९२१ वि मे करवाया गया।

इसमे व्याख्यान हॉल श्री सेठ रतनलाल जी के पूज्य पिता श्री लाला भेरूमल जी जैन ने अपने सुपुत्र श्री रतनलाल जी जैन के शुभ विवाह के उपलक्ष मे बनवाया था। इस व्याख्यान हॉल का संगमरमर का फर्श समाज के चन्दे से बनवाया था।

श्री पोषधशाला मे ऊपर एक भव्य एव विशाल हॉल तथा महासभा की वेदी आदि सब श्री सेठ रतनलाल जी जैन की देखरेख मे बनवाये गये। इस हॉल के शाखिये व गाहस्ट श्री सीताराम जी जैन ने भेंट किये थे। यह हॉल जैन संस्कृति व जैन गुणों का अनूठा दिग्दर्शन कराता है जो कि अपने ढग का अद्वितीय है। बाहर से जो भाई यहाँ आते है और इसे देखते है तो वे बडे प्रसन्न मन होकर धर्म

धम का पालन होता है। सम्पूर्ण समाज के हित की जगह उसे केवल अपनी व्यक्तिगत मुक्ति की ही चिन्ता रहती है। वह अपने निजी मामलो मे, खाने कमाने की फिक्र मे, अपने ऐशोआराम की फिक्र मे पडकर, अपने सामाजिक कर्त्तव्यो और उत्तरदायित्वो से मुँह मोड लेता है। इससे न केवल उसके अन्दर दूसरो के साथ मिलकर काम करने की इच्छा ही खत्म हो जाती है, वल्कि उसकी सामाजिक कार्यक्षमता भी क्षीण हो जाती है, जो कि पूरे राष्ट्र को क्षति पहुँचाती है।

आज आवश्यकता है कि हम इन छोटी-छोटी बातो को ध्यान मे रखें, इन्ही से हमारा और हमारे राष्ट्र का चरित्र बनता है। यदि हम इनकी उचित प्रतिष्ठा नही करते तो हमारा चरित्र भी उन्नत नही होगा। आज आवश्यकता जाति-भेद और प्रान्तीयता की दीवारें खडी करने की नहीं है, जो कि मनुष्य को मनुष्य से अलग करती है। आज आवश्यकता अपने देश के अन्दर ही प्रान्तीय विभाजन की नहीं है वल्कि आवश्यकता है कि सब लोग, चाहे वे किसी भी जाति के हो, किसी भी प्रान्त के हो, चाहे उनकी कोई भी भाषा हो या कोई भी खानपान, अपनी व्यक्तिगत इच्छाओ और स्वार्थों को न देखकर आज देश की पुकार को सुनें, और सब एक होकर उसकी आवाज मे अपनी आवाज मिलाकर आकाश को गुंजित कर दें। लेकिन यह तभी हो सकता है, जब हम अपने अन्दर घुसे हुए निजी स्वार्थ के कीडे को बाहर निकाल कर फेंक दें। आज समय अपने निजी स्वार्थ मे लिप्त रहने का नही, वल्कि राष्ट्र के स्वार्थ मे लिप्त होने का है। कही ऐसा न हो कि हम अपने निजी स्वार्थ को पूरा करने मे लगे रह जायँ और जो आजादी हमने बडे संघर्ष और बलिदान के पश्चात् ली है, वह फिर छिन जाय।

जिस प्रकार शरीर के सारे अवयव एक साथ मिलकर जीवनशक्ति को बनाये रखने के लिये काम करते हैं, जिससे कि बदले मे उनको—स्वय का जीवन मिलता है, उसी प्रकार से हम सबको, स्त्री-पुरुषो को, सबके फायदे के लिये, एक साथ मिलकर काम करने और जीवन व्यतीत करने का लक्ष्य बनाना चाहिये। सबके भले पर हमारा अपना फायदा भी निर्भर करता है। इस लक्ष्य को अपना कर ही हम अपने देश में उस सुख और समृद्धि को फिर से ला सकते हैं, जो कभी भूतकाल में विद्यमान थी।

★

प्रगति रिपोर्ट श्री एस० एस० जैन संघ लोहामण्डी, आगरा

आज से लगभग १२ वर्ष पूर्व श्रद्धेय पूज्य पाद गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज की असीम कृपा से श्री अग्रवाल वैश्य मोहिया समाज लोहामण्डी आगरा ने जैन धर्म अंगीकार किया था। हमारी समाज में समय-समय पर अनेक गण्यमान्य धर्म समाज एवं जाति-सेवी महान पुरुष उत्पन्न होते रहे हैं, जिनमें से अपनी स्मृति के आधार व पूर्वजों के कथनानुसार सर्व स्वर्गीय श्री चौधरी मूलचन्द जी, चौधरी मगन लाल जी, श्री नाथूराम जी, श्री मथुरामल जी, श्री प्रताप चन्द जी, श्री मिट्ठनलाल जी, श्री प्यारेलाल जी, श्री बाबूलाल जी जैन आदि प्रमुख थे।

इनके बाद स्व. श्री हजारी लाल जी सभापति बहुत ही प्रतिष्ठित समाज-सेवी एवं धर्म-सेवी हुए हैं जो कि आज तक सभापति नाम से पुकारे जाते हैं। उनके बाद वर्तमान युग में देव धर्म एवं जाति-सेवी स्व. श्री सेठ रतनलाल जी जैन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्होंने समाज की बागडोर अपने हाथ में लेकर अपने जीवन का अधिकांश समय तन मन धन से समाज-सेवा में ही लगाया। श्री कल्याणदास जी जैन मैनेजर तथा श्री प्रभूदयाल जी जैन कोषाध्यक्ष के प्रयत्नों से भी रत्नमुनि जैन कन्या विद्यालय की व्यवस्था कई वर्षों तक सुचारु रूप से होती रही।

वैसे तो स्व. श्री सेठ जी तथा अन्य उत्साही महानुभावों की देख रेख में समाज की संस्थाएँ सुचारु रूप से चल ही रही थीं किन्तु इनको अधिक विकसित करने एवं आगे बढ़ाने के लिये पूरे समाज के सहयोग एवं संगठन की आवश्यकता अनुभव की गई। श्रद्धेय पूज्य श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज एवं उपाध्याय कविरत्न श्री अमर चन्द्र जी महाराज की प्रेरणा एवं शुभ आशीर्वाद से उसकी पूर्ति के हेतु ११ जनवरी १९४९ में श्री एस. एस. जैन संघ की स्थापना हुई। इसके लिये सम्पूर्ण समाज की एक जनरल मीटिंग बुलाई गई जिसमें पंचायती सभी जायदादों के ट्रस्टियों ने सर्व सम्मति से श्री एस. एस. जैन संघ को जायदादों का पूर्ण अधिकार दे दिया जिसके प्रथम सभापति श्री सेठ रतनलाल जी जैन निर्वाचित हुए।

श्री एस. एस. जैन संघ की स्थापना होने पर समाज की सभी संस्थाएँ, चल व अचल सम्पत्ति का स्वामी श्री एस. एस. जैन संघ स्वीकार किया गया। श्री एस. एस. जैन संघ के अन्तर्गत तत्कालीन श्री रत्नमुनि जैन धर्मशाला, श्री रत्नमुनि जैन कन्या पाठशाला, श्री वीर पुस्तकालय, श्री जैन भवन, श्री जैन ट्रस्ट, आइरन मार्ट तथा धर्मादा विभाग आदि सभी संस्थाएँ एवं विभाग सम्मिलित हो गये। श्री संघ का एक लिखित विधान बनाया गया जिसके अनुसार समाज के १ वर्ष से ऊपर आयु के लोगों को सदस्य बनाकर साधारण सभा बनाई गई और विधान के अनुसार साधारण सभा द्वारा निर्वाचित १५ सदस्यों की एक कार्यकारिणी श्री एस. एस. जैन संघ के अन्तर्गत सभी संस्थाओं का सुचारु रूप

१२ कन्या विद्यालय, वाडा तोताराम यह जमीन सरकार से लीज एक्वायर करके ली है। इसमे सामन की विंग श्रीमती प्रेमवती जी जैन धमपत्नी लाला नेमकुमार जी जैन ने अपने पूज्य ससुर साहब स्व० लाला मक्खनलाल जी जैन के नाम से दान देकर बनवाई है। इसमे कन्या विद्यालय की कुछ कक्षाएँ लग रही हैं।

१३ श्री जैन भवन के पीछे उत्तर की ओर एक जमीन स्व० श्री हरविलास जी जैन ने समाज को दान मे दी थी। श्री एस० एस० जैन सघ न इसमे एक मकान और गुसलखाने तथा लैटरीन आदि बनवाएँ है।

१४ श्री गुरुदेव रत्नचन्द्र जी समाधि स्थल यह पुण्य स्थल पूज्य गुरुदेव के पुष्पो का अपन अन्दर अभी तक सजोये हुए है। श्वेताम्बर जैन समाज आगरा के स्वगवासी महानुभावो का दाह सस्कार इसी स्थल पर होता है। इस समाधि-स्थल के निर्माण मे ला० लक्ष्मीनारायन जी जलेसर वालो का विशेष सहयोग रहा है। साथ ही साथ श्री जगन्नाथप्रसाद मालिक फम उज्जूलाल बाबूलाल, श्री सूरजभान जैन मालिक फम हजारीलाल श्यामलाल, श्री घनीराम कानपुर वाले, श्री फूलचन्द सुमतकुमार, तथा सेठ रतनलाल जी का भी इसके निर्माण मे सहयोग रहा है। अदर बगीचा तथा फुलवारियो के सौम्य वातावरण मे यह स्थल असीम शान्ति का प्रतीक है।

☆

प्रगति रिपोर्ट श्री एस० एस० जैन संघ लोहामण्डी, आगरा

आज से लगभग १५ वर्ष पूर्व श्रद्धेय पूज्य पाद गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज की असीम कृपा से श्री अग्रवाल वैश्य लोहिया समाज लोहामण्डी आगरा ने जैन धर्म अंगीकार किया था। हमारी समाज में समय-समय पर अनेक गण्यमान्य धर्म समाज एवं जाति-सेवी महान पुरुष उत्पन्न होते रहे हैं जिनमें से अपनी स्मृति के आधार व पूर्वजों के कथनानुसार सर्व स्वर्गीय श्री चौधरी मूलचन्द जी चौधरी मदन लाल जी श्री नाथूराम जी श्री मक्खनलाल जी श्री प्रताप चन्द्र जी श्री मिट्ठनलाल जी श्री प्यारेलाल जी श्री बाबूलाल जी जैन आदि प्रमुख थे।

इनके बाद स्व० श्री हजारी लाल जी सभापति बहुत ही प्रतिष्ठित समाज-सेवी एवं धर्म-सेवी हुए हैं जो कि आज तक सभापति नाम से पुकारे जाते हैं। उनके बाद वर्तमान युग में देश धर्म एवं जाति-सेवी स्व० श्री सेठ रतनलाल जी जैन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्होंने समाज की बागडोर अपने हाथ में लेकर अपने जीवन का अधिकांश समय तन मन धन से समाज-सेवा में ही लगाया। श्री कल्याणदास जी जैन मैनेजर तथा श्री प्रभुदयाल जी जैन कोषाध्यक्ष के प्रयत्नों से भी रत्नमुनि जैन कन्या विद्यालय की व्यवस्था कई वर्षों तक सुचारु रूप से होती रही।

वैसे तो स्व० श्री सेठ जी तथा अन्य उत्साही महानुभावों की देख-रेख में समाज की संस्थाएँ सुचारु रूप से चल ही रही थी किन्तु इनको अधिक विकसित करने एवं आगे बढ़ाने के लिए पूरे समाज के सहयोग एवं संगठन की आवश्यकता अनुभव की गई। श्रद्धेय पूज्य श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज एवं उपाध्याय कविरत्न श्री अमर चन्द्र जी महाराज की प्रेरणा एवं शुभ आशीर्वाद से उसकी पूर्ति के हेतु १५ जनवरी १९४९ में श्री एस० एस० जैन संघ की स्थापना हुई। इसके लिये सम्पूर्ण समाज की एक जनरल मीटिंग बुलाई गई जिसमें पंचायती सभी जायदादों के ट्रस्टियों ने सर्व सम्मति से श्री एस० एस० जैन संघ को जायदादों का पूर्ण अधिकार दे दिया जिसके प्रथम सभापति श्री सेठ रतनलाल जी जैन निर्वाचित हुए।

श्री एस० एस० जैन संघ की स्थापना होने पर समाज की सभी संस्थाएँ धन व जायदाद सम्पत्ति का स्वामी श्री एस० एस० जैन संघ स्वीकार किया गया। श्री एस० एस० जैन संघ के अन्तर्गत तत्कालीन श्री रत्नमुनि जैनशाला श्री रत्नमुनि जैन कन्या पाठशाला श्री वीर पुस्तकालय श्री जैन भवन श्री जैन ट्रस्ट आइरन मार्ट तथा कमेटी विभाग आदि सभी संस्थाएँ एवं विभाग सम्मिलित हो गए। श्री संघ का एक लिखित विधान बनाया गया जिसके अनुसार समाज के २१ वर्ष से ऊपर आयु के लोगों को सदस्य बनाकर साधारण सभा बनाई गई और विधान के अनुसार साधारण सभा द्वारा निर्वाचित १५ सदस्यों की एक कार्यकारिणी श्री एस० एस० जैन संघ के अन्तर्गत सभी संस्थाओं को सुचारु रूप

से चलाने के हेतु बनाई गई, जिसके पदाधिकारी एव सदस्य दिनाक १-२-४६ की मीटिंग म निम्न प्रकार निर्वाचित हुए —

१ श्री सेठ रत्नलाल जी	प्रधान
२ श्री वशीधर जी	उपप्रधान
३ श्री प्रभूदयाल जी	कोपाध्यक्ष
४ श्री दरबारी लाल जी	मन्त्री
५ श्री देवकुमार जी	उपमन्त्री
६ श्री लक्षमनदास जी	मैनेजर श्री जैन भवन
७ श्री कल्याणदास जी	मैनजर कन्या पाठशाला
८ श्री राम बाबू जी	मैनेजर बाल पाठशाला
९ श्री जादौराम जी	मैनेजर श्री वीर पुस्तकालय
१० श्री नन्नूमल जी	मैनेजर श्री रत्नमुनि जैन औषधालय
११ श्री मिट्ठनलाल जी	मैनेजर श्री अग्रवाल लोहिया समिति भवन बगीचा
१२ श्री जगन्नाथ प्रसाद जी	मैनेजर श्री रत्नमुनि जैन स्मृति भवन
१३ श्री रामशरण लाल जी	
१४ श्री रामगोपाल जी	सदस्य प्रवन्ध समिति
१५ श्रीपाल जी	

विधान के अनुसार प्रतिवर्ष प्रवन्ध समिति के सदस्यो का चुनाव होकर सस्थाओ का प्रवन्ध और अधिक अच्छे ढग मे होने लगा। सभी सस्थाओ की प्रगति होने लगी, उनका कार्यक्षेत्र बढाने एव विकास करने मे श्री एस० एम० जैन सघ की कार्यकारिणी के सभी पदाधिकारी एव सदस्यो ने सस्थाओ को वर्तमान स्तर तक लाकर भविष्य के लिये विकास करने का द्वार खोल दिया है। श्री सघ की स्थापना के बाद उसे रजिस्टर्ड कराने का पूर्ण प्रयत्न किया गया और २० ३-५२ को एक्ट २१ १८६० के अनुसार श्री एस० एस० जैन सघ सरकार से एक रजिस्टर्ड सस्था हो गया। श्री सघ के विधान बनाने एव रजिस्टर्ड कराने का श्रेय श्री दरबारीलाल जी जैन को है।

श्री एस० एस० जैन सघ की वर्तमान प्रवन्ध समिति का चुनाव ४ ६-६१ को हुआ जिसमे कि निम्नलिखित पदाधिकारी निर्वाचित हुए —

१ श्री रामगोपाल जी	सभापति
२ श्री प्रभूदयाल जी	उप-सभापति
३ श्री पदमकुमार जी	प्रधान मन्त्री
४ श्री विजयकुमार जी	मन्त्री
५ श्री जगन्नाथ प्रसाद जी	कोपाध्यक्ष
६ श्री सोनाराम जी	शिक्षा सचालक
७ श्री सरोज कुमार जी	मैनेजर श्री रत्नमुनि जैन ग

८. श्री ओमप्रकाश जी — मैनेजर श्री रत्नमुनि जैन इन्टर कालेज
९. श्री सुमेरचन्द जी — मैनेजर श्री वीर पुस्तकालय
१०. श्री कस्यावराम जी — मैनेजर श्री औषधालय विभाग
११. श्री महावीर प्रसाद जी — मैनेजर बगीचा विभाग
१२. श्री धमाधी बाबु जी — मैनेजर जायदाद विभाग
१३. श्री रतनलाल जी — मैनेजर श्री जैन स्टर आइरन मार्ट
१४. श्री रामबाबू जी — मैनेजर श्री कमेटी विभाग
१५. श्री देव कुमार जी — आडीटर

वर्तमान समय में सभी संस्थाओं एवं विभागों की सन्तोषजनक प्रगति चल रही है और आशा की जाती है कि भविष्य में भी एस. एस. जैन सभा के अन्तर्गत संस्थाओं की उन्नति और अधिक होगी।

★

मे चलान के हेतु बनाई गई, जिमके पदाधिकारी एव मदस्य दिनाक १-७-४६ की मीटिंग म निम्न प्रकार निर्वाचित हुए —

१ श्री सेठ रत्नलाल जी	प्रधान
२ श्री वशीधर जी	उपप्रधान
३ श्री प्रभूदयाल जी	कोपाध्यक्ष
४ श्री दरबारी लाल जी	मत्री
५ श्री देवकुमार जी	उपमत्री
६ श्री लक्षमनदाम जी	मैनेजर श्री जैन भवन
७ श्री कल्याणदाम जी	मैनजर कन्या पाठशाला
८ श्री राम बाबू जी	मैनेजर बाल पाठशाला
९ श्री जादौराम जा	मैनेजर श्री वीर पुस्तकालय
१० श्री नन्नूमल जी	मैनेजर श्री रत्नमुनि जैन औपधालय
११ श्री मिट्ठनलाल जी	मैनेजर श्री अग्रवाल लाहिया ममिति भवन बगीचा
१२ श्री जगन्नाथ प्रमाद जी	मैनेजर श्री रत्नमुनि जैन स्मृति भवन
१३ श्री रामशरण लाल जी	
१४ श्री रामगोपाल जी	मदस्य प्रबन्ध ममिति
१५ श्रीपाल जी	

विधान के अनुसार प्रतिवप प्रबन्ध समिति के मदस्यो का चुनाव होकर सस्थाओ का प्रबन्ध और अधिक अच्छे ढग मे होने लगा। सभी मस्थाओ की प्रगति होने लगी, उनका कार्यक्षेत्र बढाने हव विकास करने मे श्री एस० एम० जैन सघ की कार्यकारिणी के सभी पदाधिकारी एव मदस्यो ने मस्थाओ को वतमान स्तर तक लाकर भविष्य के लिये विकास करने का द्वार खोल दिया है। श्री सघ की स्थापना के बाद उमे रजिस्टड कराने का पूण प्रयत्न किया गया और २०-३-५२ को एक्ट २१, १८६० के अनुसार श्री एस० एम० जैन सघ सरकार से एक रजिस्टड सस्था हो गया। श्री सघ के विधान बनाने एव रजिस्टड कराने का श्रेय श्री दरबारीलाल जी जैन को है।

श्री एस० एम० जैन सघ की वतमान प्रबन्ध समिति का चुनाव ४-९-६१ को हुआ जिसमे कि निम्नलिखित पदाधिकारी निर्वाचित हुए —

१ श्री रामगोपाल जी	सभापति
२ श्री प्रभूदयाल जी	उप-सभापति
३ श्री पदमकुमार जी	प्रधान मत्री
४ श्री विजयकुमार जी	मत्री
५ श्री जगन्नाथ प्रसाद जी	कोपाध्यक्ष
६ श्री सोनाराम जी	शिक्षा मचालक
७ श्री मरोज कुमार जी	मैनेजर श्री रत्नमुनि जैन गर्ल्स इन्टर कालेज

विशेष उल्लेखनीय है। इसी प्रकार पूज्य गुरुणीजी श्रीजी श्री महाराज श्री दुर्गा देवी जी ध्यानमग्न कुमारी जी श्री हेमकुमारि जी आदि अनेक सतियों के भी चातुर्मास हुए हैं

महिलाओं की मांग के अनुसार बाग अम्मा में एक भव्य एवं विशाल महिला पौषधशाला भी बन गया है जिसमें विशेष व्याख्यान महिलाओं का है। इसमें नीचे एक विशाल व्याख्यान हॉल और उसके बराबर एक छोटा कमरा तथा ऊपर दो कमरे तथा तीसरी मंजिल पर एक हॉल बना है। श्री एस. एस. जैन संघ द्वारा पूर्ण समाज के सहयोग से जैन भवन तथा महिला पौषधशाला भवन की व्यवस्था में पूर्ण रूप से सहायता की जाती है।

बसन्तलाल जैन
२४-५-१४

श्री जैन भवन या श्री पोषधशाला का परिचय

श्री कल्यानदास जैन (मैनेजर)

श्री जैन भवन लोहामन्डी मे श्री श्वेताम्वर स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय का प्रमिद्ध पोपदशाला है। इसके भीतर की जमीन चौधरी परिवार ने समाज को दान दी थी और आगे की जमीन समाज द्वारा खरीदी गई जिस पर दुकानें बनवाई गइ हैं।

सर्वप्रथम अन्दर के भाग मे मूर्ति की स्थापना करके मन्दिर वनवाने का विचार था, किन्तु सौभाग्य से पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी महाराज का लोहमण्डी मे आगमन हुआ। पूज्य गुरुदेव तीन दिन तक एक पढ के ही नीचे ठहरे जहाँ कि वतमान समय मे श्री रत्नमुनि स्मृति भवन वना हुआ है। किन्तु इसी बीच मे उन्होंने अपने चमत्कार के प्रभाव से समाज के लोगो मे जैन धम के प्रति श्रद्धा उत्पन्न की और समाज के कुछ अग्रणी महानुभाव गुरुदेव को यहाँ लाये तथा उन्ही की प्रेरणा से यहाँ मन्दिर के वजाय श्री जैन पोपदशाला भवन वनवाया गया जिसमे तभी से श्री श्वेताम्वर स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय के मुनि महाराज विराजते हुए चातुर्मास करते हैं।

इसमे नीचे के भाग में एक व्याख्यान हौल, तीन कमरे, एक दालान व दो चौक है तथा ऊपर के भाग मे एक भव्य एव विशाल हौल है जिसमे कि महामन्त्र नवकार की सुन्दर वेदी सुशोभित है। हौल के वरावर एक छोटा ऐसा ही सुन्दर कमरा और वना है तथा तीसरी मञ्जिल पर एक विशाल टिन शैड है। श्री जैन भवन के उत्तर मे एक सीमन्टेड गली है तथा उससे मिला हुआ एक मकान व गुसलखाने आदि भी इसी मे सम्मलित हैं।

अन्य सस्थाओ की भाँति सन् १९४६ से श्री जैन भवन भी श्री एस० एस० जैन सघ के अन्तर्गत है तथा श्री सघ द्वारा निर्वाचित मैनेजर इसकी प्रबन्ध व्यवस्था करते हैं।

जैन भवन मे इस समय पूज्य गुरुदेव श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज एव अन्य मुनि महाराज विराज रहे हैं, जिनकी विद्वतापूण प्रतिभा और ज्ञानमय उपदेशों का लाभ उठाने देश के विभिन्न नगरों मे तथा आगरा नगर से श्रावकगण पधारते रहते हैं।

प्रारम्भ से आज तक जैन भवन मे अनेक सन्तो के चातुर्मास श्रद्धा सहित सम्पन्न हुए है जिनमे पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज, श्री चतुर्भुज जी, श्री विनय चन्द्र जी महाराज, श्री कृपाराम जी, श्री मुन्शी जी, श्री सुखानन्द जी, श्री लालचन्द्र जी, श्री दौलत ऋपि जी, श्री माधो मुनि जी, श्री चौथमल जी, श्री नानकचन्द्र जी, श्री शतावधानी श्री रत्नचन्द्र जी, श्री काशीराम जी, श्री खवचन्द्र जी श्री मुन्नालाल जी, श्री देवीलाल जी श्री जयन्ती लाल जी, श्री पृथ्वीचन्द्र जी, श्री कवि अमरचन्द्र जी श्री गणी श्यामलाल जी, श्री प्रेमचन्द्र जी, श्री विजयमुनि जी महाराज आदि

प्रगति रिपोर्ट

श्री जैन ट्रस्ट आइरन मार्ट

(श्री रतनलाल जैन मैनेजर)

श्री एम० एम० जैन संघ के अन्तर्गत जैन ट्रस्ट आइरन मार्ट एक विशुद्ध आय की मद है। इसका प्रादुर्भाव श्री आगरा स्टील स्क्रैप मर्चेन्ट एसोसियेशन लिमि० आगरा के प्रारम्भ के साथ हुआ था।

तत्कालीन डिप्टी आइरन स्टील कन्ट्रोलर श्री टी० डी० तलवार एम० सिसविले इसके चेयरमैन थे। इससे पूर्व कानपुर में एक स्क्रैप एसोसियेशन कायम हो चुका था और उत्तर प्रदेश में आगरा लोह के व्यापार का महत्त्वपूर्ण केन्द्र होने के कारण उक्त अधिकारियों की उत्कट अभिलाषा थी कि आगरा में भी कानपुर की भाँति एक स्क्रैप ऐसोसियेशन की स्थापना की जाय। फलस्वरूप सन् १९४३ में ५६ सदस्यों के साथ उपरोक्त ऐसोसियेशन की स्थापना की गई। जैन ट्रस्ट आइरन मार्ट को इसका सदस्य बनाने के लिये श्री बाबूराम शास्त्री, श्री रामगोपाल जी जैन श्री स्व० श्यामलाल तायल एवं श्री दरबारी लालजी जैन का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

प्रारम्भ में श्री जैन ट्रस्ट आइरन मार्ट का प्रबन्ध स्व० श्री मुन्नीलाल जी जैन के द्वारा किया गया। सन् १९४९ से यह श्री एम० एम० जैन संघ के अन्तर्गत आ गया और इसकी प्रबन्ध व्यवस्था के लिये एक मैनेजर नियुक्त किये जाते हैं। श्री एम० एस० जैन संघ के अन्तर्गत समाज की संस्थाओं के निर्माण एवं प्रगति में श्री जैन ट्रस्ट आइरन मार्ट का प्रमुख स्थान है। इसकी विशुद्ध आय से संस्थाओं की उन्नति में पूर्ण सहायता मिल रही है।

प्रगति रिपोर्ट

श्री अग्रवाल लोहिया समिति भवन बगीचा

श्री महावीर प्रसाद जैन (मैनेजर)

यह बगीचा लोहामण्डी वार्ड में अपने ढंग का निराला है। स्वास्थ्य की दृष्टि के साथ-साथ नल, बिजली, लैट्रिन तथा आवास सम्बन्धी सभी सुविधायें इसमें विद्यमान हैं। इसे फर्म लाला मसुख राय जाहरमल के संचालक स्व० ला० मजूमल जी जैन ने तैयार कराया था। यह बगीचा आज तक उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। आधा बगीचा स्व० श्री मजूमल जी जैन ने अपने हिस्से को श्री अग्रवाल लोहिया समिति को दान में दिया था और शेष आधा भाग समाज ने ५०००) में खरीदा था।

बगीचे के बाहर की तरफ की दुकानें एवं स्व. माता मंगूमल जी जैन का स्टेच्यू एवं श्री सेठ रामलाल जी जैन की देख-रेख में बनवाये गये। बगीचे में एक विशाल व्यायाम शाला है जिसमें प्रतिदिन अनेक लोग स्वास्थ्य लाभ उठाते हैं। इसमें सभी जगह विद्युत लैम्प लगे हुए हैं। बगीचे का वातावरण तथा उसकी सुन्दरता बड़ी ही रमणीय एवं आकर्षक है।

सन् १९४९ से बगीचा विभाग श्री एस. एस. जैन सभा के अन्तर्गत सम्मिलित है। इसके प्रबन्ध के लिए एक मैनेजर की नियुक्ति की जाती है। बगीचे में बाहर से आने वाले भाइयों के ठहराने की समुचित व्यवस्था है। समय-समय पर बगीचे में समाज एवं बाहर के भाइयों की बरातें भी ठहरती रही हैं। वर्तमान समय में बगीचे में अस्थायी रूप से श्री रत्न मुनि जैन गर्ल्स इण्टर कालेज की कुछ कक्षाएं लग रही हैं।

प्रगति रिपोर्ट

कमेटी विभाग

मैनेजर श्री रामबाबू जी जैन

यद्यपि किसी संस्था की स्थापना एवं सामाजिक कार्यों की पूर्ति के लिए समय-समय पर कुछ उदार दानवीर आगे बढ़कर आदर्श उपस्थित करते हैं किन्तु भविष्य में ऐसी संस्थाओं के सुसंचालन एवं सामाजिक कार्यों को आगे बढ़ाने के लिए धन के एक ऐसे स्थायी स्रोत की आवश्यकता है जिससे संस्था अपने पैरों पर खड़े होकर समाज की अधिक से अधिक सेवा करने में समर्थ हो सके। बस ठीक इसी की पूर्ति के लिए हमारी अ. भा. जवाहरलाल लोढ़िया महासभा की ओर से सन् १९२१ ई. में एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें लोहा, कपड़ा तथा अन्य प्रकार का व्यापार करने वाले व्यापारियों पर कमेटी कर लगाया गया। यह कर विशेष रूप से लोहे पर एक पैसा प्रति मन कायम किया गया।

इस कमेटी-कर के प्रेरक में स्व. श्री श्री बैजी सहाय जी नगीना, स्व. श्री प्यारेलाल जी जैन आगरा, स्व. श्री लछमन दास बाबूराम जी कानपुर तथा स्व. श्री प्यारेलाल कन्हैयालाल जी कानपुर आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। कुछ समय बाद धीरे-धीरे भारतवर्ष के अन्य स्थानों में यह कमेटी-कर लेना-देना प्राय बन्द हो गया किन्तु आगरा में लोहे पर बराबर चालू रहा और अब भी चालू है। कमेटी कर की आय से संस्थाओं को प्रगति एवं अन्य सामाजिक कार्यों में विशेष सहायता मिली है।

कमेटी-कर एक प्रकार का ऐसा कर है जो कि किसी व्यापारी के लिए भारस्वरूप नहीं है। यह ग्राहक से ही एक पैसा प्रति मन लेकर वसूल कर लिया जाता है। 'बूंद बूंद से भरे सरोवर' इस कहावत के आधार पर यह एक एक पैसा मिलकर वर्ष के अन्त में एक बड़ी धन राशि बन जाता

है जो कि सावजनिक कार्यो की प्रगति मे महायक होता है और प्रत्यक्ष रूप मे किसी व्यापारी पर इसका भार नही पडता है। इस प्रकार यह कमेटी-कर एक कामधेनु या कल्पवृक्ष जैसा वरदान है जिसका कभी अन्त ही नही।

सन् १९४६ से कमेटी विभाग भी श्री एम० एस० जैन सघ के अन्तगत सम्मिलित हो गया है जिसके प्रवन्ध के लिए एक मैनेजर की नियुक्ति की जाती है। वतमान समय मे इस कमेटी कर की प्रगति सन्तोपजनक है। कमेटी कर की आय को श्री एम० एस० जैन सघ के माध्यम से श्री रत्न मुनि जैन गर्ल्स एव वॉयज कालेज, वगीचा विभाग, श्री वीर पुस्तकालय आदि पर व्यय किया जाता है।

श्री रत्नमुनि जन गर्ल्स कालेज की छात्राएँ अपना सांस्कृतिक नाटक प्रस्तुत करते हुए, विभिन्न मुद्राओं मे

श्री रत्नमुनि जन इन्टर कालेज के छात्र शताब्दी समारोह पर प्रार्थना करते हुए ।

गुरुदेव स्मृति-ग्रन्थ के सम्पादक श्री विजयमुनि जी स्मृति-ग्रन्थ का परिचय भाषण करते हुए।

सर्व धर्म सम्मेलन में भाषण करते हुए श्री सुशील मुनि को
ग्रन्थ का अवलोकन कराते हुए आनंद ऋषि जी महाराज (५ मई)

समकित रत्न प्रदान कर दी मिथ्या मति टार
श्री रत्नचन्द्र गुरुदेव का है यहां पर उपकार
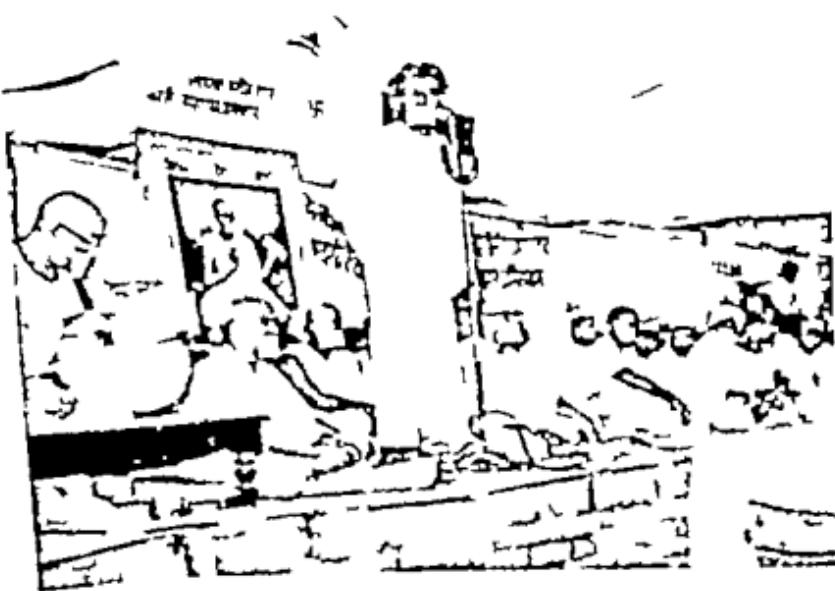
श्री रत्नमुनि जैन गर्ल्स कालेज की छात्राएँ अपना सांस्कृतिक नाटक प्रस्तुत करते हुए, विभिन्न मुद्राओं में

श्री रत्नमुनि जैन इन्टर कालेज के छात्र शताब्दी समारोह पर प्रार्थना करते हुए।

आगरा में श्री रत्नमुनि-शताब्दी-समारोह

परम तपस्वी श्रद्धेय श्री रत्नचन्द्र जी महाराज अपने युग के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् सन्त थे। उन्होंने अपने जीवन में तप, संयम और त्याग की ऊँची साधना की थी। विचार और आचार में समन्वय साधा था। संयम के साथ में ज्ञान की आराधना और ज्ञान के साथ संयम की साधना करना उनके जीवन का लक्ष्य था। आज से सौ वर्ष पूर्व की जन-चेतना को उन्होंने जो आलोक दिया था वह आलोक आज भी विद्यमान है। जनता उनके उपकारों को भूली नहीं है। शताब्दी का महान आयोजन करके भी क्या हम उनके उपकारों से उऋण हो सके हैं? कदापि नहीं। हम उन पर किसी भी प्रकार का उपकार नहीं करते बल्कि स्वयं उपकृत होते हैं।

श्री रत्नचन्द्र जी महाराज थे स्थानकवासी जैन समाज के एक समर्थ विद्वान मुनिराज थे जिन्होंने सुप्रसिद्ध श्री आत्माराम जी महाराज (श्री विजयानन्दसूरि जी) को ज्ञान के आलोक से आलोकित किया था। जिला मेरठ जिला मुजफ्फरनगर आदि के अनेकानेक लोगों को साधु-मार्ग का सच्चा अनुयायी बनाया था। लोहामण्डी आगरा के अजैनों को धर्मप्रेमी जैन बनाया था। यह पुण्य शताब्दी समारोह भी लोहामण्डी के उन्हीं जैन भाइयों के अदम्य उत्साह का परिणाम है। आज भी वे उनके उपकारों को नहीं भूले हैं और न भूलेंगे ही।

यह हर्ष की बात है कि श्री रत्नचन्द्र जी महाराज की परम्परा में ही पूज्य श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज और उपाध्याय कविवर श्री अमरचन्द्र जी महाराज आदि सुयोग्य और विद्वान साधु आज भी विद्यमान हैं जो उनके नाम और काम को चमका रहे हैं।

आगरा के समस्त श्री संघ ने अपनी श्रद्धा और भक्ति से जिस महान् शताब्दी समारोह की आयोजना-संयोजना की थी वह पूर्णतः सफल रही। इस अवसर पर आगरा निवासियों के मन में अपार उत्साह और श्रद्धा थी और तन में थी उत्कृष्ट स्फूर्ति। उत्सव को सम्पन्न और सफल बनाने के लिए आगरा के संघ ने जो प्रशंसनीय प्रयत्न किया वह इतिहास में स्मरणीय रहेगा और कदापि भुलाया नहीं जा सकेगा। आगरा श्री संघ के अतिरिक्त बाहर से आने वाले पंजाबी देहलवी मारवाड़ी मालवी, गुजराती और महाराष्ट्री आदि भाई-बहन भी बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित थे जिनके आदर-सत्कार खान-पान निवास और भोजन की सुन्दर व्यवस्था आगरा के श्री संघ ने अपनी शक्ति से बढ़कर की। लगभग ४०-५ हजार रुपए के खर्च का अन्दाजा है।

ता० २४ २५ २६ मई १९५४ तीनों दिनों तक कार्यक्रम बड़ी सुव्यवस्था और बिना किसी तरह की विघ्नता के चलते रहे। जिसमें १ हजार से १ हजार तक जनता की उपस्थिति रहती थी।

शताब्दी समारोह पर भाषण करते हुए नगर प्रमुख कल्यानदास जी
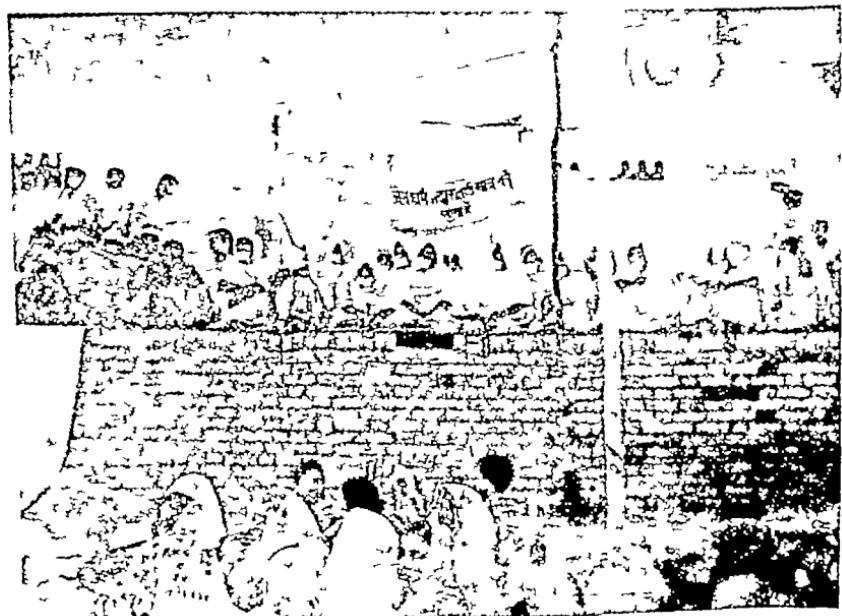
शताब्दी समारोह पर आगत साध्वी समाज अपना प्रवचन करते हुए

पीतावी के साथ में लाला सीताराम जी श्री बाबूराम जी प्रासी श्री जगन्नाथ प्रसाद जी खड़े हुए हैं

सभापति श्री रामगोपाल जी, बाबू दरबारीलाल जी श्री मदन कुमार जी
श्री उमरावप्रसाद जी श्री मनोजकुमार जी

पहले दिन का कार्यक्रम

२८ मई को प्रभात वेला में प्रभात फेरी [illegible] हुई श्री रत्नचन्द्र जी महाराज के समाधि-स्थल पर जाकर समाप्त हुई जहाँ प्रार्थना की गई। प्रभात फेरी के समय अरुणोदय से ५ से ७ बजे तक रहा। इसके बाद श्री रत्नमुनि इण्टर कालेज के विशाल प्रांगण के सुसज्जित पण्डाल में ७ से ११ बजे तक 'गुरुदेव श्री रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ' का उद्घाटन समारोह प्रारम्भ हुआ। आगरा के सुप्रसिद्ध साहित्यकार डा० हरिदत्त शर्मा जी अध्यक्ष पद पर आसीन थे। ग्रन्थ का उद्घाटन श्रद्धेय श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज के कर-कमलों से हुआ। फिर स्मृति ग्रन्थ के निर्देशक उपाध्याय श्री अमरचन्द्र जी महाराज ने अपने महत्त्वपूर्ण भाषण में कहा कि—

"भारतीय संस्कृति दो धाराओं में प्रवाहित है। एक भौतिक और दूसरी आध्यात्मिक। भले ही बाहरी दृष्टि से दोनों में विरोध प्रतीत होता हो, परन्तु दोनों में समन्वय भी रहा है। समाज में भौतिक विकास में ब्राह्मण संस्कृति का प्रमुख योग रहा है। जीवन की समस्त प्रवृत्तियों में उसने समाज का नेतृत्व किया है। श्रमण संस्कृति दूसरी धारा है, जो जीवन की सुप्त शक्तियों को जागृत करती हुई आत्मकल्याण की ओर प्रेरित करती है। उसमें वीतराग एवं समता की गरिमा है। श्री रत्नचन्द्र जी महाराज श्रमण संस्कृति के एक ही जाज्वल्यमान रत्न थे। राजस्थान के एक छोटे से ग्राम में जन्म लेकर अपने महान ज्ञान के प्रकाश से मानव जाति को आलोकित किया। उन्होंने पशुबलि, [illegible] और धर्मान्धता का प्रबल विरोध किया। अपने जीवन में अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह की आराधना-साधना के साथ सुन्दर उपदेश भी दिया।"

इसके बाद बहुमूल्य लेख सामग्री से युक्त लगभग ७०० पृष्ठों के विशाल 'श्री रत्नमुनि स्मृति-ग्रन्थ" के प्रधान सम्पादक श्री विजयमुनि जी शास्त्री, साहित्यरत्न ने अपनी श्रद्धाजलि में कहा—

'श्रद्धेय रत्नचन्द्र जी महाराज अपने युग के प्रभावशाली महान् संत थे। उन्होंने समाज और संस्कृति की बडी सेवाएँ की। उनकी सेवाओं को भुलाया नहीं जा सकता। उनका बहुत-सा साहित्य आज भी अनुपलब्ध है। इसमें सन्देह नहीं कि वे अपने युग के एक महान् विद्वान, कवि, सुधारक और उपदेशक संत थे। आज सौ साल के बाद भी इस पुण्य शताब्दी के अवसर पर उन्हें स्मरण करके हम बहुत बडी प्रेरणा और बल पा रहे हैं यह हम सबका सौभाग्य है।"

इस अवसर पर राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, गृहमन्त्री, महारानी सिन्धिया, महारानी गायत्री देवी, भारत के अनेक नगरों के मेयरों के संदेश पढकर सुनाए।

इसके बाद आगरा नगर के मेयर सेठ कल्याणदास जी जैन ने, जो शताब्दी समारोह और स्मृति ग्रन्थ के संयोजक थे, गुरुदेव के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की। विशिष्ट अभ्यागतों में से संत श्री कृपालसिंह जी और सेठ अचलसिंह एम० पी० ने भी अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की।

इसके बाद विश्वधर्म सम्मेलन के प्रेरक श्री सुशीलमुनि जी ने अपनी श्रद्धाजलि देते हुए कहा—

शिक्षा सम्मेलन समारोह मे स्वामी प्रणवानन्द जी और सन्त कृपालसिंह जी

महिला सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए श्रीमती सुमित्रा लाल, संचालिका [illegible] जी
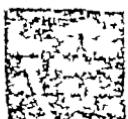
सव धम सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए बीच मे वठे हुए सन्त कृपालसिह और
अध्यक्ष श्री जगन्नाथ जी रावत निर्माण मन्त्री उत्तर प्रदेश
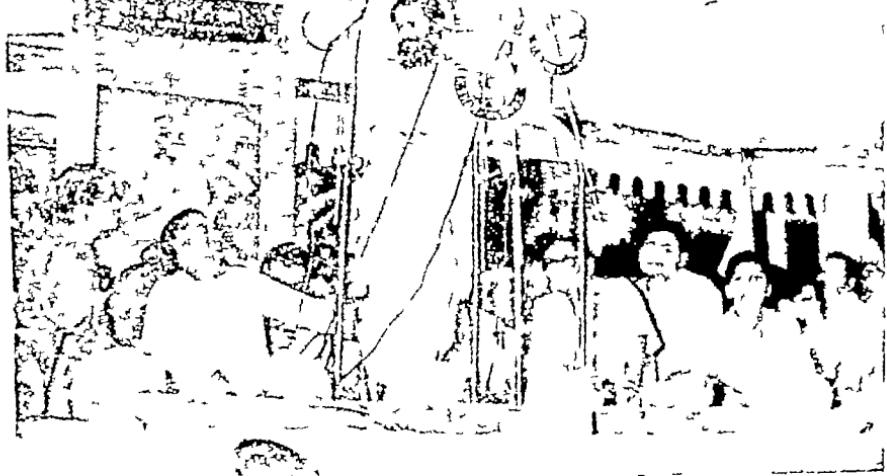
काका हाथरसी कवि सम्मेलन मे कविता सुना रहे है (२६ मई रात्रि)
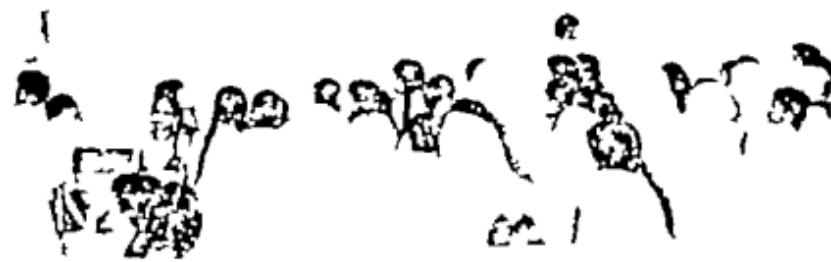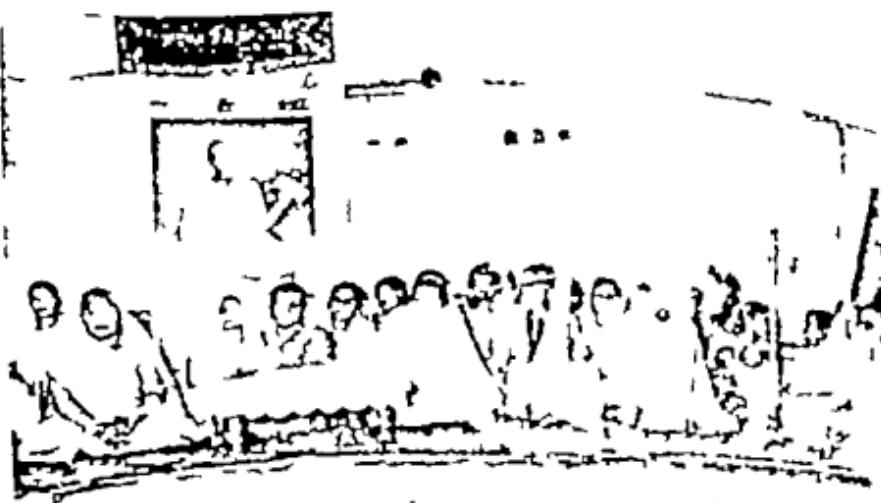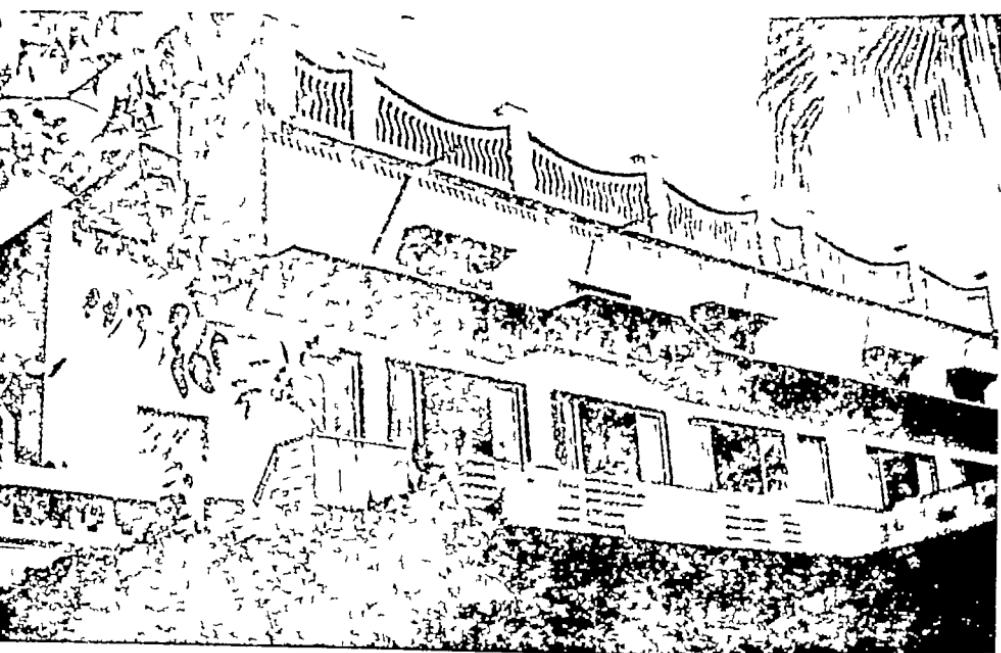
श्री वीर पुस्तकालय भवन, रत्नमुनि माग, लोहामण्डी, आगरा
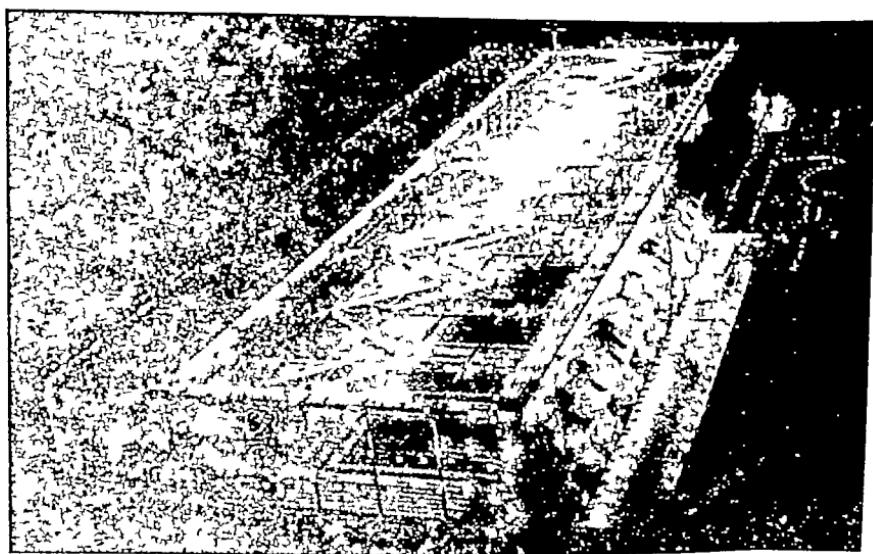
विजली की रोशनी मे जगमग करती पौषधशाला

"यदि भारत में संत न होते संतों की परम्परा न होती तो भारत की एकता अक्षुण्ण नहीं रह सकती थी। देश में आज भी विभिन्न संस्कृतियों का संगम इन्हीं महान् विभूतियों की कृपा का फल है। संतों में सबके प्रति समानबुद्धि होती है। सबको वे आत्म-तुल्य जानते-मानते हैं। आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी महाराज अपने युग के ऐसे ही महान तेजस्वी संत थे।

अन्त में उद्घाटन समारोह के अध्यक्ष डा. हरिशंकर जी शर्मा ने कहा—

मैं भी उस महान आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। उन्होंने अपने युग की जनता को जो विचार-ज्योति दी थी वह आज भी जन-जीवन में साक्षात् अभिव्यक्त हो रही है।

इसी दिन २४ मई की दोपहर बाद जैन भवन में विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया था। जिसमें जैन और अजैन विद्वानों ने धर्म दर्शन और संस्कृति पर अपने विचार व्यक्त किए। रात्रि में ९ से ११ बजे तक सांस्कृतिक आयोजन था जिसमें संगीत नृत्य एवं नाटक का कार्यक्रम रखा गया।

दूसरे दिन का कार्यक्रम

२५ मई को प्रभात वेला में प्रभात फेरी का आयोजन था। जिसका प्रारम्भ मानपाड़ा के जैन स्थानक से हुआ तथा अमृत किनारी बाजार किनारी बाजार पेठा बाजार राजामंडी एवं लोहामंडी होता हुआ समाधि भवन पर पहुँचा और प्रार्थना की।

प्रातः ७ से ११ बजे तक सर्व धर्म सम्मेलन का आयोजन था जिसका उद्घाटन व अध्यक्षता संत श्री कृपालसिंह जी ने की। इस सम्मेलन में जैन बौद्ध वैदिक ईसाई मुसलमान और अन्य अनेक धर्मों के विद्वान प्रतिनिधि उपस्थित थे। स्वामी ब्रह्मानन्द जी का भाषण बहुत ही प्रभावक और आकर्षक था। विश्वधर्म सम्मेलन के प्रेरक श्री सुशीलमुनिजी ने प्रभावशाली भाषण दिया। अन्त में उपाध्याय श्री अमरमुनि जी महाराज ने धर्म दर्शन और संस्कृति के संबंध में बोलते हुए धर्म की सुन्दर व्याख्या की और सभी धर्मों के समन्वय पर प्रभावशाली भाषण दिया।

दोपहर बाद महिला सम्मेलन हुआ जिसका आयोजन बहुत ही सुन्दर रहा। नगर की और बाहर की महिलाओं ने सुन्दर भाग लिया। महिला सम्मेलन का संयोजन श्रीमती प्रियवती जैन ने किया था। रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम हुआ जिसमें संगीत नृत्य और नाटक का आयोजन बड़ा आकर्षक रहा। जनता की उपस्थिति बहुत अधिक थी।

तीसरे दिन का कार्यक्रम

२६ मई को प्रभात वेला में प्रभात फेरी लोहा के ताल से शुरू होकर रत्नमुनि मार्ग से होती हुई समाधि भवन पर जाकर समाप्त हुई और प्रार्थना की गई।

तीसरे दिन प्रातः ७ से ११ बजे तक शिक्षा एवं नैतिक सम्मेलन का आयोजन था जिसमें आगरा के सभी विशिष्ट विद्वानों और शिक्षाशास्त्रियों ने बड़ी तन्मयता से भाग लिया इसका संयोजन श्री

पदमचन्द जैन और श्री सुरेन्द्रकुमार आदि ने किया। आयोजन बहुत सफल रहा। उपाध्याय श्री अ
मुनि जी और सुशीलमुनि जी ने शिक्षा एव नैतिकता पर भाषण बहुत ही महत्वपूर्ण और प्रभावक
इस शिक्षा सम्मेलन के अध्यक्ष थे—उत्तर प्रदेश के निर्माण मत्री श्री जगनप्रसाद जी रावत।

दोपहर बाद ४ से ६ बजे तक जैन भवन मे छात्र और छात्राओ की भाषण प्रतियोगिता
जिसमे समाज के और बाहर के छात्र-छात्राओ ने उत्साह से भाग लिया। विजेताओ को पुरस्कार दि
गया। भाषण प्रतियोगिता के निर्णायक थे—वाराणसी के पण्डित श्री कृष्णचन्द्र जी, जैन दर्शनाचार्य।

रात्रि मे कवि सम्मेलन का विराट् आयोजन किया गया। इसमे आगरा और बाहर के कवि
ने बडी सख्या मे भाग लिया। अन्त मे सेठ कल्याणदास जी ने ११ हजार रुपये दान की घोषणा की
और श्री जगन्नाथप्रसाद जैन की माता श्रीमती अनारदेवी जैन ने २५-३० हजार रुपये की जायदाद
का दान किया। २५ मई को सर्वधर्म सम्मेलन के समय दीक्षा-उत्सव सबसे अधिक जनता
उपस्थिति मे सम्पन्न हुआ। २६ मई को तपोत्सव मनाया गया, जिसमे १०८ भाई-बहनो ने आयबि
व्रत किए। अगले दिन सबका पारणा भी सामूहिक रूप मे कराया गया था।

SECTION ON A B
PROPOSED DESIGN OF SHRI AGRAWAL LOHIYA
RATAN MUNI JAIN COLLEGE
IN FRONT OF JAIPUR HOUSE
ELEVATION
HALL
A
B
DOUBLE STORIED PLAN
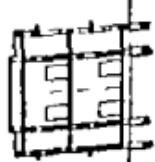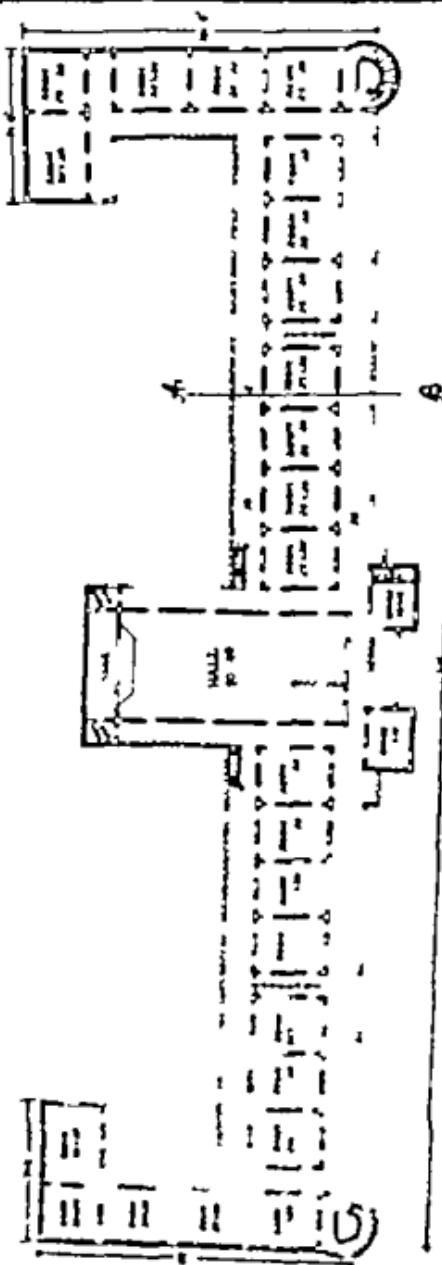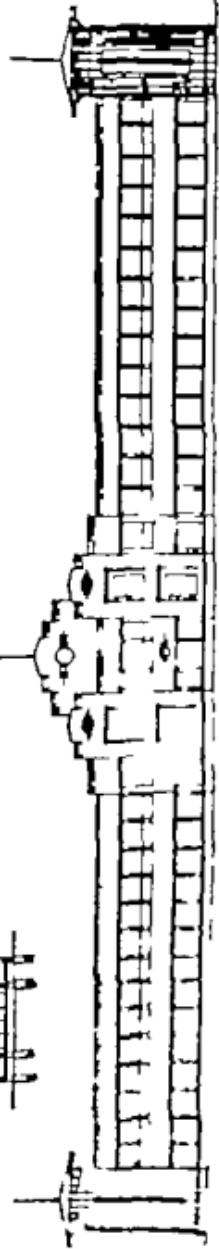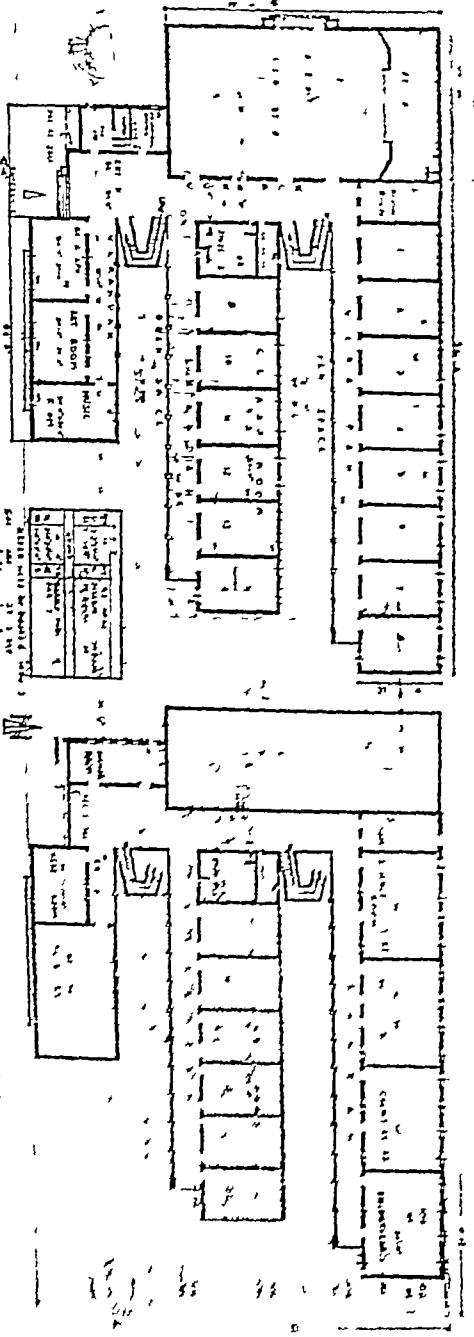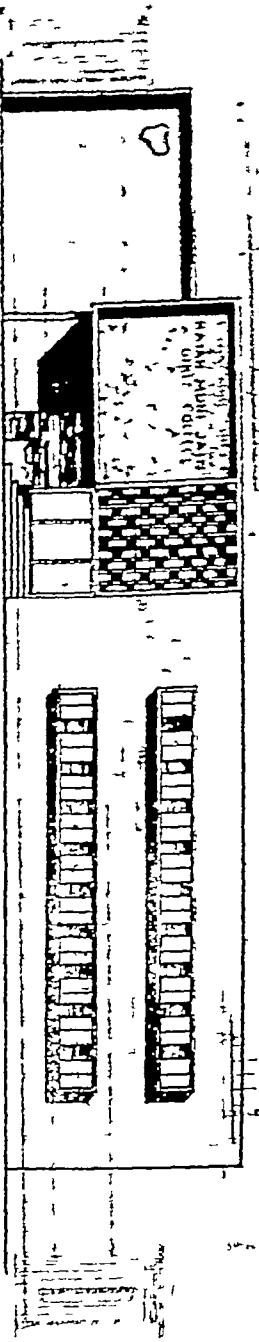
PROPOSED DESIGN O
SHIRI RATTN MUNI JAIN GIRLS EGE
LOHA MANDI AGRA
FRONT WING ELEVATION
GROUND FLOOR PLAN
FIRST FLOOR PLAN